PGDYS-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

स्वास्थ्य एवं योग विज्ञान

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
वैद्य नित्यानंद शर्मा
सहायक आचार्य (योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

सदस्य

डॉ. डी.एन. शर्मा
किच्छा, उत्तराखंड

डॉ. ओ.एन. तिवारी
विलासपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. दुर्गा अरोड़
नई दिल्ली

प्रो. गोविन्द शुक्ला
करवड़ जोधपुर (राज.)

डॉ. जयसिंह यादव
जोधपुर (राज.)

डॉ. राकेश जोशी
उदयपुर (राज.)

डॉ. किरण गुप्ता
जयपुर (राज.)

डॉ. गोविन्द पारीक
एनआईए, जयपुर (राज.)

डॉ. अंजना शर्मा
कोटा (राज.)

संपादक एवं पाठ लेखन

संपादक
वैद्य नित्यानंद शर्मा
BAMS, M.D., Ph.D. (योग एवं आयुर्वेद)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

भाषा संपादक
डॉ. अंजना शर्मा
चिकित्साधिकारी ,राज. वैद्य दा.द.जोशी.
जिला आयुर्वेद चिकित्सालय, तलवड़ी,
कोटा (राज.)

पाठ लेखक

वैद्य नित्यानंद शर्मा
आयुर्वेदाचार्य एम.डी.पीएचडी
(योग एवं आयुर्वेद)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

श्री आर. एस. गोगावत
प्रशिक्षक, योगासन एवं सूर्यनमस्कार
कोटा (राज.)

डॉ. अंजना शर्मा
चिकित्साधिकारी ,राज. वैद्य दा.द.जोशी.
जिला आयुर्वेद चिकित्सालय, तलवड़ी, कोटा (राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

प्रो. लीला राम गुर्जर
निदेशक, अकादमिक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

डॉ. शिवकुमार मिश्रा
निदेशक, पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

उत्पादन मुद्रण - जनवरी 2018

इस सामग्री के किसी भी अंश की वमखुविवि कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुन: प्रस्तुत कने की अनुमति नहीं है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

स्वास्थ्य एवं योग विज्ञान

अनुसूची

इकाई संख्या	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ संख्या**
इकाई-1	स्वास्थ्य एवं व्याधि की अवधारणा	2-21
इकाई-2	योग एवं आयुर्वेदिक पद्धतियों का वैज्ञानिक महत्त्व	22-42
इकाई-3	स्वास्थ्य संरक्षण में योग एवं आयुर्वेद की भूमिका	43-68
इकाई-4	अधुनातन विभिन्न संक्रामक व्याधियों मे योग एवं आयुर्वेद का विशिष्ट योगदान	69-95
इकाई-5	योग चिकित्सा कि परिभाषाऐं	96-107
इकाई-6	प्राकृतिक चिकित्सा का योग एवं आयुर्वेद से संबंध	108-120
इकाई-7	विजातीय द्रव्य का सिद्धांत एवं रोग के कारण	121-130
इकाई-8	रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के सूत्र एवं उपाय	131-142
इकाई-9	रोग निदान (आकृति - मल - मूत्र- पसीना एवं जिव्हा)	143-150
इकाई-10	स्वास्थ्य एवं रोग का अर्थ एवं परिभाषा	151-164
इकाई -11	सामान्य योग अभ्यासक्रम (प्रोटोकाल)	165-202
इकाई-12	आपका स्वास्थ्य आपके हाथ (योग : आयुर्वेद)	203-216
इकाई-13	सूर्य नमस्कार का परिचयात्मक स्वरूप	217-242
इकाई-14	चन्द्र नमस्कार का परिचयात्मक स्वरूप	243-250

इकाई 1

स्वास्थ्य एवं व्याधि की अवधारणा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 स्वास्थ्य की अवधारणा

1.4 व्याधि का विवेचना एंव अवधारणा

1.5 डविध क्रियाकाल एवं निदान पंचक अष्टविध परीक्षा काल

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 स्वमूल्यांकन

1.1 सन्दर्भ ग्रंथ

1.10 निबन्धात्ममक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

“स्वास्थ्य हमारा जन्मसिद्व अधिकार है” स्वास्थरूपी अधिकार को पाने के लिये किसी अस्पताल या औषधि का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं बल्कि स्वस्थ रहना पूरी तरह से हमारे अपने हाथ में है। स्वास्थ्य के नियमों से दूर रहने के कारण आज प्रतिस्पर्धा के इस वैश्विक महौल में हम प्रकृति से दूर होकर आज की भौतिक एंव सामाजिक वैश्विक परिस्थितियों में हम अपने आपको स्वस्थ नहीं रख पा रहे हैं। इस इकाई के अन्तर्गत हमने स्वास्थ्य एंव व्यधि की अवधारणा के उन सिंद्वातों का अध्ययन किया गया है। जिससे हम यदि उनका पालन करते है तो अपने आपको रोग मुक्त कर स्वस्थ रखना कोई कठिन काम नही है।

स्वास्थ्य का तात्पर्य ही स्वस्थ अर्थात अपने में स्थित होने से है। अपने अन्दर ही स्वास्थ्य का राज छिपा रखा है। जबकि हमारी शक्तियाँ स्वास्थ्य को ढूढने में बाहर लग रही है। आज के तनावपूर्ण शोरगुल के वातावरण में सब चक्कर लगा रहें है। हमारी उर्जा शक्ति बाहर बह रही है। जबकि स्वास्थ्य की सारी परम्परा अन्दर से शुरू होती है। प्रज्ञाअपराध आदि से बचते हुये आनन्द से जीने के लिये सदाचार सदवृत्तों का नियम, संयम, तप, यम, नियम, आदि शरीर में भीतरी यंत्र से शरीर के कार्य सम्पादित करते हुये उसे स्वस्थ रखते हैं।

सभी रोगों का मूल कारण आज के इस भौतिक जगत में हम मानसिक तनाव एंव विजातिय द्रव्यों का शरीर में बढना है। शरीर के समस्त शारिरिक अंगों के अवयवों जैसे जैसे हृदय, फुफ्फस पाचक रसों के स्राव, एंव त्वचा का कार्य, वृक्कों का कार्य, एवं रक्तशुद्धि आदि। का नियंत्रण नाडी संस्थान के द्वारा मस्तिष्क से होता है। अत: सदवृत्त सदाचार एंव स्वास्थ्य के नियमों, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, एंव आहार एंव निद्रा के नियमों के द्वारा पालन करते हुये स्वस्थ रह सकते हैं।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम अध्ययन करेगें कि

- स्वास्थ्य क्या है स्वास्थ्य के उद्देश्य क्या है- स्वास्थ्य का क्षेत्र क्या है।
- तीन धारणायें क्या है, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रात्रिचर्या, आहार एंव निद्रा के धारणीय एंव अधारणीय वर्गो का वर्णन करणीय अकरणीय कर्म क्या है-
- व्याधिकी अवधारणा, परिभाषा व्याधियों के मूलभूत तीन कारण परीक्षा, नाडी, परीक्षा ,विधि आदि का वर्णन किया जा रहा है।

1.3 स्वास्थ्य का विवेचन एंव अवधारणा

स्वास्थ्य:- स्वास्थ्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। स्व त्रअपने में, स्थत्रस्थित होना। अर्थात स्वास्थ्य एक ऐसा विज्ञान है जो व्यक्ति के अन्दर ही स्थित रहता है। आयुर्वेद के महान आचार्य चक्रपाणिजी ने कहा है कि उसे स्वस्थ व्यक्ति कहते है जो विकार रहित अवस्था में स्थित हो। अर्थात् स्वस्थ व्याक्ति के भाव को ही स्वास्थ्य कहा जाता है। अग्रेजी में भ्मंसजील "स्वस्थष्और भ्मंसी को "स्वास्थ्यष् कहते है।

"स्वस्थ्स्य भाव: स्वास्थ्यष् स्वस्थ का सकारात्मक भाव ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत ही स्वस्थवृत्त का पालन आवश्यक है। स्वस्थकृत क्या है। इसे हम आगे अध्ययन कर जान पायेगें। स्वास्थ्य सम्बंधित जो भी करणीय कार्य एंव नियम है। वे सभी स्वास्थवृत्त के अन्तर्गत आते हैं।

स्वमिन् स्थाने स्वमिन कर्मणि स्वसु

रूपे स्थीयते यत् वृत्तं स्वस्थवृतम्।

"जिसको करने से आहार -विहार दोष धातु मल अपने अपने स्थान पर रहते हुये अपने- अपने नियत कार्य को करें तथा उनका स्वरूप प्राकृतिक रहें, इन सभी का पालन करना स्वस्थवृ ृत्त है।

(1) आचार्य सुश्रुत के अनुसार

स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण:- आचार्य सुश्रुत कहते हैं कि जिस व्यक्ति के शारीरिक (वात पित एंव कफ) तथा मानसिक दोष रज और तम समान अवस्था में हो तो (हीन या अतिमात्रा में नहीं हो) अग्नि (तेरह प्रकार की)समान हो, धातुये सात रस, रक्त, मांस, मेद अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि सम प्रकार में हो, जिसके पुरीश, मूत्र, एंव सवेद की क्रियायें ठीक प्रकार से हो तथा आत्मा , इन्द्रियाँ, और मन जिसका प्रसन्नावस्था में हो आुयर्वेदानुसार उस व्यक्ति को स्वस्थ पुरुष कहते है।

समदोश: समाग्निश्च समधातु मलक्रिय:।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यमिधीयते:।

(आचार्य सुश्रुत)

(2) आचार्य चरक के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

स्वस्थ व्यक्ति के प्ररिप्रेक्ष्य में आयुर्वेद के काय चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञ (ऋषि) आचार्य चरक कहते है कि :-

सममांसप्रमाणस्तु समसंहननों नर:।

दृढेन्द्रियों विकाराणां न बलेन अभिभूयते।।

क्षुत्पिपिपासातपसह शीतव्यायाम संसह।

समपक्ता समजर: सममंास चयेोमत:।।

(i) अर्थात्- जिस व्यक्ति की मांस धातु सम प्रमाण में हो

(ii) शारीरिक गठन समप्रमाण में हो।

(iii) जिसकी इन्द्रियों थकान रहित सुदृढ हो।

(iv) रोगों का बल जिसको पराजित ना कर सकें।

(v) जिसका व्याधिक्ष समत्व बल बढा हुआ हों।

(vi) जिसका शरीर भूख ,प्यास, धूप, शक्ति को सहन कर सकें।

(vii) जिसका शरीर व्यायाम को सहन कर सके।

(viii) पाचन शक्ति आर्थात जाठराग्नि समावस्था में कार्य करती हो।

(ix) निश्चित कालानुसार ही जिसका बुढापा आये। जिसमें मांसादि की चय उपचय क्रियायें में समान होती हो। ऐसे उक्त दस लक्ष्णों वाले व्यक्ति को आचार्य चरक ने स्वस्थ माना है।

(3) आचार्य कश्यप के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण

आयुर्वेद शास्त्र के ही एक अन्य आचार्य कश्यप ने भी स्वस्थ व्यक्ति के सदर्भ में खिल्ल स्थान अध्याय पाचं के 6-7-8 “लोक मे कुछ इस प्रकार उल्लेख किया हैं।

“ अन्नाभिलाशों भुत्तस्य परिपाक: सुखेन च।
सृष्टविष्मूत्रवातत्वं शरीरय तु लाघवं ।
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधकम।
बलवर्णायुंषांलाभ: सौमनस्य समाग्निता।
विद्यादारोग्य लानि विपरीते विपर्ययम “।।

(आचार्य कश्यप)

स्वस्थ्य व्यक्ति के लक्षण निम्नानुसार है-

1. भोजन करने की इच्छा अर्थात् भूख समय पर लगती हो
2. भोजन सुखपूर्वक पचता हो।
3. मलमूत्र और वायु के निष्काशन उचित रूप में होते है।
4. शरीर में हल्कापन एंव स्फुर्ति रहती हो।
5. इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हो
6. मन की सदैव प्रसन्न स्थिति हो
7. सूख पूर्वक रात्रि में शयन करता हो
8. सूखपूर्वक बृह्मचर्य मूर्हूत में जागरण उठता करता हो।
9. बल ,वर्ण एंव आयु का लाभ मिलता हो।

10. जिसकी पाचकाग्नि की समानता हो।

ये उक्त दस लक्षण स्वस्थ व्यक्ति के होते है।

हमेशा स्वस्थ बने रहने के उपाय निम्न है-

(1) **नरो हिताहार विहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त :।**

दातासम: सत्यपर: क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्य रोग:।।

(आचार्य चरक)

1- जो व्यक्ति हितकर आहार का सेवन करने वाला हो।
2- जो व्यक्ति हितकर विहार का सेवन करने वाला हो।
3- सोच विचार कर (समीक्षाकर) कार्य करें।
4- सांसरिक विषयों में लिप्त ना हो।
5- त्यागमय प्रवृत्ति वाला हो।
6- समस्थिति समभाव में रहने वाला हो।
7- दान प्रवृति वाला हो।
8- सत्य बालने वाला हो।
9- क्षमावान हो।
10-महापुरुषों के वचनों का पालन करने वाला हो।
11-उक्त दस प्रकार के स्वभाव वाला वह व्यक्ति रोगी नहीं होता अर्थात् हमेशा स्वस्थ रहता है।

(ट) आचार्य भाव प्रकाश के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण :-

दिनचर्यां निशचर्र्या: ऋतुचर्र्यां यथेदितम।

आचारन् पुरूष: स्वस्थ: सदा निष्ठति नान्यथा।।

अर्थात् सदाचारी पुरुष को दिनचर्या, रात्रिचर्या

एंव ऋतूचर्या का पालन करना चाहिये।

इनका पालन करने वाला व्यक्ति हमेशा स्वस्थ रहता है।

(ट) ण्भ्ण्व्ण् के अुनसार स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण:-

विश्व स्वास्थ्य सगठन की स्वास्थ्य की परिभाषा:-

“ Health is a state of Complete Physical, mental & social well being and not merely an absence of disease or infirmity. (W.H.O. 1148)

स्वास्थ्य के उद्देश्य:-

01. प्रयोजनं चास्य स्वस्थ्य स्वास्थ्य रक्षणं
02. आतुरस्य विकार प्रषमनं चा।।

अर्थात तात्पर्य है कि -

01. स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना
02. एंव रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना।

स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत चाहें वह आयुर्वेद हो या आधुनिक चिकित्सा विज्ञान हो दोनों में ही स्वास्थ्य रक्षा एंव चिकित्सा दोनो पहलूओं पर ही ध्यान देने हेतु कार्य किया जा रहा है।

धर्माथकाममोक्षंणा आरोग्यं मूलमम्।

रोगस्त्स्यापहर्तार: श्रेश्यसो जीवितस्य च:।।

चार पुरूशार्थो धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष की प्राप्ति में आरोग्य सर्वोपरि है। बिना किसी आरोग्य के अर्थात् स्वस्थ जीवन के धर्म (धारणा करने योग्य) अर्थ (धन) काम (इच्छा) एंव मोक्ष (मुक्ति) प्राप्ति सम्भव नहीं है।

सर्वमेवं परित्यं शरीरमुनपालयेत।

शरीरस्य प्रणस्टस्य सर्ववमेंव विनश्यति।

तदभावें हि भावनां सर्वाभाव: शरीरिणाम्।।

अर्थात जो व्यक्ति को सभी कार्य छोडकर सर्वप्रथम शरीर का पालन अर्थात स्वास्थ्य को संरक्षण करना चाहिए। क्योंकि यदि शरीर नष्टता को प्ा्रप्त हो जाये तो सब कुछ व्यर्थ है। स्वस्थ रहने पर ही अन्य भव है कि यदि स्वस्थता नहीं है तो कुछ कार्य सम्भव नहीं है।

शष्टिकान् शाली मुद्गान सैन्धवामलकयवान्।

अन्तरीक्षं पय: सर्पि जग्ड्ल: मधुचाभ्यसत्।।

तच्च नित्यं पय: प्रयुज्जीत् स्वास्थयं येनानुवर्तते।

अजातानां विकाराणां अनुत्पत्तिकरं च यत्।।

अर्थात इन वस्तुओं के नित्य सेवन करने, यथा सम्भव उपभोग करने से रोगों की उत्पति नहीं होती है जैसे- चावल ,मूंग, सैन्धल लवण, आंवला, यव, अन्तरीक्ष जल, दुग्ध, जाडल मांस मांसाहारी, शहद, इनका सेवन हितकारी संरक्षण में उपयोगी है।

“Dimensions of Health.

(i) Physical Dimension
(ii) Mental Dimension
(iii) Social Dimension
(iv) Spiritual Dimension
  A- Social Economical Dimension
  B- Vocational Dimension
  C- Emotional Dimension
  D- Philosophical Dimension
  E- Cultural Dimension
  F- Environmental Dimension
  G- Educational Dimension etc.
  H- Nutritional Dimension
  I- Curative Dimension

Concept of well being

A- Standard of living
B- Level of Living
C- Quality of life

स्वास्थ्य का दशविध क्षेत्र:-

01- दिनचर्या
02- ऋतुचर्या
03- रात्रिचर्या
04- आहार विहार
05- वेगों का धारण एवं अधारण करना
06- निद्रा
07-बृम्हाचार्य चार्यधारण
08- यम नियम पालन
09- पथ्य एवं अपथ्य
10- अष्टांग योग पालन आदि।

मानव शरीर का आरोग्यता एंव निरोगता त्रिदोशों पर आधारित है। वातपित की प्रधानता दनकी सम्यक मात्रा आरोग्यदायक तथा इनकी न्यून या अधिक मात्रा में रोग कारक होती है। इन दोनों की प्रधानता, वायु, ऋतु, दिन, रात्रि, आहार- विहार की अवस्था पर अधारित है।

- दिन के प्रारम्भ में कफ की प्रधानता
- भोजन के मध्य में पित्त की प्रधानता
- शाम के अन्त में वायु की प्रधानता।
- रात्रि के प्रारम्भ में कफ की प्रधानता
- रात्रि के मध्य में पित्त की प्रधानता।
- रात्रि के अन्त में वायु की प्रधानता।
- भोजन के पाचक के समय में कफ की प्रधानता।
- भोजन के मध्य में पित्त की प्रधानता।
- भोजन के अन्त में वायु की प्रधानता।
- वय के पारम्भ बाल्यावस्था में कफ की प्रधानता
- वय के मध्य में (युवावस्था) पित्त की प्रधानता।
- वय के अन्त में (प्रौढावस्था) वायु की प्रधानता रहती है।

स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना इस हेतु किये जाने वाले सारे उपाय सदवृत्त एंव स्वास्थ्य का आधार है। इसके अन्तर्गत निम्न सारें उपायों एवं तीन परिचर्याओं का विशेष पालन करना आवश्यक है।

(अ) तीन परिचर्यायें

01-दिनचर्या:- प्रात: काल में जल्दी बह्मचर्य मूर्हत से लेकर सायं काल तक की जाने वाली चर्या:।

02-रात्रि चर्या - संध्याकालीन एवं शयन करने तक की परिचर्या

03-ऋतुचर्या ऋतू के अनुसार आहर विहार करना ऋतुचर्या है।

(ब) तीन इच्छाये होती है-

(क) प्राण एष्णा

(ख) धन एष्णा

(ग) धन एष्णा

01-प्राण एष्णा :- प्राणों की रक्षा के लिये, स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य संरक्षण के लिये मनुष्य के द्वारा सदाचार एंव स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करना तदनरूप जीवन निर्वाह करना तथा प्राणों को अर्थात् स्वास्थ्य को बनाये रखना।

02-धन एष्णा :- सामाजिक कार्य, व्यक्तिगत कार्य हेतु भौतिक जगत में जीवन के संचालन के लिये , रीति- रिवाज, पालननार्थ धन की आवश्यकता होती है। अत: कृशि करना, नौकरी करना, व्यवसाय करना, आदि काम करना धन के एष्णा में कहलाते है।

03-परलोक एष्णा :- स्वस्थ जीवन एंव धन की प्राप्ति के बाद तीसरी अंतिम परलोक एष्णा होती है। यम, नियम का पालन करना, पापों, से बचना एंव पुण्य कार्य करना कथनी एंव करनी में पवित्रता, परोपकार के काम करना ,दान देना, दूसरों का सहयोग करना, दूसरें के दु:ख में अपने सूख का त्याग करना आदि परलोक एष्णा है। अत: प्रत्येक इपने मनुष्य की मन, बुद्वि, शक्ति से युक्त इस लोक में एंव परलोक में कल्याण चाहने की उक्त तीन एष्णा होती है।

आदश दिनचर्या:-

01-जागरण स्वस्थ व्यक्ति को प्रात:काल ब्रह्म मूर्हूत पूजा - जप - तप एंव प्रवित्र कार्य करने से सकरात्मक स्वच्छ वायुमण्डल की तरंगे मन एंव शरीर को आन्दित करती है।

02-मुखप्रच्छालन- बिस्तर के छोडने के बाद ताजगी हेतु मुँह को धोना चाहिए।
अंजन- नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिये पांच क्रियायें

(i) तर्पण

(ii) पुटपाक

(iii) सेक

(iv) आष्च्योतन

(v) सौवीराजन (श्रेष्ट अंजन) करना चाहिये।

03-अंजन को करना चाहिए

उशा पान:- तांबें के पात्र में रखा रात्रि भर का जल प्रात: काल एक से तीन गिलास पीना चाहिए इससे शौचालय क्रिया समयक, तथा आंतो की मलविसर्जन क्रिया समान्य होती है। मलाषय स्वस्थ्या होता है चेहेर पर चमक आती है।

धम्रपान:-तीन प्रकार की धुम्रवर्ति के द्वारा धुम्रपान करना चाहिए।

01-प्रायोगिकी 02. स्नैहिकि 03. शिरो वैरेचनीकि इससे सिर के रोग, आंख-नाक-दांत- केश, छींक अतिनिद्रा, ज्ञानेन्द्रियों के रोग दूर हो जाते है कफ दोश शांत हो जाता है। हदय में हल्कापन आता है।

02-नस्य:- नाक में स्नेह तेल लगाने पर नस्य कहते है। यह मर्ष एंव प्रतिमर्ष दो प्रकार का होता है नस्य नेत्र , नाक , कान, सिर, एंव दाढी, केश(बालों) के करोग को दूर करता हैं। शिर की संधियॉ मजबूत होती है। स्वर स्पष्ट गम्भीर एंव मजबूत होता है ।

03-

04-शौचक्रिया:- मल के त्याग की अनियमितता होनी चाहिए इससे कब्ज दूर होती है। रात्रि के भोजन का पाचन ठीक होता है। नीदं अच्छी आती है। और संतुलित स्वभाव बनता है। गैस कब्ज को दूर होकर कार्यो में सम्यक प्रृवति होती है। मलमूत्र के वेगों को नहीं रोकना चाहिए।

05-दन्तधावन:- शौचोपरात दांतो की सफाई को दन्तधावन कहते है। बबूल, करवीर, आक, नीम, अर्जून की लकडी की दातौन करनी चाहिए। दातौन से मुह की दुर्गन्ध, दांत, मसूड़े, आदि स्वस्थ हो जाते है।

06-जिहवा मिलेखन:- दंत धावनोपरात जीभ साफ करना चाहिए स्वाद का सम्यक ज्ञान, मूखगत, रोग इसेस दूर होते हैं।आहार में रसों के प्रति स्वाद की प्रति बढती है।

07-गण्डूस धारण:-औषधि सिद्व द्रव्यों क जेल या ताजा ठंडा पानी को मुख में भरकर बैठना गण्डश कहलाता है। तथा गरारें पानी की तरह किया जाता है। कवल कहते हैं। तिल का तेल भी उपयोग में मुह से कर सकते है।

- दांत मजबूत ,दन्तहर्श(गरम ठंडा लगना) गले का सूखना, होटो का फटना दूर हो जाते है।
- सिर पर तेल का लगाना:- सिरदर्द बालों का टूटना, बालो का लम्बे होना, बाल काले एवं चमकीले होते हैं। स्मरण शक्ति, बुद्वि निर्मल होती है एवं गहरी निद्रा आती हैं ।
- कर्ण पुरण - कान में प्रतिदिन तेल डालने से कर्णबाधिर्य, बहरापन, या उँचा सुनना आदि रोग दूर हो जाते है।
- अभ्यंग:- शरीर मे तेल की मालिश करने से त्वचा कातिदा एवं कोमल होती है। वात रोग दूर होते हैं। झुर्रियों दूर होती है। नेत्रज्योति दुर होती है।
- व्यायाम:- शरीर में स्थिरता, बल प्राप्ति स्फूर्ति प्रकूपित कफ सहित दोश शान्त एवं पाचन शक्ति में अभिवृद्वि होती है।
- स्नान- थकावट , पसीना, एंव दुर्गन्ध, बुरे सपने आना आदि दूर होते है। जीवन शक्ति कामोत्तेजना शक्ति, चमक, ओज तेज बढाने वाला होता हे।
- वस्त्र धारण- स्वच्छ वस्त्र पहने इससे शरीर आकर्षण युक्त एंव सुन्दर दिखता है। प्रसन्नता आती है व्यक्तित्त्व में निखार आता है।

- सुगधित द्रव्य का लेप एंव माला को धारण करना:- इससें पसीना दुर्गन्ध दूर होकर मन प्रसन्न होता है। ओज की वृद्वि होती है।
- क्षैारकर्म:- स्नान से पूर्व क्षौरकर्म केश एंव दाढी बनाना नख कर्तन करने से सुन्दरता ,मन प्रसन्न एवं शरीर प्रवित्र होता है।
- पदवेष पहनना:-जूते चप्पल पहनने से नेत्र एवं त्वचा को लाभ होता हे। बलवर्ण पराक्रम आयु बढती है।
- भोजन-उचित मात्रा, उचित समय, पाचन शक्ति के अनुरूप करना चाहिये।
- शिष्टाचार- यम एंव नियमों का पालन करना स्वाध्याय, योगासन, प्राणायाम, का अभ्यास समायोजित स्थान पर नियमित करना चाहिये।
- रात्रिचर्या:- इसमें आहार एंव निद्रा का ही समावेष है । तीन उपस्तम्भों में आहार निद्रा एंव बृह्मचर्य को माना गया है।
- रात्रिचर्या के तीन भाग है-
  01-सांयकालीन चर्या- पूजा, वंदना, आरती आदि।
  02-रात्रिकालीन चर्या- रात्रि में हल्का एंव सूपाच्य मिताहार का सेवन करना।
  03-शयन करना- प्रसन्न मन से आराध्य का ध्यान करना तनाव को दूर कर शयन करना।

रात्रिचर्या (निशाचार) के बिन्दु:-

- आहार एकदम हल्का सुपाच्य हो।
- सोने से दो घंटे पूर्व खा लिया हो।
- भोजन के बाद हल्का पैदल भ्रमण हो।
- स्वाध्याय अध्ययन के समय प्रकाश पर्याप्त हो।
- मन प्रसन्न साहित्य लोकन एंव पठन तथा मनन करे।
- मैथून (संभोग) स्वपत्नी के साथ ही करे।
- प्रतिदिन मैथून नही करे।
- ऋतुमति स्त्री के साथ नहीं करें।
- रूग्णा एंव सक्रमण रोग से पीडित होने पर भी सहवास नहीं करें।
- दुश्चरित्र कामेच्छा में कमी एवं पर पुरुष प्रेमी के साथ संभोग नही करें।
- परस्त्री, हीन जाती अविवाहित, के साथ सभोग नहीं करे।
- प्रातः संध्या पतिप्रदा, पूर्णिमा, अमावस्या, पवित्र त्योहारों में प्रवित्र स्थानों में संभोग नहीं करें।
- प्रवित्र वृक्षों के नीचे, पवित्र नदी नाले एंव तालाब के किनारें ,शमशानघाट, एंव सार्वजनिक स्थानों, पर सहवास नहीं करें।

- मल मूत्र के तीव्र वेग होने पर ,थकावट होने पर, उपवास में एंव दोनों की परस्पर इच्छा नहीं होने पर संभोग नहीं करे।

  निद्रा:- मन की वह स्थिति जिसके उसका साक्षात सम्पर्क ज्ञानेन्द्रियों,, एंव कर्मेन्द्रियों, से नही रहें। केवल ‘‘वास प्रष्वास, रक्त संचार, हदय गति एवं पाचन प्रक्रिया चलती है। अच्छे स्वास्थ्य हेतु निद्रा आवश्यक है।

अवस्था	**समय**
बालक की नींद	20 घंटा
साधारण स्वस्थ व्यक्ति	6-8 घंटा
वृद्वावस्था में	4-6 घंटा
रोंगी भोगी योगी की निद्रा	8 , 6, 4 घंटे

निद्रा स्थान, स्वच्छ, हवादार, बिछावट, सुगन्धित करना चाहियें द्रव्य , रूचि अनुसार संगीत, मन शांत सिर उतर दिषा में नही होना चाहिये।

ऋतुचर्या:- आदान काल - शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म।

विसर्ग काल - वर्षा, शरद, हेमन्त

ऋतु के अनुसार आहार विहार का पालन करना चाहिये।

विशेषकर ऋतुसंधि का ध्यान रखना ,निर्धारित चर्या की पालना करना चाहिए।

अधारणीय धारणीय वेग:-

अधारणीय वेग 13 प्रकार के होते हैं। इनको रोकना नहीं चाहिए। इनको रोकने से मुत्राषय, पेट, शिर, लिंग, आंख, नाक, कान, आदि में दर्द एंव अकडन जकडन आ जाती हैं।

01.मूत्र	08 जुम्मा (जमाई)
पुरीश	क्षुधा भूख
शुक्र	पिपास (प्यास)
अपानवायु	आंसू (अश्रु)
क्षवयु छीक	निद्रा नींद आना
डकार	13 कलम (परिश्रम से उत्पन्न ‘‘वास का वेग)

धारणी वेग:-अच्छा मनुष्य बनने के लिये इनका धारण (नियंत्रण) करें।

01-कुकर्मो, पापकर्मो, अविवेकपूर्ण इच्छाओं का नियंत्रण करना।

02-लालच, भय, क्रोध, शोक, ईश्र्या,अहंकार करना एवं निर्लज्जता आदि पर नियंत्रण करना।

03-कटुशब्द, गाली गलौच करना परस्त्रीगमन पर नियंत्रण आदि।

- स्वास्थ्य सम्बन्धी सदाचार हेतु कर्म।
- देवता, गौ, बृाह्मण, गुरूजन, वृद्व पुरुष की पूजा करना
- हवन , उपासना, करना,

- संध्यावंदन करना
- तन एवं मन की स्वच्छता रखना
- अष्टांग योग में यम नियम का पालन करना।
- स्वच्छ वस्त्र पहनाना
- बालों में कंघी लगाना।
- मर्ष/ प्रतिमर्ष नाक में तेल लगाना करना
- दिनचर्या एवं रात्रिचर्या, का पालन करना।
- गरीब ,वृद्व एंव बालको की सहायता करना
- दान करना यथा शक्ति सामथर्या के अनुसार
- परोपकार एंव पुण्य करना।
- सहानुभूति करना।
- अतिथियों की पूजा करना।
- पिण्डों को पिण्डदान पर्तण करना।
- सभी प्राणियों से सहानुभूति रखना।
- प्रसन्न आनन्दित रहना।

ये कर्म को नहीं करे।

1. झूठ परत्री गमन, परधन पर आसक्ति
2. शत्रुता, पापकर्म
3. ईर्ष्या, अपशब्द
4. परनिद्रा, बडों का अपमान करना
5. गंदे बिस्तर एवं गंदे वस्त्र को धारण करना।
6. सामाजिक स्थानों पर वेगों को निकालना।
7. नाक में अगुलियों को डालना।
8. विकृत चेष्टायें करना।
9. अश्लील हरकते करना।
10. हिंसक पशुओं के पास जाना।
11. बिना स्नान, पूजा करना, भोजन करना आदि।
12. मांसाहार का सेवन करना।
13. पशु पक्षियों को अकारण ही मारना
14. ‘‘मषाम में घूमना।
15. अश्लील साहित्यों का पढना एवं अश्लील चित्र देखना।
16. चिन्ता करना उदण्डता करना आदि।
17. नौकरों के वेतन को रोकना ।
18. निजि व्यक्तियों पर अविश्वास करना।

1.4 व्याधि का विवेचना एंव अवधारणा

व्याधि की परिभाषा:-

स्वास्थ्य की परिभाषा के विपरित लक्षणों को ''व्याधि'' कहते हैं। आरोग्य का नाम सुख एंव विकार का नाम ''दुःख'' (व्याधि) हैं। शारिरीक एंव मानसिक दुःख देने वाले हेतु को विकार कहते हैं। जिस कारण से दोश धातुओं का अति या न्यून मात्रा में परस्पर मिलना, शरीर को दुःख पहुँचाना ''व्याधि'' कहलाती है।

व्याधि के पर्याय:- गद आंतक ,यक्ष्मा, ज्वर, अथवा रोग आदि।

रोगों का निर्धारण करना:- (1) रोगों के विभिन्न भेद

(2) साध्य एंव असाध्यता

(3) रोगो का सम्पूर्ण ज्ञान

इनके आधार पर रोग विनिष्चय (रोग पहचान) की जाती है।

व्याधि उत्पत्ति के कारण:- (1) मिथ्या आहार विहार

(2) प्रज्ञापराध

(3) परिणाम

व्याधियों के भेद:-

(1) त्रिवध व्याधि

A- आधिभौतिक व्याधि
B- आधिदैविक व्याधि
C- आध्यात्मिक व्याधि

A- आधिभैतिक व्याधि दो प्रकार की होती है।

- ये आगन्तुज होती है।
- संघात/ बलज होती है।
- बाह्य कारणों से होती है।

क-व्यालज - जो जानवरों जैसे:- कुत्ता, बिल्ली, के काटने या आक्रमण करने से, सांप, बिच्छू आदि के कारण होने वाली व्याधियाँ।

A-2- शस्त्रज- शस्त्र हथियार के आघात से उत्पन्न

B- अधिदेविक व्याधि प्राकृतिक कारणों से होती है।

(1) काल बलज अर्थात् ऋतु सम्बन्धित व्याधि

(2) देवकाल सम्भूत- देवता- राक्षसों से उत्पन्न

(3) स्वभाव बलज जैसे- भूख, प्यास, क्रोध निद्रा, वृद्वावस्था, आदि।

C- आध्यात्मिक व्याधियॉ:-'

- मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग
- आदिबलज - वंषानुगत रोग व्याधियॉ
- वंषानुगत व्याधियॉ के भेद-

  01. मातृज

  02. पितृज

- अंधापन, पंगु, गूंगापन आदि।
- अनुचित आहार- विहार के रोग

  01. आमाषयोत्थ- कब्ज, अम्लपित्त ‘‘वास आदि ।

  02. शस्त्रज- हथियार चाकू, छूरीं, तलवार,, बंदूक के प्रहार से उत्पन्न

व्याधि के अन्यभेदः- (चार प्रकार के है)

01-आगन्तुज रोग

02-मानस रोग

03-शरीर के रोग

04-स्वाभाविक रोग

व्याधि के अन्य भेद दो प्रकार के हाते है।

01-स्वतंत्र रोग

02-परतंत्र रोग

व्याधि के अन्य भेद (सात प्रकार के होते है)

01-आदिबल प्रवृत्त व्याधियॉ

02-जन्मबल प्रवृत्त व्याधियॉ

03-दोशबल प्रवृत्त व्याधियॉ

04-संधात बल प्रवृत्त व्याधियॉ

05-कालबल प्रवृत्त व्याधियॉ

06-देवबल प्रवृत्तव्याधियॉ

07-स्वभाव बल प्रवृन्त व्याधियॉ

अधिश्ठान भेद दो प्रकार के व्याधियॉ होते है-

क. मानसिक व्याधियॉ

ख. शारीरिक व्याधियॉ

कारण भेद व्याधियॉ दो प्रकार की होती है।

(i) सुख साध्य

(ii) कष्ट साध्य

(iii) याप्य

(iv) असाध्य

आक्रमण के भेद से व्याधियॉ तीन प्रकार की होती है।

(i) मृदु आक्रमण जन्य व्याधियॉ

(ii) मध्य आक्रमणजन्य व्याधियॉ

(iii) तीव्र आक्रमणजन्य व्याधियॉ

01.5 व्याधि की अवधारणा के अन्तर्गत शडविध क्रियाकाल

(अ) वात- पित्त और कफ की न्यूनाधिक मात्रा के द्वारा शारीरिक धातु, उपधातु, मलों की दृष्टि से रागोत्पत्ति तक की छ: अवस्थायें निम्नानुसार होती है।

01. संचय
02. प्रकोप
03. प्रसर
04. स्थान संश्रय
05. अभिव्यत्ति
06. भेदावस्था

1. व्याधि संचयावस्था प्रथम क्रियाकाल अवस्था

त्रिदोश अपने ही स्थानों पर संचित होते हैं। इकट्ठे होते रहते हैं। इसे प्रथम क्रियाकाल कहते हैं। संचय काल में ही यदि चिकित्सा की जाये तो व्याधि की उत्तरोंत्तर गम्भीर अवस्था में नहीं आयेगी।

2. व्याधिकी प्रकोपावस्था (द्वितीय क्रियाकाल)

दोश अपने स्थान से विरूद्व आहार-विहार के कारण वृद्वि कर प्रफुपित होते हुये अन्य भागों में तीन प्रकार गति

क. उध्र्व ख. अध: ग. (तिर्यक) करते है।

3. व्याधिकी प्रसरावस्था(तृतीय काल)

दोश प्रकुपित होकर तीनों गति करते हुये उनमें दूध के उफान की तरह अन्य स्थानों में फैल जाते है। इस अवस्था में प्रकुपित एंव प्रसरावस्था के दोशों को यदि चिकित्सा के द्वारा शोधन या शमन किया जाये तो वह व्यक्ति रोगमुत्त होकर स्वस्थ हो जाता हैं।

4. स्थान संश्रयावस्था (चतुर्थ क्रियाकाल)

विकृत दोश किसी स्थान विशेषकर घूमते हुये फैफडो या धातुओं में पहुॅचकर उन धातुओं(द्रव्यों) को विकृतकर रोगोप्रत्ति करते है। रोगों के पूर्णरूप या अल्प लक्षण इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं।

5. व्यत्तावस्था पंच क्रियाकाल अवस्था

इस अवस्था में व्याधि के सभी लक्षण पूर्णत: व्यत्त हो जाते हैं। इसी को रूप /दर्शन कहते हैं। जैसे बुखार होना, दस्त लगना, खांसी का आना आदि कार्य।

6. भेदावस्था (षष्ठं क्रियाकाल)

इस अवस्था रोगों के भेद किया जाता है कि रोग ठीक होने वाला है या नहीं, साध्य या असाध्य श्रैणी का हैं।

त्रिदोशों में वातिक है या पैत्तिक हैं या कफज है, या त्रिदोश है या द्विदोशज हैं।

व्याधियों की अवधारणा के अन्तर्गत निदानपंचक

आतुर के रोग का नाशक करने में तीन महत्वपूर्ण सूत्र है।

आतुरस्य रोगप्रशमजून्।

क. हेतु ज्ञान अर्थात् व्याधियों का कारण

ख. लिंग ज्ञान अर्थात् व्याधि का लक्षण

ग. औषध ज्ञान अर्थात् व्याधि की चिकित्सा

आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि पहले रोग के स्वरूप का ज्ञान करों, फिर औषध आदि की चिकित्सा करो।

रोगमादौ परीक्षेत् ततोअनंतरं औषधम्।

व्याधि क्या है वस्तुत: व्याधि रोगस्तु दोश वैशम्यम दोशों का विषम होना हैं। ये विषय दोश जब द्रव्यों अर्थात धातुओं को दूशित करते हैं। तो रोग उत्पन्न होते हैं।

निदान पंचक में व्याधि के ज्ञान हेतु पांच स्तर होते हैं। जो कि निम्नुसार हैं:-

निदानं पूर्णरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।

समप्राप्तिश्चैतानि विज्ञानं रोगाणां पच्चधा स्मृतम्।

(माधव निदान)

रोगों के ज्ञान का साधन रूपी ये पंचनिदान है।

(i) निदान (भावी रोग ज्ञापक)
(ii) पूर्णरूप (रोग निर्णय में अपेक्षा)
(iii) रूप (सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान)
(iv) उपषय (विशेष ज्ञान प्रप्ति हेतु)
(v) सम्प्राप्ति (दोश की अंषाष कल्पना)

व्याधियों के हेतु का वर्णन:- हेतु, निमित्त , कारण, निदान योनि, प्रत्यय, कर्त्ता मुख प्राकृत ये पर्याय हैं।

जो भी मिथ्या आहार विहार आदि बाह्यके निमित्त कारणोंसे धातुओं में विषमता (क्षय वृद्वि) उत्पन्न करके शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न करें उन सभी को हेतु निदान या व्याधियों का कारण कहते है।

व्याधि होने के तीन महत्वपूर्ण कारण है।

01-असात्येन्द्रियार्थ संयोग:-

अर्थात इन्द्रियॅा से होन वाले हीन एंव मिथ्या या अतियोग करना जैसे नेत्र से तेज चमक देखना (अतियोग) आंखों से नहीं देखना (अयोग)एंव अतिसूक्ष्म देखना, बहुत दूर की

वस्तुओं को जोर देकर देखना मिथ्या योग है।कर्मेन्द्रियों का भी हीन योग मिथ्यायोग या अतियोग होता है। जैसे - अधिक चलना अतियोग सर्वदा नहीं चलना (अयोग) नंगे पैर भूमि में , कांटो पर चलना(मिथ्या योग)

02-प्रज्ञापराध:-बुद्धि -स्मृति धैर्ये के नष्ट होने पर मनुष्य के द्वारा जो कार्य किया जाता हैं। उसे प्रज्ञापराध कहते हैं। सभी संका्रमक रोग एंव व्यसन जन्य रोग तथा यौन रोगों का कारण भी प्रज्ञापराध ही होता हैं। जो तीन प्रकार का होता हैं।

(i) शारीरिक प्रज्ञापराध

(ii) मानसिक प्रज्ञापराध

(iii) वाचक प्रज्ञापराध

धीधृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत् कुरूतेअशुभम्।

प्रज्ञापराधं तं विद्यात सर्वदोश प्रकोपणाम त्रिविधं।।

(महर्षि चरक)

03-परिणाम:- काल को परिणाम कहते है यथा-काल: पुन: परिणाम उच्चते।। ऋतुचर्या के अन्तर्गत ऋतुओं का हीन योग, मिथ्या योग या अतियोग, ऋतु संधि का पालन नहीं करना। आदि परिणामजन्य व्याधि उत्पादक कारण हैं।

व्याधियॉ के छ: सम्प्राप्ति जन्य भोद है।

(i) संख्या सम्प्रादित (रोग की संख्या आठ उदररोग, बीस प्रमेंह आदि)

(ii) विकल्प सम्प्राप्ति (दोशों की अंषाषं परिकल्पना ,क्षयवृद्धि के अनुसार)

(iii) प्राधान्य सम्प्राप्ति (दोशों की स्वतंत्रता एंव परंतत्रता)

(iv) काल सम्प्राप्ति (दोशों का आहार काल, ऋतुजन्य, संचय प्रकोपादि अवस्था)

(v) विधि सम्प्रादित (व्याधियों का प्रकार)

विधि सम्पादित चार प्राकर की होती है।

(I) मृदु साध्य (सुख साध्य)

(II) दारूध साध्य (कृच्छ्र साध्य)

(III) मृदु असाध्य (याप्य)

(IV) दारूण असाध्य (असाध्य)

व्याधियों के उपद्रव:-

रोंगारम्भक दोश प्रकोप जन्योअन्य विकार:।

जो रोग उत्पन्न करने वाले दोशों के अधिक प्रकोप से जो कि अन्य विकार उत्पन्न होते है। उसे ‘‘उपद्रव ‘‘कहते हैं।

- जिस दोष से रोग विशेष उत्पन्न होता हैं, उसी दोष से मुख्य रोग के के पश्चात उत्पन्न विकार को ‘‘उपद्रव ‘‘कहते हैं।
- रोग के होने के उत्तर में (पश्चात् काल में) उत्पन्न हों, रोग के आश्रित हो उसे ‘‘उपद्रव ‘‘कहते हैं।

➢ प्रधान रोग के बाद जो उत्पन्न हो उसे उपद्रव "कहते हैं।

1.5 व्याधि की अवधारणा के अन्तर्गत अष्ट विधा परीक्षा

व्याधियॉ को जानने के लिये आठ पकार की परीक्षा की जाती है। उसे अष्टविध परीक्षा कहते है। यथा:-

(I) नाड़ी
(II) मूत्र
(III) मल
(IV) जिह्वा
(V) शब्द
(VI) स्पर्ष
(VII) नैत्र
(VIII) आकृति

नाडी परीक्षा विधि के तीन स्तर है-

(I) चिकित्सक
(II) रोगी सम्बन्धी
(III) परीक्षा सम्बन्धी

01. चिकित्सक सम्बन्धी :-

A- स्थिरचित्त
B- तन्मयता
C- मनबुद्वि की एकाग्रता
D- चिकित्सक पूर्वाभिमूख या उत्तराभिमूख कर बैठें
E- चिकित्सक व्यसन मद्यपान नहीं करें
F- धन के लोभवष परीक्षण ना करे।
G- कामवासना रहित होकर कम से कम दो मिनट तक नाडी को देखे। इसमें हाथ की तीन अगुलियों के द्वारा तर्जनी, मध्यमा , अनामिका ।

02. रोगी सम्बन्धी:-मलमुत्रादि वेगों का निर्वहण करने के बाद सुखासन में बैठकर या लैटकर भूख प्यास से पीडित ना हो एवं तत्काल भोजन के बाद नाड़ी का परीक्षण नहीं करे। व्यायाम, स्नान, के तुरन्त बाद नाड़ी का परीक्षण नहीं करे। मैथुन के बाद नाड़ी का परीक्षण नहीं करें। काम, क्रोध, शोक, चंचल , मन की नाड़ी का परीक्षण नहीं करें।

03. परीक्षा सम्बन्धी:-खाली पेट आराम से लैटकर या बैठकर स्त्रियों के बाये हाथ की पुरुषों की दायें हाथ की तर्जनी ,मध्य का अनामिका, अगुलियॉ का अगुलियों द्वारा उठाकर पुन: दबाव डालते हुये तीन नाड़ी को देखते हैं।

नाडी के ज्ञान द्वारा दोशों का ज्ञान

वात की नाड़ी:- वक्रगति की होती हैं
सर्प की गति की जैसी चलती हैं।

	पित्त की नाड़ी	चपला , त्रीवता, ती्रवा, प्रवृद्व गति मण्डूक के जैसी चलती है मेढक
	कफ की नाड़ी	स्थिरा, स्तब्धा, प्रसन्नता हंस, हाथी की गति जैसी चतली हैं।
वात:-	प्राणवायु	मूर्धा, हृदय
	उदानवस्यु	कण्ठ प्रदेश
	समान वायु	नाभि कोश्ठ
	व्यान	सर्वशरीर
	अपान	गुदा

पित्त- 01 . साधक पित्त हृदय

02. पाचक पित्त कोश्ठ

03. रंजक पित्त यकृत प्लीहा

04. भा्रजक पित्त त्वचा

05. आलोचक पित्त नेत्रों में

कफ:-

01. बोधक कफ	-	जिव्हो में
02. क्लेदक कफ	-	अमाशय में
03. तर्पक कफ	-	हृदय में ,इन्द्रियो में
04. ‘‘लेश्क कफ	-	संधियों में

नाड़ी परीक्षा की विधि:-

पुरुष के दायें हाथ एंव स्त्री के बायें हाथ के अगूंठें मूल से नीचे तर्जनी, मध्यमा एंव अनामिका अगुंली परीक्षण कर्ता के दांये हाथ के द्वारा हाथ को 90 डिग्री के कोण पर रखें हुये चिकित्सक के द्वारा ध्यानस्थ होकर हृदय में आने वाले सं्पदन का अनुभव करते हुये वात्रपित्त एंव कफ के खते पांचों भेदों का ज्ञान प्राप्त करे।न्यूनतम दो मिनट अवष्य मन से एकाग्रभावपूर्वक अभ्यास एंव अनुभवों के आधार पर सटिक नाड़ी का परीक्षण करने से रोगों का सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है।

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों जैसे दिनचर्या , आहार विहार, वेगों,का धारण- अधारण, निद्रा, रोगों के कारण, रोगों की परीक्षा विधि, शड्क्रिया काल, पंचनिदान आदि का वर्णन संक्षेप में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु जनजागारण में जाग्रति के लिये सरल भाशा में किया गया है। इस इकाई का अध्ययन हम आयुर्वेद एंव हमारी प्रचीन स्वास्थ्य के सिंद्वान्तों की व्यापक वैज्ञानिक सोच के बारें में जानकारी से अवगत होते हुये स्वास्थ्य के क्षैत्र में

पहला सुख निरोगी कार्यों को सिंद्वान्तानुसार सर्वेभवन्तुसुखिन: की प्राप्ति में सहायक होगें।

1.7 शब्दावली

- स्वस्थवृत्त - स्वस्थ एंव सदाचार के नियमों का पालन करना
- साठी चावल - जिसकी फसल साठ दिन के पककर तैयार हो वह चावल
- उशापान - रात्रि में ताम्बें केब र्तन में रखा हुआ जाल जिसे ब्रह्ममुर्हूत में उठकर पीया जाता है।
- नंश्य - नाक में तेल लगाना
- दन्तधावन - दातौन करना
- क्षैारकर्म - दाढ़ी बनाना
- पदवेष - जुते -चप्पल
- क्षवथु - छीक आना
- अश्रु - आंख के आंसू
- वंषानुगत - जन्म से हुये रोग मधुमेह रोग, हदय रोग आदि।
- जन्मजात रोग - अंधापन, पंगू गूंगा ,बहरा , आदि।
- आगन्तुज रोग - बाह्य कारण आघात, चोट, शस्त्रादि से उत्पन्न होने वाले रोग।
- दारूण असाध्य - वे रोग जो कि निश्चित रूप से ठीक नहीं हो सकें।
- आलोचकपित्त - नेत्रों में रहने वाला पित्त
- ‘‘लेश्मक कफ - संधियों में रहने वाली चिकनाई

1.8 स्वमुल्याकन प्रश्न

1. स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है ?
2. स्वस्थ के लक्षण क्या है ?
3. स्वास्थ्य के दो प्रयोजन क्या है ?
4. अधारणीय वेग कौन कोन से है ?
5. पंच निदान कौन से है ?
6. अष्टविध परीक्षा कौनसी है ?

1.9 संदर्भ ग्रंथ

- आयुर्वेद बोध: - डॉ. श्रीमति विमला शर्मा
- आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान - डॉ. श्रीमति विमला ‘‘र्मा
- स्वस्थवृत्त विज्ञान - डॉ. सर्वेष कुमार अग्रवाल
- योगासन एंव योगसाधना - डॉ. सत्यपाल

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य का विवेचन करते हुये इसकी अवधारणा का आज के परिवेश में वर्णन किजिएं।
2. व्याधि का विवेचन तथा अवधारणा को लिखियें।
3. अधारणीय एंव धारणीय वेगों का स्वास्थ्य पर प्रभाव का वर्णन कीजिये।
4. दिनचर्या रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का उल्लेख कीजिये।
5. शडक्रियाकाल, निदानपंचक, एंव नाडी की परीक्षा को विस्तार से वर्णित कीजिये।

इकाई - 2

योग एवं आयुर्वेदिक पद्धतियों का वैज्ञानिक महत्त्व

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 योगासन का वैज्ञानिक महत्त्व

2.4 प्राणायाम, त्रिबंध एवं मुद्रा विज्ञान का वैज्ञानिक महत्त्व

2.5 शट्कर्मों का वैज्ञानिक महत्त्व

2.6 अष्टांग योग का वैज्ञानिक महत्त्व

2.7 आयुर्वेदिक त्रिदोषों का वैज्ञानिक महत्त्व

2.8 आयुर्वेदिक पंचमहाभूत, पंचकर्म एवं पथ्यापथ्य का वैज्ञानिक महत्त्व

2.9 आयुर्वेदिक दिनचर्या, ऋतुचर्या एवं सदवृत्त का वैज्ञानिक महत्त्व

2.10 सारांश

2.11 बोधात्मक प्रश्न

2.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1 प्रस्तावना

स्वस्थ अर्थात् ''रोगमुक्त जीवन'' मानव की सर्वोच्च प्राथमिक आवश्यकता है। ''धमार्थकाममोक्षणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्'' के अनुसार चारों पुरूशार्थ अर्थात् 1 धर्म 2 अर्थ 3 काम 4 मोक्ष की प्राप्ति के मूल में आरोग्यता (निरोगी काया) सर्वोपरि मानी गयी है। त्रिऐशणायें 1. प्रानेशना 2. धनेशणा 3. परलोकेशणा की पूर्ति का माध्यम भी स्वस्थ जीवन है। साथ ही ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' अर्थात् धर्म का साधन भी स्वस्थ शरीर को माना है।

आज के भौतिकवादी यांत्रिक युग की चकाचौंध में मानव भोगविलासी प्रवृति, प्रज्ञापराध, अब्रह्मचर्य, प्रदूशित एवं मिलावटी आहार-विहार, कीटनाशक रसायनों से उत्पादित आहार सामग्री, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों (मोबाइल आदि) से उत्पन्न आणविक तरंगों तथा प्रतिस्पर्धा के युग में मानसिक तनाव आदि के कारण बीमार होता जा रहा है। ऐसे में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु योग एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के स्वास्थ्य सिद्धान्तों का दैनिक जीवन में पालन करते हुये दोनों पद्धतियों द्वारा दो उद्देश्य 1 स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य का संवर्धन तथा 2 बीमार व्यक्ति के रोग का उपचार कर आरोग्यता प्राप्त की जा सकती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेगें-

- योगासन का वैज्ञानिक महत्त्व
- प्राणायाम, त्रिबंध एवं मुद्रा विज्ञान का वैज्ञानिक महत्त्व
- शट्कर्मों का वैज्ञानिक महत्त्व
- अष्टांग योग का वैज्ञानिक महत्त्व
- आयुर्वेदिक त्रिदोषों का वैज्ञानिक महत्त्व
- आयुर्वेदिक पंचमहाभूत एवं पथ्यापथ्य का वैज्ञानिक महत्त्व
- आयुर्वेदिक दिनचर्या, ऋतुचर्या एवं सदवृत्त का वैज्ञानिक महत्त्व

2.3 योगासन का वैज्ञानिक महत्त्व

- योगासनों को करते समय शरीर को आगे, पीछे, दांये, बायें आसनों की विधि के अनुसार झुकाते हैं, तानते हैं, ढ़ीला करते हैं या मरोड़ की क्रिया करते हैं इससे शरीर की रक्तनलिकायें शुद्ध होती है, जिससे हृदय को सम्पूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त पहुँचाने तथा विकार युक्त अशुद्ध रक्त को वापस हृदय की ओर लाने में सुगमता होती है। स्वस्थ रहने का यह सिद्धान्त है कि शरीर में जहाँ जहाँ शुद्ध रक्त कोशिकाओं में संचरित होता है सम्बन्धित वे अंगावयवसक्रिय, पुष्ट तथा रोगमुक्त होते हैं।
- योगासनों द्वारा फुफ्फुस के वायुकोशों में अधिकाधिक प्राणवायु ($व_2$) की अभिवृद्धि होती है, जिससे रक्त की अधिक मात्रा में शुद्धि होती है।
- शरीरस्थ निर्मित विजातीयद्रव्य जो कि रोगोत्पत्ति के प्रधान कारण है, वे शनैःशनैः नासिका ($ब्व_2$) त्वचा (पसीना), मूत्रेन्द्रिय (मूत्र) तथा गुदेन्द्रिय (मल) आदि द्वारा बाहर उत्सर्जित होते हैं।
- योगासनों द्वारा जाठराग्नि सषक्त होती है जिससे पाचन शक्ति बढती है एवं सम्यक् मात्रा में भूख लगती है। परिणामस्वरूप आहार से पाचनोपरान्त पोषण द्वारा ऊर्जा एवं शक्ति प्राप्त होती है।
- योगासनों द्वारा शरीर के जोड़ संधियों तथा मेरूदण्ड में कठोरता दूर होकर लचीलापन आता है। जिससे रक्तसंचार संयमित होता है तथा मेरूदण्ड की लचकता से शडचक्र प्रभावित होकर शक्ति के केन्द्र जागृत होते हुये आरोग्यता प्राप्त होती है।
- शरीर शिथिल करने वाले आसनों द्वारा शरीर तथा मस्तिष्क की नस-नाड़ियाँ तनाव मुक्त होकर कार्यशील होती है। नाड़ियां शुद्ध एवं शान्त होती है जिससे तनाव दूर होकर मन प्रसन्न होता है।
- ध्यान के आसनों द्वारा चित्त शान्त होती है, मन स्थिर होता है, इंन्द्रियों की गति अन्तर्मुखी होती है तथा मन सात्विक विचार प्रधान होते हुये नकारात्मकता दूर होकर सकारात्मक जीवन शैली का भाव बढ़ता है।
- योगासनों के द्वारा शरीर की रक्तवाहिनियाँ लचीली रहती है वे सख्त कठोर नहीं हो पाती, जिससे हृदय को बल मिलता है साथ ही रक्तसंचार संतुलित एवं नियमित होता है।
- योगासनों से फुफ्फुसों की मजबूती बढ़ती है।
- योगासनों से रक्तशुद्ध होता है। मनस्थिर होकर शांत होता है।

- योगासनों से अंतस्त्रावी ग्रंथियों का स्त्राव नियमित होता है। जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है।
- योगासनों से पाचन संस्थान सषक्त होता है, जिससे अग्निमांद्य कब्ज आदि दूर होती है।
- योगासनों से मांसपेषियां को मजबूती मिलती है जिससे शरीर सुन्दर दिखता है।
- योगासनों से शरीर एवं मन दोनों की आरोग्यता प्राप्ति होती है।
- योगासनों से महिलाओं में लावण्यता, सौम्यता एवं सुन्दर आकर्शक शरीर बनता है।
- योगासनों से जीवन शैली जन्य रोग जैसे - मधुमेह, मनोअवसाद, तनाव, मोटापा, थायोराइड, वातरोग, हृदय रोग आदि दूर होते है।
- योगासनों से चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, जिससे मेधा शक्ति, धारणा शक्ति एवं बौद्धिक क्षमता बढ़ती है।
- योगासनों द्वारा शरीर में उत्पन्न विजातीय द्रव्य जैसे - मल, मूत्र, स्वेदादि (पसीना) सम्यक् मात्रा में बाहर निकलते है।

2.4 प्राणायाम, त्रिबंध एवं मुद्रा विज्ञान का वैज्ञानिक महत्त्व

- प्राणायाम करने से पाचन तंत्र स्वस्थ होकर उदर विकार (पेटरोग) दूर होते है।
- प्राणायाम करने सेहृदय एवं फुफ्फुस सषक्त होते है।
- प्राणायाम करने से शरीर में ऑक्सीजन प्राण तत्त्व की मात्रा बढ़ती है।
- प्राणायाम करने से अतिरिक्त संचित मेद दूर होता है।
- प्राणायाम करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- प्राणायाम करने से शरीर की नाड़ियां, रक्तनलिकायें शुद्ध होती है।
- प्राणायाम करने से शारीरिक सुस्ती-आलस्य दूर होता है।
- प्राणायाम करने से भूख प्यास सम्यक् मात्रा में लगती है।
- प्राणायाम करने से लम्बा गहरा पूरक, कुम्भक एवं रेचक होता है। जिससे दीर्घायु प्राप्त होती है।
- प्राणायाम करने से उदर, यकृत (लीवर), मूत्राषय, छोटी आंत, बड़ी आंत्र आदि अंगावयव प्रभावित होकर स्वस्थ होते हैं।
- प्राणायाम करने से बढे हुए या घटे हुए त्रिदोष(वात पित्त कफ) समअवस्था में हो जाते हैं।
- प्राणायाम करने से विजातीयतत्त्व (रोक्तिसक) नष्ट होते है।
- प्राणायाम करने से काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि मानसिक दोष नष्ट होते हैं।
- प्राणायाम करने से मन में शांति, एकाग्रता, स्थिरता एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है।
- प्राणायाम करने से शड़चक्रों का शोधन, भेदन एवं कुण्डलिनी जागरण में सहायता मिलती है।

- प्राणायाम करने से वलित (गंजापन) एवं पलित रोग (बालों का पकना) दूर होते है।
- प्राणायाम करने से चेहरे पर ओज, तेज, आभा, प्रभा, दीप्ति एवं कांति बढ़ती है।
- प्राणायाम करने से मोटापा, कब्ज, कॉलेस्ट्राल, अम्लपित्त (एसीडिटी), एलर्जी, "वास रोग, माइग्रेन, किडनी आदि के रोग दूर होते हैं।
- प्राणायाम करने से स्त्रियों के माहवारी (आर्त्तव), प्रदर, यौन रोग एवं अन्य हार्मोन्स के विकार दूर होते हैं।
- प्राणायाम करने से ''हार्ट के ब्लोकेज'' दूर होते हैं।
- प्राणायाम करने से शरीरस्थ ''जीवन ऊर्जा'' बढ़ती है एवं सकारात्मक शक्ति जन्य भाव उत्पन्न होते हैं।
- प्राणायाम करने से समस्त त्रिदोषजन्य रोग दूर करने में सहायता प्राप्त होती है।
- प्राणायाम करने से सभी सातचक्रों का शोधन होता हैं।
- प्राणायाम करने से गर्मी के रोग (पित्तजन्य) सर्दी के रोग (कफजन्य) नष्ट होते हैं एवं वायु सम्यक् मात्रा में होने से सभी वातरोग भी नष्ट होते हैं।

हठयोग प्रदीपिका (ह.प्र3/78) के अनुसार प्राणायाम के द्वारा शरीर में निम्नानुसार दस लाभ प्राप्त होते हैं-

1- शरीर मे हल्कापन
2- मुख पर प्रसन्नता
3- स्वर में सौश्ठवता (माधुर्य)
4- नैत्रौं में तेजस्विता
5- शारीरिक मानसिक रोगों का अभाव
6- रोगों का अभाव
7- आज्ञाचक्र से स्त्रवित बिन्दु स्त्राव पर नियंत्रण
8- जठराग्नि की प्रदीप्ति
9- नाड़ियों की विशुद्धि
10-आरोग्यता में वृद्ध

2.4 योगासन एवं प्राणायाम का वैज्ञानिक विवेचन

स्वास्थ्य की दृष्टि से -

- महर्षि पतजंलि ने अष्टांग योग में पांच यमों को प्रतिरोधक तथा पंचनियमों को अनुपालनीय बताया है।
- यम एवं नियमों को स्वास्थ्य एवं कल्याण हेतु योगाभ्यास के पूर्व अपेक्षित एवं अनिवार्य बताया है।
- आसनों का अभ्यास शरीर एवं मन में स्थायित्व, स्थिरता तथा मनोदैहिक स्थिति में जागरूकता बनाये रखने हेतु आवश्यक बताया है।
- प्राणायाम द्वारा पूरक, कुम्भक एवं रेचक प्रक्रिया के सुव्यवस्थित एवं नियमित अभ्यास को दीर्घष्वसन के प्रति जागरूकता तथा मन के प्रति सजगता उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण बताया है। मन की शांति एवं मनके नियंत्रण हेतु प्राणायाम की महत्ती भूमिका है।

- प्रत्याहार के अभ्यास से व्यक्ति सांसारिक विषयों का त्यागकर मन तथा चैतन्य केन्द्र के एकीकरण का प्रयास कर, इंद्रियों के निग्रह (नियंत्रण) को प्राप्त करता है।
- मन के एकीकरण की अवस्था ध्यान है। मन का व्यापक आधार क्षेत्र का विषय धारणा है। शरीर एवं मन में अन्तर्मुखी केन्द्रित ध्यान की निरन्तरता एवं एकाग्रता होने पर यही ध्यान की अवस्था समाधि में परिवर्तित हो जाती है।

2.4 स) त्रिबंधों का वैज्ञानिक महत्त्व

बंध एवं मुद्रा ऐसे योग अभ्यास है जो विशेष रूप से नियंत्रित ‘‘वसन के साथ विशेष शारीरिक बंधों एवं विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से किये जाते हैं। बंध एवं मुद्राओं के द्वारा मन का नियंत्रण तथा उच्च्च योगिक सिद्धियों कीप्राप्ति के लिये आधार तैयार होता है। वस्तुत: बंध एवं ध्यान मूल रूप से प्राणायाम से संबंधित ही है।

बंध तीन प्रकार के होते हैं, यथा 1 मूलबंध 3 उड्डियान बंध 3 जालन्धर बंध

1 मूलबंध

इसका कार्यक्षेत्र मूलाधार चक्र से संबंधित है जो कि गुदा तथा जननन्द्रियों के मध्य स्थित होता है

- इससे गुदा तथा जननेन्द्रियों के विकार दूर होते हैं।
- ब्रह्मचर्य की साधना में सहायक होता है।
- अर्ष-भगन्दर (पाइल्स-फिस्टूला) आदि गुदा के रोग दूर होते है।
- प्राण एवं अपान में समत्व भाव पैदा करता है।
- कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया का आधार तैयार करता है।
- मूलबंध बल-वीर्य में वृद्धि करता है, बूढ़ापे को दूर करता है एवं यौवन बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण है।

2. उयानबंध

इस बंध से प्रौढ़ावस्था दूर होती है।

- युवावस्था बनी रहती है।
- अनाहतचक्र एवं मणिपूरकचक्रदोनों जागृत होते हैं।
- जठराग्नि तीव्र होती है एवं पाचन संस्थान सुधरता है।
- पेट के अंगावयव जैसे - यकृत, प्लीहा, वृक्क, अग्नाषय, पित्ताषय आदि मुलायम (कोमल) होते हैं।

3. जालन्धरबंध

- इस बंध से विशुद्धिचक्र जागृत होता है।
- मस्तिष्क को विश्राम मिलता है।
- अहंकार का नाश होता है।

- कण्ठप्रदेश स्वस्थ होता है।
- मनोअवसाद, चिन्ता, तनाव, गुस्सा शांत होता है।
- स्मरण शक्ति बढ़ती है।
- मन की एकाग्रता एवं स्थिरता में सहायक होता है।

बंधों का शाब्दिक अर्थ है बांधना, कसना या नियंत्रण में होना होता है। शरीर को बांध लिया जाता है जिससे प्राणायाम द्वारा प्राप्त ऊर्जा को अन्तर्मुखी किया जाता है। जिससे शक्ति का बिर्र्हगमन नहीं हो पाता है। बंधों से प्राप्त शक्ति को शरीरस्थ अंतरंग अवयवों में वितरण किया जाता है। प्राप्त शक्ति द्वारा अंगों की मजबूती होती है। अंगों की शुद्धि होकर वे निर्मल बनते हैं। सुशुम्ना नाड़ी जागृत होती है। प्राणायाम का विशेष पूर्ण लाभ बंधों द्वारा प्राप्त होता है। त्रिबंधों को एक साथ लगाने को ''महाबंध'' कहते हैं।

2.4 (द) **मुद्रा विज्ञान का वैज्ञानिक महत्त्व-**

भारतीय संस्कृति''योग विज्ञान'' का अतिवैषिश्ट लिये हुये है। प्राचीन वैज्ञानिक कलाओं के अन्तर्गत ''हस्तमुद्रा विज्ञान'' भी एक विशेष कला है। जिससे पंचतत्त्वों के द्वारा पांचों अंगुलियों से विभिन्न मुद्रायें बनाकर शारीरिक, मानसिक तथा अत्मिक उत्थान रूपी आरोग्यता प्राप्त होती है।

नाम	तत्त्व
1- अंगूठा	अग्नितत्त्व
2- तर्जनी	वायुतत्त्व
3- मध्यमा	आकाशतत्त्व
4- अनामिका	पृथ्वीतत्त्व
5- कनिष्ठा	जल तत्त्व

- उक्त अंगुलियां संबंधित तत्त्व को इंगित करते हुये रोगों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करती हैं।
- मुद्रा विज्ञान पूर्णत: अहिंसात्मक चिकित्सा विज्ञान है।
- ज्ञानमुद्रा से अनिद्रा, पागलपन, चिड़चिड़ापन, क्रोध, आवेष, स्मरणषक्ति में न्यूनता आदि दूर होती है।
- वायुमुद्रा में वातदोष की अधिकताजन्य रोग जैसे - पक्षाघात(लकवा), गठिया, आयवात, सिरदर्द, कम्पन्न, हृदय विकार दूर होते है।
- शून्य मुद्रा (आकाशीय मुद्रा) द्वारा कर्ण रोग, बाधिर्य एवं कर्णपीड़ा दूर होती है।
- सूर्य मुद्रा द्वारा शरीर का मोटापा, भारीपन कम होता है।
- वरूणमुद्रा - इसके द्वारा जलतत्त्व की कमी से होने वाले रोग पथरी, रक्तविकार त्वचा में खुष्की (रूखापन) आदि दूर होता है।
- पृथ्वी मुद्रा से शरीर का भार स्थिर रहता है।

- प्राण मुद्रा - इसके अभ्यास से कमजोरी दूर होती है, विटामिन्स एवं प्रोटीन की कमी दूर होती है। नेत्र विकार दूर होकर दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है जिससे चष्में तक उतर जाने में सहायता मिलती हैं।
- लिंग मुद्रा - इसके अभ्यास से सर्दियों में भी गरमी का अहसास होता है। पुराना नजला-जुखाम आदि दूर होते हैं।

2.5 शटकर्मों का वैज्ञानिक महत्त्व

शटकर्म शरीर के मलषोधनार्थ उपयोग में लिये जाने वाली विषिशट विधा का नाम है, जो निम्नानुसार है

1 धौति	4 त्राटक
2 वस्ति	5 नौलि
3 नेति	6 कपाल भाति

1 धौति - ये चार प्रकार की होती है

(अ) अन्तधारैति	(स) हृद धौति
(ब) दन्तर्धौति	(द) मूल शोधन

(अ) अन्तधारैति - इसके द्वारा शरीर के अन्दर की सफाई होती है -

- जाठराग्नि प्रदीप्त होती है।
- पेट संबंधी रोग दूर होते हैं।
- शंख प्रक्षालन द्वारा कायाकल्प का लाभ प्राप्त होता है।
- नवयौवन प्राप्त होता है।
- शरीर कांतिमान होकर स्वस्थ होता है।
- मुख से जल ग्रहण कर मलद्वार से निष्काशन करने से आंतों की शुद्धि हेतु यह एक वैज्ञानिक पद्धति है।
- पेट की शुद्धता होती है जिससे विशाक्त मल दूर होकर कब्जीयत दूर होती है।
- उदर के कृमि- कीटाणु एवं विशाक्त वायु दूर होती है।
- स्मरण शक्ति तेज होती है।
- चेहरे पर तेज बढ़ता है।
- रक्त विकार दूर होते हैं।
- चिडचिड़ापन, आलस्य, थकान, सुस्ती, काम-क्रोध जैसे विकार दूर होते है।
- त्रिदोष (वात पित कफ) सम अवस्थाओं को प्राप्त होते है।
- मुंह से लेकर मलद्वार तक महास्रोतस की सफाई होती है।

- पेट के कृमि (कीटाणु) नष्ट होते हैं।
- अर्ष भगन्दर (पाइल्स-फिस्टूला) जैसे गुदा के रोग नष्ट होते हैं।
- ''अग्निसार धौति'' के द्वारा उदर (पेट) के सभी अंगों की मालिश होकर उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है।
- पाचन संस्थान एवं जठराग्नि शक्तिषाली होती है।
- शरीर में ओज, तेज, आभा एवं प्रभा बढ़ती है।

(ब) दन्त धौति -

- दांतों की जड़ें मजबूत होती है
- जिह्वा मूल शुद्ध होकर जिह्वा मुलायम होती है।
- स्वाद की अनुभूति श्रेष्ठ होती है।
- कर्णधौति द्वारा कान की शुद्धता होती है।
- कपाल रंध्र धौति द्वारा नाड़ियाँ शुद्ध होकर निर्मल होती है।

(स) हृद धौति

- इसमें दण्ड धौति वमन धौति वस्त्र धौति का प्रयोग करने से हृदय का शोधन होता है।
- प्रदूशित कफ एवं अम्ल आमाषय से बाहर निकलता है।
- व्याघ्र क्रिया द्वारा अपच अन्न को उल्टी द्वारा बाहर निकालने से आमाषय शुद्ध होता है।
- वस्त्र धौति द्वारा गुल्म रोग, प्लीहा रोग, पित्त रोग एवं कब्ज रोग दूर होते हैं।

(द) मूलषोधन

- इसे गणेष क्रिया भी कहते हैं।
- अपान वायु का निष्काशन होता है।
- मलाषय में जमे कठोर मल का निष्काशन होता है।
- अजीर्ण दूर होता है।

2 वस्ति

- इसके द्वारा प्रमेह का नाश होता है।
- उदर रोगों का नाश होता है।
- नाड़ियां शुद्ध होती है।
- कोश्ठ के दोष दूर होते हैं।

3 नेति क्रिया - यह निम्न 5 प्रकार की होती है -

1- जलनेति
2- सूत्रनेति

3- दुग्ध नेति
4- घृत नेति
5- तेल नेति

- **नेति क्रिया से वैज्ञानिक लाभ**

1 कफ संबंधी रोगों का नाश होता है।

2 नेत्र रोगों का नाश होकर दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

3 आकाशगमन की शक्ति प्राप्त होती है।

4 त्राटक क्रिया के वैज्ञानिक लाभ

1 दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

2 शारीरिक एवं मानसिक आरोग्यता प्राप्त होती है।

3 बल, ओज एवं तेज बढ़ता है।

4 स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता बढ़ती है।

5 आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

5 नौलि क्रिया के वैज्ञानिक लाभ

1 इससे पाचन तंत्र संबंधी विकार गैस, कब्ज, अम्लपित्त (एसिडीटी) दूर होती है।

2 पेट (उदर) को बढ़ा हुआ मेद (चर्बी) नष्ट होती है।

3 वात रोगों का शमन होता है।

6 कपाल भाति के वैज्ञानिक लाभ

- यह प्राणायाम नहीं अपितु शोधन की विधा है।
- सभी प्रकार के बढ़े हुये कफ रोग दूर होते हैं।
- चेहरे की झुरियों का नाश होता है।
- ग्रीवा के पास लटकी हुयी त्वचा की सिकुडन दूर होती है।
- कुण्डलनी जागरण में सहायता मिलती है।
- उदर पेट के अवयव यकृत, किडनी, प्लीहा, जननांग आदि स्वस्थ होते हैं।
- फुफ्फुसों संबंधी रोग दूर होते हैं।
- प्रदूषित वायु के साथ विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं।
- महाप्राचीरा पेषी से उदरांगों का व्यायाम होता है।
- नाभि के रोग दूर होते हैं।
- पाचन शक्ति बढ़ती है।
- शरीर में सुदृढ़ता आती है।

- शरीर तेजोमय, आभावान, सुन्दर एवं आकर्शक बनता है।
- चेहरे पर ओज एवं कांति बढ़ती है।

2.6 अष्टांग योग का वैज्ञानिक महत्त्व

अष्टांग योग के जीवन के समस्त क्षेत्रों का विकास होता है। ये बहिरंग एवं अंतरंग दो प्रकार का होता है। बहिरंग में 1 यम 2 नियम 3 आसन 4 प्राणायाम 5 प्रत्याहार तथा अंतरंग योग में 6 धारणा 7 ध्यान 8 समाधि का समावेष किया जाता है।

- पांच यमों के द्वारा सामाजिक एवं धार्मिक रूप से जीवन जीने की कला का विकास होता है।
- व्यक्ति के व्यवहार में सामाजिक नैतिक मूल्यों का विकास होता है।
- अंहिसा द्वारा मनसा-वाचा-कर्मणा व्यवहार शुद्ध होता है।
- ''जियो और जीने दो'' का भाव विकसित होता है।
- आपसी वैर कटुता दूर होती है।
- सत्य द्वारा ''क्रिया फल'' का आश्रय भाव बढ़ता है।
- ईमानदार, निश्कपट एवं निश्ठावान व्यिक्त्तत्त्व प्राप्त होता है।
- अस्तेय द्वारा चोरी नहीं करने का संकल्प भाव प्रबल होता है।
- दूसरे के धन को प्राप्त करने की लालसा नष्ट होती है।
- ब्रह्मचर्य द्वारा समस्त इन्द्रियों के विकारों पर संयम द्वारा विजय प्राप्त की जाती है।
- सांसारिक भोगों से दूर रहने की कला का विकास होता है।
- विषय वासनाओं, काम के भोगों से मुक्ति मिलने से शरीर स्वस्थ निर्मल एवं कांतिवान बनता है।
- अपरिग्रह के द्वारा सांसारिक भौतिक सुख सुविधाओं का अन्धाधुंध संग्रह करने की प्रवृत्ति का विनाश होता है।
- नियमों (षौच, संतोश, तप, स्वाध्याय, ईष्वर प्राणिधान) के द्वारा व्यक्तिगत जीवन श्रेष्ठ बनता है।
- नियमों के पालन करने से ''अथ योग: अनुशासनम्' के सिद्धान्त की परिपुष्टि होती है।
- व्यक्ति का जीवन श्रेष्ठ चरित्रवान एवं आदर्श बनता है।
- आसनों के द्वारा शारीरिक स्वस्थता अर्जित की जाती है।
- आसनों से सम्पूर्ण जीवन काल को स्वस्थ बनाया जाता है।
- आसनों द्वारा शारीरिक कठोरता दूर होकर सम्पूर्ण शरीर में लचकता विकसित होती है।
- प्राणायाम के द्वारा मानसिक शांति, आनन्द एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है।
- प्राणायाम के द्वारा प्राणों का उत्थान एवं विकास होता है।
- प्रत्याहार के द्वारा मानसिक विकास द्वारा आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

- प्रत्याहार के माध्यम से ही एकादष इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जाती है।
- धारणा के माध्यम से व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है। साथ ही मन को एकाग्र करने में सहायता प्राप्त होती है।
- ध्यान द्वारा आत्मज्ञान एवं जीवन की यथार्थता का बोध होता है।
- ध्यान द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।
- ध्यान द्वारा वास्तविक सुख शांति एवं आनन्द प्राप्त होता है।
- समाधि के द्वारा अवचेतन मस्तिष्क का विकास होता है।

  संक्षेप में यह कह सकते हैं कि अष्टांग योग द्वारा सर्वप्रथम यम नियमों का पालन करते हुए जीवन के समस्त क्षेत्रों का विकास होता है तथा शारीरिक मानसिक,स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्कर्शता को प्राप्त किया जा सकता है।

2.7 आयुर्वेदिक त्रिदोशों का वैज्ञानिक महत्त्व

आयुर्वेदिक त्रिदोष अर्थात् 1.वात 2.पित 3.कफ के सम अवस्थाओं में रहने से ही शरीर स्वस्थ रहता है। त्रिदोशों के बारे में वैद्यक शास्त्र में यह कहा जाता है कि -

‘‘पित्तं पंगु: कफ: पंगु पंगवो मल धातव:।

वयुनायत्र नीयन्ते तत्र गच्छति मेघवत्।।

अर्थात् पित्त दोष पंगु (परतंत्र) है तथा कफ दोष भी पंगु (पराधीन) है साथ ही शरीर के मल, मूत्र, पसीना आदि भी पंगु है। वायु के द्वारा ही इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर बादलों के समान ले जाया जाता है। अर्थात् पित्त दोष एवं कफ दोष वायु के अधीन होकर ही कार्य करते हैं।

वातदोष - वात दोष ही त्रिदोशों में बलवान होता है, इसी कारण वायु के सर्वाधिक 80 रोग, पित्त के 40 रोग एवं कफ के सबसे कम 20 रोगों का आयुर्वेद में वर्णन मिलता है।

(प) वातदोष **:-**वायु रजोगुण प्रधान होता है, यह सूक्ष्म, शीत, रूक्ष, हल्का लघु एवं चल अर्थात गतिशील होता है। वातदोष विशेषकर मलाषय, अग्नाषय, हृदय एवं फुफ्फुस सहित समस्त शरीर में गतिमान होता है। वायु के पांच भेद होते है-

1 प्राणवायु

2 समानवायु

3 अपानवायु

4 उदान वायु

5 व्यान वायु

(प) **प्राणवायु मस्तिष्क** -वक्ष प्रदेश (छाती) कण्ठ, जीभ, मुख, नाक सहित हृदय में रहकर इन अवयवों को कार्यों में प्रवृत्त करता है। मस्तिष्क में रहने वाला वायु मन का नियन्ता एवं प्रणेता है। सभी इन्द्रियों को अपने अपने कार्य में प्रवृत्त करता है। यह प्राणवायु ही जीवित शरीर का धारण करता

है। नाभि से चलता हुआ हृदय को स्पर्ष करते हुये फुफ्फुसों में जाकर ‘‘वास नासिका में आता है, वस्तुत: यही प्राण वायु है।

(पप) **अपान वायु** -दोनों अण्डकोशों, मूत्राषय, मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा में अपान वायु स्थित होता है। यह अपान वायु ही शुक्र, मल, मूत्र, आर्तव एवं गर्भस्थ षिषु को बाहर निकालता है।

(पपप) **समानवायु** - यह नाभि प्रदेश में रहता है तथा पाचन संबंधी जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

(पअ) **उदारवायु** - यह कंठ प्रदेश में रहता है तथा वाणी को निकालना, उत्साह बढना, बल एवं वर्ण को बनाये रखने में सहयोग करता है।

(अ) **व्यानवायु** - इसका कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण शरीर है। सम्पूर्ण शरीर में गति उत्पन्न करना, अंगों को सिकोड़ना, फेलाना शरीर में खिंचाव उत्पन्न करना, पलकों को झपकना, (खोलना एवं बंद करना) आदि इसके कार्य है।

जब ये पांचों प्रकार के वायुदोष अधिक या न्यून मात्रा में होते हैं तो रोग उत्पन्न करते है।

इन्हें आयुर्वेदिय पंचकर्म या यौगिक शट्कर्मों द्वारा शोधनकर सम अवस्था में लाया जाता है। योगियों के द्वारा साधकों को आसन एवं प्राणायाम द्वारा इन बढ़े हुये त्रिदोशों का शमन कर उन्हें सामान्य अवस्था में लाने की वैज्ञानिक विधा है। इसी कारण आज त्रिदोशों को समावस्था में लाने के लिए अष्टांग योग का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व बढ़ रहा है।

2 पित्त दोष - स्वभाविक रूप से पित्तदोष उशण (गरम) पीला, नीला, द्रव (पतला-तरल) खट्टा होता है। यह भी पाँच प्रकार का होता है -

i. पाचक पित्त
ii. भ्राजक पित्त
iii. आलोचक पित्त
iv. साधक पित्त
v. रंजक पित्त

(प) पाचक पित्त- भोजन को पचाने का कार्य करता है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। विशेषकर ‘‘अग्नाषय’’ में रहता है।

(पप) भ्राजक पित्त- यह शरीर का वर्ण (रंग) निखारता है, तथा सम्पूर्ण त्वचा में स्थित होता है। आधुनिक विज्ञान में त्वचा में स्थित ‘‘मेलेनिन’’ को भ्राजक पित्त मानते हैं।

(पपप) रंजक पित्त- यकृत में स्थित पित्त जो पित्ताषय में रहता है। भोजन के पाचनोंपरान्त यह आहार रस को रक्त में परिवर्तित करने का कार्य करता है।

(पअ) साध पित्त- यह हृदय में रहता है। शरीर में उत्साह, धैर्य, दृढ़निश्चित का कार्य करता है।

(अ) आलोचक पित्त- यह दर्शन अर्थात् देखने का कार्य करता है, दोनों नेत्रों में रहता है।

(3) कफ दोष - कफ दोष पाँच प्रकार का होता है, यथा 1 क्लेदन 2 तर्पक 3 बोधक 4 अवलम्बक 5 ‘‘लेश्मक

कफदोष - स्निग्ध, गुरू(भारी) “वेत, पिच्छिल (चिपचिपा) शीतल, तमोगुणी और मीठा (मधुर) होता है। पांचों प्रकार का कफ आमाषय में क्लेदन, मस्तिष्क में तर्पक कंठ या जिह्वा में बोधक (रसन रूप में) संधियों में “लेश्क तथा हृदय में अवलम्बक के रूप में होता है। सामान्यतया कफ के विपरीत गुणधर्म द्वारा जैसे लघु, उश्ण, कठिन, रूक्ष, कटु, चल गुण तथा सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, जीरा, हरिद्रा (हल्दी) इलायची, अजवायन आदि द्रव्यों द्वारा बढ़ा हुआ कफ दोष शान्त होता है।

आयुर्वेद का यह सिद्धान्त वैज्ञानिक दृष्टि से सटीक है कि ''रोगस्तु दोषवैशम्यं दोषसाममयंमरोगता'' अर्थात् त्रिदोशों का शरीर में विषमावस्था में रहना ही रोग एवं त्रिदोशों का सम अवस्था में रहना ही निरोगता (आरोग्यता) है। जिस प्रकार शारीरिक त्रिदोष 1. वात 2. पित 3. कफ माने जाते हैं, उसी प्रकार मन को दूशित करने वाले भी दो मानस दोष रज एवं तम माने गये हैं।

आयुर्वेद विज्ञान के आचार्य सुश्रुत कहते हैं कि ''दोष धातु मलमूलं हि शरीरम्'' अर्थात् त्रिदोष, सप्तधातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र) तथा मल ये शरीर के बाल्यकाल से वृद्धावस्थापर्यन्त समस्त अहर्निष क्रियायें सभी त्रिदोष रूपी क्रियाशीलतत्त्व पर आधारित है। वातदोष द्वारा सम्पूर्ण शरीर में स्पन्दनरूपी क्रियायें गतिशील होती है।

''सर्वचेष्टासमूह: सर्वशरीर स्पन्दनम्'' वातदोष का लक्षण है।

दोषवैशम्य की स्थिति छ: क्रियाकाल से गुजरते हुये रोगों को उत्पन्न करती है। ये इस प्रकार है -

1 संचय अवस्था	4 स्थान संश्रय अवस्था
2 प्रकोप अवस्था	5 व्यक्त अवस्था
3 प्रसर अवस्था	6 भेद अवस्था

सभी रोगों के होने के तीन प्रमुख कारण है यथा 1 असात्म्येन्द्रियार्थ

2 प्रज्ञापराध

3 परिणाम

(1) असात्म्येन्द्रियार्थ का तात्पर्य इन्द्रियों का अपने विषयोंसे हीनयोग, अतियोग एवं मिथ्यायोग का होना है। पांच ज्ञानेन्द्रिय एवं पांचकर्मेन्द्रियों का अपने अपने विषयों से समावस्था में संयोग होने से रोग उत्पन्न नहीं होते हैं।

(2) **प्रज्ञापराध -**

धी (बुद्धि), धृति (धारण एवं नियमन शक्ति) तथा स्मृति के भ्रंष होने से मनुष्य जो अषुभ कर्म करता है, उसे ''प्रज्ञापराध'' कहते हैं। उदाहरण के लिये जितने भी प्रकार के व्यसन गुटका, मद्य (षराब), सिगरेट आदि पर वार्निंग (चेतावनी) लिखी रहती है कि इनके सेवन से मुंह, गला, लीवर (यकृत) आदि में कैंसर जैसे रोग हो जाते हैं फिर भी सेवन करने वाला व्यक्ति उसे पढ़कर भी उसका सेवन करना समाप्त नहीं करता है, उसे बुद्धि का अपराध अर्थात् जानबूझकर समझते हुये भी उस असेवित व्यसन सामग्री का उपयोग करना, प्रज्ञापराध कहलाता है, जो कि रोगोत्पत्ति का दूसरा सबसे बड़ा कारण है।

3 परिणाम -परिणाम अर्थात् ऋतु (काल) दो होते हैं 1 उत्तरायणकाल 2 दक्षिणाकाल।

1- प्रत्येक काल में तीन तीन कुल 6 ऋतुऐं होती है। उत्तरायणकाल में 1 शिशिर 2 वसन्त 3 ग्रीष्म तथा दक्षिणायन काल में 4 वर्षा 5 शरद 6 हेमन्त इस प्रकार से क्रमशः ऋतुऐं होती है। इन ऋतुओं में निर्धारित आहार विहार का सेवन नहीं करने से भी रोगोत्पत्ति होती है। आयुर्वेद शास्त्र में तीन प्रकार की चिकित्सा विधियां वर्णित की गयी है -

1 दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

2 युक्तियपाश्रय चिकित्सा

3 सत्वावजय चिकित्सा

(1) **दैवव्यपाश्रय चिकित्सा -** आयुर्वेद की इस चिकित्सा के अन्तर्गत मंत्र बलि, मंगलकर्म, स्वस्तिवाचन, स्वस्तिवाचन मणि धारण तथा औशधीय द्रव्यों से हवनादि का प्रयोग किया जाता है।

(2) **युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा** - इस चिकित्सा के अन्तर्गत औषधि आहार विहार को सेवन, संषोधन एवं शमन चिकित्सा, पंचकर्म, शट्कर्म चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है।

(3) **सत्त्वावजय चिकित्सा -** इसके अन्तर्गत अहित अर्थों से मन के निग्रह करने के उपाय वर्णित है।

दिनचर्या-ऋतुचर्या, आदान काल, विसर्ग काल आदि के माध्यम से त्रिदोशों को साम्यावस्था में लाने के प्रयोग किया जाता है। जीवन के कर्मक्षेत्र में तृष्णा। आसक्ति का बढ़ना ही रोग दुःख-कष्ट आदि को बढ़ाता है। सत्त्वावंजय चिकित्सा के अन्तर्गत सत्त्व अर्थात मन को अनासक्त-तृष्णारहित बनाने के उपाय है जो कि वास्तविक रूप से रज, तम आदि मानस दोशों को दूर कर परममुक्ति का उपाय बतायाहै।

2.8 आयुर्वेदिक पंचमहाभूत, पंचकर्म एवं पथ्यापथ्य का वैज्ञानिक महत्त्व

आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान को यह वैज्ञानिकता है कि स्वास्थ्य के लिये समुचित आहार आवश्यक है। अर्थात् आहार ही औषधि है। मानव शरीर एवं आहार, ये दोनों ही पांचभौतिक है। आहार से शरीर का पोषण - विकास एवं कोशिकाओं के टूट फूट की मरम्मत आदि होती है। पथ्य विशेष रूप से शरीर के दोष एवं धातुओं का सम्पोषण करते है।

हमारा स्थूल अन्नमय शरीर पंचतत्त्वों से बना है, यथा -

1 आकाश महाभूत

2 वायु महाभूत

3 अग्नि महाभूत

4 जल महाभूत

5 पृथ्वी महाभूत

शरीर में पाँच कर्मन्द्रियाँ एवं पांच ज्ञानेन्द्रियां निम्नानुसार होती है जिससे –

(l) पांच कर्मेन्द्रियां -

1 हस्तेन्द्रिय	4 मूत्रेन्द्रिय
2 पादेन्द्रिय	5 गुदेन्द्रिय
3 वागेन्द्रिय	

(ठ)पंच ज्ञानेन्द्रियां

1 चक्षुनेन्द्रिय	4 कर्णेन्द्रिय
2 रसनेन्द्रिय	5 स्पर्षेन्द्रिय
3 घ्राणेन्द्रिय	

1- **पंचमहाभूत -** आकाश तत्त्व शरीर के कोशाणुओं के मध्य होता है। शरीर के समस्त खोखले (पोले) अंगावयव आकाश तत्त्व से निर्मित होते हैं।

वायुतत्त्व की पूर्ति ''वास से संबंधित है। प्राणवायु का ग्रहण नासिका द्वारा फुफ्फुसों में किया जाता है। शरीर का सम्पूर्ण नाड़ी तंत्र वायु के कारण गतिशील होता है।

अग्नि तत्त्व सम्पूर्ण पाचन संस्थान की पाचन प्रणाली से संबंधित है। सूर्य चिकित्सा का भी इसमें समावेष करते है। पाचन स्त्राव, दहन पचन मल निर्माण, विजातीय द्रव्यों की उत्पत्ति आदि अग्नि तत्त्व पर आधारित है।

जल तत्त्व के द्वारा शरीर में स्त्रवित होने वाले तथा द्रव रूप में गतिशील द्रव पदार्थ इससे संबंधित हैं। लसिका संवहन, रक्त परिसंचरण आदि जल तत्त्व से संबंधित है। भोजन की पाचन क्रिया में जल का विशेष महत्त्व है। अत: जल का सेवन, तरल द्रव्यों का संवहन जिह्वा द्वारा रस ज्ञान आदि जल तत्त्व पर आधारित है।

पृथ्वी तत्त्व के अन्तर्गत शरीर के समस्त स्थूल कठोर भाग जैसे - अस्थियों, दन्त आदि का समावेष होता है।

पंचमहाभूतों के मानसिक गुण -

पंचमहाभूत	मानसिक गुण
1- आकाश	सत्वगुण प्रधान
2- वायु	रजोगुण प्रधान
3- अग्नि	सत्व एवं रजोगुण प्रधान
4- जल	सत्व एवं तमोगुण प्रधान
5- पृथ्वी	तमोगुण प्रधान

सम्पूर्ण सृष्टि के समस्त द्रव्य पांचभौतिक होते हैं। पंचमहाभूत की किसी द्रव्य में अधिकता तो किसी में न्यूनता होती है। मानव शरीर में जिस महाभूत की कमी हो जाती है उसी महाभूत प्रधान द्रव्यों/औषधियों का सेवन कराके उसकी पूर्ति की जाती है। पंचमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज वायु एवं आकाश है। इनकी न्यूनाधिक मात्रा में त्रिदोष तथा सप्तधातुओं में उपस्थिति रहती है।

2- पंचकर्म का वैज्ञानिक नाम

आयुर्वेद शास्त्र में पंचकर्म ये है-

1. वमन कर्म 2. विरेचन कर्म 3. अनुवासन वस्तिकर्म
2. निरूह वस्तिकर्म 5. नस्यकर्म

पंचकर्म का उद्देश्य:-

* ''स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्'' स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करने हेतु
* ''आतुस्य विकरोपषमनं बीमार के रोगों का नाश करने के लिये
* ''रसायनवाजीकरण गुण प्राप्त्यर्थम रसायन-वाजीकरण एवं असाधारण स्वास्थ्य वर्धक गुण प्राप्ति के लिये।

- **दैनिक जीवन में पंचकर्म:-** नस्यकर्म, मात्रावस्ति, कर्णपूरण, दन्तमंजन, स्नान, अभ्यंग, शिरोअभ्यंग, नाभि में तेल लगाना, पादतल में अभ्यंग (तेल मालिश), षिरोधारा, षिरोवस्ति आदि।
- **ऋतुचर्या में उपयोगी पंचकर्म:-** ग्रीश्मादि ऋतुओं में अलग-अलग दोष वात-पित्त-कफ का संचय-प्रकोप एवं प्रषमन होता है। बढ़े हुए त्रिदोशों में वातदोष को बस्ति के द्वारा, पित्तदोष को विरेचन द्वारा कफदोष को वमनकर्म द्वारा शोधन करते हैं।
- **अधारणीय वेगों में पंचकर्म:-**वात (अपानवायु) मल-मूत्रादि तेरह प्रकार के वेगों के धारण करने से रोग उत्पन्न होते हैं अत: पंचकर्म के द्वारा वेगों के स्वमार्ग से निर्हरण करने हेतु शोधन क्रियायें की जाती है।
- **रसायन-वाजीकरण हेतु पंचकर्म:-** रसायन सेवन से शरीर सुदृढ़ होता है, ऊर्जावान बनता है, वाजीकरण सेवन से यौवन बढ़ता है एवं श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति होती है। अत: रसायन-वाजीकरण की फलप्राप्ति के पूर्व पंचकर्म द्वारा शरीर का शोधन किया जाता है।
- **जनपदोध्वंस में पंचकर्म:-** आपदा-महामारी फैलने पर, संक्रामक रोगों के विनाश हेतु देश-वायु-जल प्रदूशित होने पर जनसमूह में महामारियाँ फैलने पर पंचकर्म से शोधन क्रियाकर रसायन सेवन कराते हैं, जिससे रोगप्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है एवं जनहानि से बचाया जाता है।
- **रोगों के जड़मूल नाश हेतु पंचकर्म:-** पंचकर्म द्वारा शोधन की क्रियाओं से शरीर के प्रदूशित वात-पित्त-कफ दोष, मलों आदि का निष्काशन होने से औषध अधिक कार्यकारी होती है तथा रोग पुन: पुन: नहीं होते हैं तात्पर्य यह हैं कि रोगों का जड़मूल नाश होता है।
- **विष चिकित्सा में पंचकर्म-** विषों का सेवन से मृत्यु निश्चित होती है ऐसे में पंचकर्म द्वारा शोधनविधि से विषों को शरीर से बाहर निकालकर रोगी के प्राण बचाये जाते है।
- **पंचकर्म की श्रेष्ठता:-** स्वास्थ्य संरक्षण में शोधन एवं शमन दो प्रकार की चिकित्सा की जाती है। आचार्य चरक ने शोधन चिकित्सा को योग के शट्कर्मो की तरह श्रेष्ठ चिकित्सा मानते हुए अनेक असाध्य रोगों की चिकित्सा में सर्वप्रथम पंचकर्म चिकित्सा का उल्लेख किया है।

3- पथ्य एवं अपथ्य का वैज्ञानिक महत्त्व

शरीर के लिये हितकर या अनुकूल आहार को ''पथ्य'' एवं शरीर के लिये अहितकर या प्रतिकूल आहार को ''अपथ्य'' कहा जाता है। शरीर के पथ्य (मार्ग) के लिये जो लाभकारी हो, मन को प्रिय लगे वह पथ्य कहलाता है। जो भी द्रव्य शरीर के मार्ग स्रोतस आदि के अनुकूल हितावह हो वह पथ्य कहलाते है। पथ्य एवं अपथ्य को प्रभावित करने वाले निम्न छ: प्रधान घटक है । यथा -

1 मात्रा

2 काल (ज्पउम)

3 क्रिया

4 भूमि (देश, आतुर)

5 देह

6 दोष

मानसिक भाव यथा- दु:ख, भय, क्रोध, चिन्ता आदि भी अपथ्य की श्रेणी में आते हैं। पथ्यापथ्य के संबंध में आयुर्वेद शास्त्र में आचार्य चरक ने अष्ट आहार विधि विषेशायतन का वर्णन निम्न प्रकार से किया है, यथा -

1 प्रकृति

2 करण (संस्कार) (च्तमंतंजपवदे)

3 संयोग (ब्वउइपदंजपवदे)

4 राषि (फनंदजनउ)

5 देश (भ्ंइपजंजंदक ब्सपउंजम)

6 काल

7 उपयोग संस्था

8 उपभोक्ता

पथ्य के संदर्भ में 10 महत्त्वपूर्ण तथ्य निम्न प्रकार से है, यथा -

1- उशण एवं ताजा आहार का सेवन
2- स्निग्ध आहार का सेवन
3- मात्रावत् आहार का सेवन
4- भोजन पूर्ण पाचनोपरान्त ही आहार का सेवन
5- वीर्यविरूद्ध आहार का असेवन
6- इश्ट देश एवं इश्ट सामग्रियों के साथ आहार का सेवन
7- द्रूतगति (तेज) से आहार का असेवन
8- अधिक देर तक आहार का असेवन
9- बोलते हुये, हंसते हुये, आहार का असेवन
10-शांतिपूर्वक मन लगाकर सम्यक् स्वयं की समीक्षाकरते हुए आहार का सेवन करना चाहिये।

2.9 आयुर्वेदिक दिनचर्या, ऋतुचर्या एवं सदवृत्त का वैज्ञानिक महत्त्व

दैनिक जीवन में प्रतिदिन किया जाने वाला आहार, विहार एवं चेष्टा जो कि स्वयं के लिये हितकर हो उसे दिनचर्या कहते है। दिनचर्या के अन्तर्गत संक्षेप में 17 तत्त्व निम्नानुसार है।

(I) दिनचर्या

1 प्रात:काल ब्रह्ममुर्हुत में जागरण	2 उशा:पान का सेवन	3 मलोत्सर्ग विधि
4 दन्तधावन	5 जिह्वा निर्लेखन	6 मुख प्रक्षालन
7 अंजन कर्म	8 नस्य कर्म	9 कवल एवं गण्डूश धारण
10 धूम्रपान सेवन	11 ताम्बूल (पान) का सेवन	12 अभ्यंग
13 व्यायाम	14 शरीर परिमार्जन	15 स्नान
16 अनुलेपन,	17 वस्त्रादि धारण	

आहार का सेवन आदि इन सभी का समावेष किया जाता है।

(ठ) रात्रिचर्या का पालन - इसके अन्तर्गत संध्याकालीनचर्या से लेकर भोजन, मैथुन, ब्रह्मचर्य एवं निद्रा आदि का शास्त्र के अनुसार पालन करना आता है।

(ब्) ऋतुचर्या - काल परिणाम का एक निश्चित समय भाग ऋतु कहलाता है, उस ऋतु में की जाने वाली चर्या को ''ऋतुचर्या'' कहते हैं। निर्धारित ऋतु में शास्त्र सम्मत किये जाने वाले आहार विहार को ''ऋतुचर्या'' कहते है। आयुर्वेद के अनुसार ''पुरूशोऽयंलोकसम्मित:'' अर्थात् जो भाव संसार में है वही भाव इस शरीर में भी स्थित है। ऋतुपरिवर्तन के समय शरीर में भी त्रिदोष, सप्तधातु एवंमलों की स्थिति में भी परिवर्तन होता है।

शास्त्रोक्त ऋतुचर्या के पालन से शरीरस्थ दोष धातु एवं मलों की स्थिति साम्यावस्था में रहती है। आदानकाल एवं विसर्ग काल की 12 महिनों की 6 ऋतुओं के अनुसार दोशादि की स्थिति को ध्यान में रखते हुये किये जाने वाले आहार-विहार से आरोग्यता प्राप्त होती है। ऋतुसंधि अर्थात 14 दिवस का समय के अनुसार भी आहार विहार का ऋतु के अंतिम सप्ताह में शनै:शनै: त्याज्य एवं आने वाली ऋतु के प्रथम सप्ताह में शनै:शनै: निर्धारित आहार विहार के सेवन से रोग नहीं होते हैं। इस प्रकार ऋतुचर्या के पालन से व्यक्ति स्वस्थ एवं निरोग रहता है।

आयुर्वेद के महान् आचार्य भाव प्रकाश ने ''हरीतकी'' अर्थात् हरड़े का भी ऋतु के अनुसार 6 प्रकार के अनुपान के साथ सेवन करने का विधान वर्णित किया है जिससे सभी रोगों का शत्रू के समान नाश करने में हरीतकी रसायन के रूप मे सक्षम होती है।

आदानकाल की ऋतुयें

ऋतु	अनुपान
शिशिर	पिप्पली
वसन्त	मधु(षहद)
ग्रीष्म	गुड़

विसर्गकाल की ऋतुयें

वर्षा	सैन्धव
शरद	शक्रा
हेमन्त	शुण्ठी (सोंठ)

1 ऋतुचर्या में त्रिदोशों की स्थिति

क्र.सं.	दोष	संचय	प्रकोप	प्रषमन
1	वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
2	पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त
3	कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म

2 ऋतुचर्या में त्रिदोशों की स्थिति संषोधन के अनुसार

क्र.सं.	दोष	संचय	प्रकोप	प्रषमन
1	वात	ग्रीष्म	प्रावट्(एवं वर्षा)	शरद
2	पित्त	वर्षा	शरद्	हेमन्त
3	कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म

3 ऋतु के अनुसार त्रिदोष शोधन ऋतु एवं शोधन विधि **(**पंचकर्मानुसार**)**

क्र.सं.	दोष	ऋतु	शोधन विधि
1	वात	प्रावट् एवं वर्षा	वस्ति
2	पित्त	शरद्	विरेचन
3	कफ	वसन्त	वमन

(क्) सद्वृत का वैज्ञानिक महत्त्व

सत्पुरूशों (सज्जनों) द्वारा किया गया आचरण सद्वत्त कहलाता है। सद्वृत्त के पालन से व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में श्रेष्ठता आती है। सद्वृत्त के पालन से आत्म कल्याण, शरीर

का कल्याण, मन का कल्याण तथा आत्मा का कल्याण होता है। सद्वृत्त का पालन करने से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जाती है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक आरोग्यता प्राप्त होती है।

1 असात्म्यइन्दियार्थ 2 प्रज्ञापराध 3 परिणाम (काल) पर इन्द्रियों का संचय आदि द्वारा नियंत्रित होता है। सद्वृत्त के अन्तर्गत धार्मिक करणीय एवं अकरणीय कार्य सामाजिक करणीय एवं अकरणीय कार्य, मानसिक करणीय एवं अकरणीय कार्य, चरित्र संबंधी करणीय एवं अकरणीय कार्य, स्वच्छता संबंधी करणीय एवं अकरणीय कार्य, आहार संबंधित, व्यायाम संबन्धित, मैथुन (सम्भोग) संबंधित, अध्ययन संबंधित, कार्य (व्यवसाय) से संबंधित करणीय एवं अकरणीय कार्यों का वर्णन समाहित है। इसी प्रकार मनसा, वाचा एवं कर्मणा आचार रसायन का पालन करने से भी रसायनवत शरीर में स्वास्थ्यानुकूल प्रभाव पड़ता है।आचार रसायन एवं सद्वृत्त के पालन से शरीर एवं मन दोनों स्वस्थ होते हैं।

रज एवं तम दोशों की निरन्तर अभिवृद्धि त्रिदोशों को प्रकुपितकर रोग उत्पन्न करती है, जिससे मनोदैहिक रोग यथा - उच्चव्यान (उच्च रक्तचाप) मधुमेह, अम्लपित्त, पेप्टिक अल्सर जैसे शारीरिक रोग तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्श, विशाद, दुख आदि मानसिक भावों से मानसिक ज्वर, उन्माद, अपस्मार (मिर्गी) आदि मनोदैहिक रोग उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेदिक वैद्यक शास्त्र के अन्तर्गत सद्वृत्त पालन, आचार रसायन पालन, दषधविपापकर्म, धारणीय, अधारणीय वेग, त्रिदोष, पंचमहाभूत, सप्तधातु आदि का वर्णन मिलता है।

दिनचर्या का पालन, ऋतुचर्या का पालन, उचित आहार विहार, सद्वृत्त पालन, अधारणीय वेगों का त्याग एवं धारणीय वेगों का धारण करना आदि स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण की दृष्टि से वैज्ञानिक उपाय है। वर्तमान परिदृष्य में ''स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत'' की परिकल्पना, विद्यालयीन स्वास्थ्य कार्यक्रम, पर्यावरण, वृक्षारोपण, भूमि, जल एवं वायु प्रदुषण से मुक्ति के कार्यक्रम, औद्योगिक स्वास्थ्य के कार्यक्रम, गंदे रसायनों युक्त अपद्रव्यों के निवारण हेतु कार्यक्रम, संक्रामक रोग, डेंगू, चिकनगुनिया, स्वाइनफ्लू आदि उन्मूलन हेतु कार्यक्रम, योग द्वारा व्यक्तिगत, पारिवारिक सामाजिक, राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय वैश्विक स्वास्थ्य की परिकल्पना को साकार करने हेतु 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाना स्वास्थ्य प्राप्ति में भारतीय योग एवं आयुर्वेद की वैज्ञानिकता को प्रमाणित करता है।

योग द्वारा चार स्तरों पर लाभ होता है। ज्ञानयोग द्वारा मन पर, कर्मयोग के द्वारा शरीर पर, मुक्ति योग के द्वारा भावनाओं पर एवं क्रियायोग के द्वारा ऊर्जा के स्तर पर योग का प्रयोग किया जाता है।

2.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत योग एवं आयुर्वेदिक पद्धतियों का वैज्ञानिक महत्त्व का वर्णन किया गया है। जिसमें योगासनों, प्राणायाम, त्रिबंधों एवं मुद्राविज्ञान का वैज्ञानिक वर्णन किया गया है। योग के शट्कर्म, अष्टांग योग की वैज्ञानिक वर्तमान संदर्भ में विवेचना की गयी है। भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त, पंचमहाभूत का सिद्धान्त, पथ्यापथ्य की विवेचना, आयुर्वेदिक दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्त, आचाररसायन का वैज्ञानिक महत्त्व शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति की दृष्टि से वर्णन किया गया है।

2.11 बोधात्मक प्रश्न

1- योग एवं आसनों के महत्त्व पर प्रकाश डालिये?
2- प्राणायाम की वैज्ञानिक विवेचना कीजिये?
3- महाबंध के महत्त्व को समझाइये?
4- त्रिबंधों एवं मुद्रा विज्ञान का वर्णन कीजिये?
5- मुद्रा विज्ञान अहिंसक विधा है, टिप्पणी लिखिये?
6- त्रिदोशों वात, पित्त, कफ के भेदों का वर्णन कीजिये?
7- पंचमहाभूत, त्रिदोष एवं सप्तधातु का उल्लेख कीजिये?
8- आयुर्वेदिक दिनचर्या एवं रात्रिचर्या का वर्णन कीजिये?
9- सद्वृत्त एवं आचार रसायन की विवेचना कीजिये?
10- वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस की वैश्विक आवश्यकता एवं महत्त्व का उल्लेख कीजिये?
11- त्रिविध चिकित्सा का वर्णन कीजिये?
12- अष्टविध विशेष आयतन एवं आहार सेवन के नियमों का वर्णन कीजिये?

2.12 संदर्भ ग्रंथ

- चरक संहिता - पं. काषीनाथ शास्त्री
- प्राणायाम संहिता - आयुर्वेदरहस्य, दरियागंज, दिल्ली
- हठयोग प्रदीपिका - स्वामी दिगम्बर डॉ. पीताम्बर झा
- सद्वृत्त विज्ञान - डॉ. रामहर्श सिंह
- सम्पूर्ण योग विधा - राजीव जैन ''त्रिलोक''
- पंचकर्म विज्ञान - वैद्या अंजना शर्मा, कोटा (राज.)
- पातंजलयोगदर्शन - वैद्य नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राज.)

इकाई - 3

स्वास्थ्य संरक्षण में योग एवं आयुर्वेद की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 स्वास्थ्य संरक्षण की विवेचना

3.4. स्वास्थ्य संरक्षण में योग की भूमिका

3.5 स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद की भूमिका

3.6. स्वास्थ्य संरक्षण में संतुलित एवं शाकाहार की भूमिका

3.7. स्वास्थ्य संरक्षण में पंचकर्म की भूमिका

3.8. स्वास्थ्य संरक्षण में सूर्य नमस्कार की भूमिका

3.9. सारांश

3.10 . बोधात्मक प्रश्न

3.11 सन्दर्भ ग्रंथ

3.1 प्रस्तावना

स्वास्थ्य रोग विहीन शरीर को मानते हैं। शरीर मन तथा शरीर के परस्पर विभिन्न अंगों का आपस में तालमेल बनाते हुये एकरूपता में व्यवस्थित कार्य करना ही स्वास्थ्य है। आज प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रकार के तौर तरीके अपनाता है। रोगों की अनुपस्थिति ही स्वास्थ्य कहलाती है। किसी भी व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सभी दृष्टिकोणों से पूर्ण स्वस्थ होने की अवधारणा ही स्वास्थ्य है।

आज चिकित्सा विज्ञान का सारा ध्यान रोग मिटाने में लगा हुआ है, दिन-प्रतिदिन अनुसंधान हो रहे हैं, मशीनों-उपकरणों की बढ़ती हुयी अस्पतालों एवं डॉक्टरों की संख्या के बावजूद भी रोगियों की संख्या में काफी वृद्धि हो रही है। आवश्यकता इस बात है कि स्वास्थ्य के नीतिनिर्माता स्वास्थ्य के संरक्षण हेतु स्वास्थ्य की चिंता कर व्यक्ति को बीमार ही न होने दे, इस विषय पर गम्भीर सार्थक प्रभावी योजनायें बनायें तो ज्यादा समसामयिक होगा।

स्वास्थ्य संरक्षण में योग एवं आयुर्वेद की भूमिका आज विश्वभर में सर्वविदित है। आज रोग केन्द्रित न होकर स्वस्थ व्यक्ति के भी स्वास्थ्य संरक्षण हेतु दैनिक योगाभ्यास, दैनिक प्राणायाम, दैनिक ध्यान, दैनिक सूर्यनमस्कार, एवं आयुर्वेद की दिनचर्या, संध्याचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या के अनुसार आहार-विहार आदि की आवश्यकता है। योग-आयुर्वेद द्वारा समस्त शारीरिक एवं मानसिक परेषानियों एवं कश्टों का अभाव वाली स्थिति प्राप्त होती है, इसे ही आरोग्यता कहते हैं। स्वास्थ्यानुवर्तन हेतु (1) वायु, (2) जल, (3) आहार, (4) सूर्यप्रकाश, (5) शारीरिकश्रम, (6) गहरी

निद्रा, (7) प्रसन्नता, (8) आषावादी, (9) सकारात्मक विचार एवं (10) मनोदृढ़ता आदि मूलभूत दस आवश्यकतायें न्यूनतम होती ही है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि

- स्वास्थ्य संरक्षण की विवेचना
- स्वास्थ्य संरक्षण में योग की भूमिका
- स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद की भूमिका
- स्वास्थ्य संरक्षण में संतुलित एवं शाकाहार की भूमिका
- स्वास्थ्य संरक्षण में पंचकर्म की भूमिका
- स्वास्थ्य संरक्षण में सूर्य नमस्कार की भूमिका।

3.3 स्वास्थ्य संरक्षण की विवेचना :-

(अ) मानव जीवन में उत्तमता के साथ जीवन जीने के लिये स्वास्थ्य प्राप्त करना अत्ति आवश्यक है। स्वास्थ्य के अभाव में शरीर एवं मन तथा आध्यात्मिक उन्नति सम्भव ही नहीं है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) ने भी स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष में पांच स्तरों को परिलक्षित किया है, यथा -

I. शारीरिक स्वास्थ्य

II. मानसिक स्वास्थ्य

III. सामाजिक स्वास्थ्य

IV. भावनात्मक स्वास्थ्य

V. आध्यात्मिक स्वास्थ्य

- (W.H.O.) के अनुसार Health is a state of complete physical, mental, social and spritual well being and not only he absence of desease or infermity.
- ''स्वास्थ्य पूर्णरूपेण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यत्मिक स्वास्थ्य की कुंजी है।''
- ''जब कोई व्यक्ति मानसिक रोगों से पीड़ित होता है, तो उसे मानसिक रूप से अस्वस्थ कहा जाता है।''
- ''जब कोई व्यक्ति समाज के सभी क्षेत्रों में संतुलित संतुलन का समन्वय नहीं कर पाता तो उसे सामाजिक रूप से अस्वस्थ कहा जाता है।''

- ''जब कोई व्यक्ति अपने भावों पर नियन्त्रण नहीं कर पाता तो उसे भावनात्मक रूप से अस्वस्थ कहा जाता है।''
- ''जब कोई व्यक्ति दुराचारी या व्यभिचारी हो जाता है, स्व नियत्रंण में नहीं रह पाता, पापाचरण में लिप्त रहता है, तो उसे आध्यात्मिक रूप से अस्वस्थ कहा जाता हैं।''
- ''स्वास्थ्य जीवन रूपी फूल में शहद के समान है।''
- ''स्वास्थ्य मानव का जन्म सिद्ध अधिकार है।''
- ''स्वास्थ्य मानव जीवन की अमूल्य निधि है, अर्थात् उत्तम स्वास्थ्य ही परम् धन है।''
- स्व में स्थित होना ''स्वास्थ्य'' माना गया है।
- ''स्वास्थ्य के द्वारा, परिवार, पड़ौसी, नगर, समुदाय तथा राष्ट्र के प्रति ही व्यक्ति सेवायें देने में समर्थ रहता है।''
- ''स्वास्थ्य के द्वारा ही मानव समाज, समुदाय एवं स्वस्थ राष्ट्र का मजबूत आधार होता है।''
- ''स्वास्थ्य ही प्रत्येक मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यनत उसके साथ प्रतिपल रहता है जो जीवन रूपी खिले पुश्प में अमृत के समान है।''
- '' व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि व मानसिक विकास की श्रेष्ठ अवस्था उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है।''
- ''स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जो व्यक्ति को दीर्घायु व सर्वोत्तम सेवा करने योग्य बनाता है।'' (जे.एम.विलियम)
- ''शरीर में वात-पित्त-कफ की समान अवस्था एवं परस्पर संतुलन ही उत्तम स्वास्थ्य है।'' (आयुर्वेद)
- ''स्वास्थ्य शरीर की वह समुचित अवस्था है, जिसमें शारीरिक एवं मानसिक रूप् से सर्वाधिक कार्य करने की पूर्ण क्षमता हो।''
- ''पहला सुख निरोगी काया'' है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा निवास करती है तथा ''शरीर माद्यमम् खलु धर्म साधनम्'' को माना है।
- ''स्वास्थ्य का अर्थ केवल शरीर की ''रोगमुक्त अवस्था'' ही नहीं है अपितु वह ''शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्पन्नता'' की स्थिति है।
- ''स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से प्रसन्नता की अवस्था है।''
- ''कोई मनुष्य उसी समय तक स्वस्थ कहा जा सकता है जब तक कि उसके शरीर के सभी अंग या उपांग अपने कर्त्तव्यों का ठीक से पालन करते रहें। शरीर के अंगावयवों में किसी प्रकार का विकार चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी रोग कहलाता है।''(आधुनिक चिकित्सा विज्ञान)

- '' स्वास्थ्य'' व्यक्ति के जीवन के सभी निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति हेतु आवश्यक है, जिससे जीवन में ऐसी गुणवत्ता आती है, जो व्यक्ति को अधिक से अधिक जीवन जीने एवं बेहतरीन ढ़ंग से समाज राष्ट्र के काम आने के योग्य बना सके।

(ब) स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले चार घटक प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य को निम्न चार घटक प्रभावित करते हैं, यथा-

(i)	पैतृक स्वास्थ्य	(ii)	पारिवारिक (आर्थिक स्थितिरूपी) स्वास्थ्य
(ii)	वातावरणरूपी स्वास्थ्य	(iv)	स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता

(A) (ii) शिक्षा के क्षेत्र में स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा 21 सूत्रीय लक्ष्य का विकास करना-

(i) स्वस्थ वातावरण (स्वच्छता एवं अधिकाधिक पेड़ लगाना)

(ii) भोजन एवं शुद्ध जल की उपलब्धता विकसित करना

(iii) स्वास्थ्य आधारित शिक्षा के कार्यक्रम बनाना

(iv) शौचालय, जल एवं शुद्ध वातावरण की उपलब्धता करना

(v) स्वास्थ्य संरक्षण हेतु साधनों को विकसित करना

(vi) गुरू एवं शिष्य तथा रोगी एवं चिकित्सक के मधुर सम्बन्धों को बनाये रखना

(vii) शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के कार्यक्रमों का विकास करना

(viii) स्वास्थ्य के संरक्षण में योग एवं आयुर्वेद की शिक्षा को बढ़ावा देना

(ix) संक्रामक रोगों के नियन्त्रण हेतु जागरूकता पैदा करना

(x) जनसंख्या नियन्त्रण हेतु शिक्षा के कार्यक्रम विकसित करना

(xi) नशीली दवाइयों एवं सामग्रियों के दुष्परिणामों को जनता तक पँहुचाने के लिऐ जनजागरण अभियान करना

(xii) रोगों से बचाव हेतु उपायों की जानकारी देना

(xiii) स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान का शिक्षा द्वारा विकास करना

(xiv) स्वास्थ्य द्वारा परस्पर समुदायों में सहयोग विकसित करना

(xv) प्राथमिक उपचार आदि की शिक्षा का प्रशिक्षण देना

(xvi) वांछित आदतें एवं अवांछित आदतों के बारे में जागरूकता पैदा करना

(xvii) स्वास्थ्य सेवाओं एवं नैतिक शिक्षा के बारे में शिक्षा देना

(xviii) सन्तुलित एवं शाकाहार के बारे में शिक्षा देना

(xix) आदर्श दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या के बारे में शिक्षा देना

(xx) आहार-निद्रा ब्रह्मचर्य एवं यौवन सुरक्षा की शिक्षा देना

(xxi) विद्यालयीन शिक्षा में Reading, Writing and Arithmetic के साथ-साथ 4H अर्थात् Hand, Heart, Head and Health की शिक्षा देते हुये निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु स्वास्थ्य आधारित कार्यक्रमों को साकार रूप देना।

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले बारह तत्व :-

(i) पौष्टिक भोजन (Nutrient Food)

(ii) वातावरण (Environment)

(iii) विश्राम निद्रा (Rest and Sleep)

(iv) वंशानुक्रम (Heredity)

(v) मानसिक तनाव (Mental Tension)

(vi) प्रेम (Affection)

(vii) शारीरिक विकृति (Physical Reformity)

(viii) खेल एवं व्यायाम (Game & Exercise)

(ix) थकान (Fatigue)

(x) मनोरंजन (Entertainment)

(xi) खाद्यविशाक्ता (Food Poisoning)

(xii) संक्रामक रोग (Disease)

स्वास्थय के लक्षण :-

- प्रात: उठने पर तन-मन में स्फूर्ति एवं उत्साह का अनुभव
- शौच समय पर एवं बंधा हुआ होना
- गहरी निद्रा का आना
- शारीरिक अंगो का आयु के अनुसार समुचित आकार में विकास होना
- सदैव मन का प्रसन्न रहना
- सकारात्मक विचार का होना
- मुखाकृति चमकदार, कान्तिमान एवं प्रसन्नतामय होना
- समय पर भूख-प्यास का लगना
- रक्त संचार संयमित होना
- नाड़ी तंत्र का सुचारूरूपेण कार्य करना
- शरीर के सभी अंगों का स्वाभाविक रहना
- सभी दोष-धातुओं एवं मलों का सम मात्रा में होना
- उत्साह-स्फूर्ति एवं प्रसन्नचित रहना

- शरीर में हल्कापन का महसूस होना
- सदैव भरपूर ऊर्जा से सरोबार महसूस करना
- त्वचा स्वच्छ एवं मुख दुर्गन्ध रहित होना
- मधुरवाणी एवं आलस्य नहीं होना
- विध्वंसात्मक गतिविधियों में लिप्त नहीं रहना
- ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों का सजग एवं स्वस्थ रहना

स्वास्थ्य संरक्षण के पच्चीस उपाय :-

1- सन्तुलित आहार-विहार का सेवन
2- मौसमी फलों एवं सब्जियों का अधिक सेवन
3- 80% क्षारीय एवं 20% अम्लीय भोजन का सेवन
4- स्वच्छ एवं संतुलित मात्रा में जल का सेवन
5- आवश्यकतानुसार उपवास का सेवन
6- शरीर की आंतरिक एवं बाह्य स्वच्छता
7- स्वच्छ हवादार कमरे में गहरी निद्रा का लेना
8- शारीरिक श्रम एवं आवश्यकतानुसार विश्राम करना
9- पंचतत्त्वों का शरीर में संतुलन बनाये रखना
10- प्रकृति की शरण में अधिकाधिक जीवन यापन करना
11- प्राणायाम का दैनिक अभ्यास करना
12- सूक्ष्म व्यायाम एवं योगासनों का नियमित अभ्यास करना
13- यथा सम्भव धूप का सेवन
14- नंगे पैर घास पर प्रात:काल टहलना
15- सकारात्मक विचार एवं सात्विक भावों का विकास करना
16- नकारात्मक विचारों का परित्याग करना
17- प्राकृतिक एवं स्वाभाविक हंसी का अभ्यास करना
18- मौनवृत्त एवं प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करना
19- तनाव मुक्त जीवन जीना
20- अपथ्य एवं विरूद्ध आहार का परित्याग करना
21- ऋतुचर्या का पालन करना
22- ब्रह्मचर्य का पालन करना
23- यम-नियम का पालन करना

24- नियमित एवं व्यवस्थित दिनचर्या का पालन करना

25- जंक फूड एवं तेज मिर्ज मसालों का परित्याग करना

संसार के समस्त प्रकार के सुखों में सबसे प्रधान एवं प्रथम सुख ''निरोगी काया'' ही है। अत: प्रत्येक व्यक्ति हितायु एवं सुखायु चाहता है, कोई भी व्यक्ति दु:ख कष्ट नहीं भोगना चाहता। ऐसे में आवश्यक है कि भारतीय स्वास्थ्य चिंतन अनुसार ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदान स्वास्थ्य के आधार भूत सिद्धान्तों का पालन किया जाये, ताकि प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रह सके उसका परिवार स्वस्थ रह सके, परिवार यदि स्वस्थ है तो फिर समाज राष्ट्र एवं विश्व को स्वस्थ रखने मे सहायता मिलेगी। आज करोड़ों रूपया स्वास्थ्य के नाम पर रोगों को दूर करने हेतु प्रत्येक देश में खर्च हो रहा है, नितनवीन चिकित्सालय खोले जा रहे हैं फिर भी रोगी कम नहीं हुये, हुया ये कि ज्यों-ज्यों चिकित्सा एवं रोगों के रोकथाम के संसाधन अपनाये त्यों-त्यों रोग भी बढ़ते गये। अत: स्वास्थ्य के प्रथम सिद्धान्त ''स्वस्थस्य स्वास्थ्य संरक्षण'' पर विशेष ध्यान देते हुए स्वास्थ्य जागरूकता के माध्यम से जनजागरण करना होगा ताकि व्यक्ति बीमार ही न हो पाये।

3.4 स्वास्थ्य संरक्षण में योग की भूमिका :-

योग

(1) योग विवेचन :-

''योग'' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाशा के शब्द ''युजिर योगे'' से हुयी है जिसका अर्थ है जोड़ना, एक होना या मिलना आदि। अत: योग का शाब्दिक भाव है कि ''जीवात्मा का परमात्मा से मिलना''। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञान का आभास हो कि उसमें परमात्मा का ही अंश है।

प्राचीन समय में ''जीवात्मा का परमात्मा से मिलन की साधना'' का नाम ही योग था, यही योग का वास्तविक उद्देश्य भी था। लेकिन वर्तमान समय मे आधुनिक स्वास्थ्यवेत्ताओं, विचारकों ने योग ज्ञान की इस परम्परा मे अभूतपूर्व परिवर्तन करते हुये इसके आध्यात्मिक पक्ष के अतिरिक्त ज्यादातर व्यक्तिगत जीवन में स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु 'योग द्वारा स्वास्थ्य की प्राप्ति'' के लिये विशेश ध्यान दिया हैं। आज दूरदर्शन के माध्यम से, टी.वी. चेनलों पर, प्रिंट एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया द्वारा भी ''योग द्वारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य'' के कार्यक्रम अविकसित, विकासशील एवं अतिविकसित राष्ट्रों में प्रतिदिन अहर्निश प्रदर्शित किया जा रहे हैं। आज योग सम्पूर्ण विश्व को भारतीय संस्कृति की स्वास्थ्य संरक्षण के क्षेत्र में अमूल्य देन सिद्ध हो रही हैं।

(I) **योग की विभिन्न परिभाषायें :-**

कठोपनिशद् (2/3/10-13) के अन्तर्गत योग के बारे में बताया है कि जब पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि एवं मन स्थिर हो जाते हैं तब इस स्थिति को ''योग'' कहते हैं जिसका दूसरा नाम ही ''परम गति'' है। आचार्य कहते हैं कि इसी अवस्था में योग साधक ''इच्छारहित'' हो जाता है। परमात्मा की प्राप्ति केवल वाणी, चक्षु या मन से सम्भव नहीं है, अपितु उस परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करने से होती है।

पातंजल योग सूत्र में महर्षि पतंजलि अष्टांगयोग के प्रारम्भ में कहते हैं कि ''योगष्चित्तवृत्ति निरोध :। (1/2) अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम योग है।

हमारा चिन्त निम्न तीनों से बना होता है।

(1) मन (2) बुद्धि (3) अंहकार

(II) **चित्त की वृत्तियाँ 5 प्रकार की होती है, यथा -**

(i)	प्रमाण	-	आप्तोपदेश, अनुमान एवं प्रत्यक्ष ज्ञान
(ii)	विपर्यय	-	मिथ्या ज्ञान
(iii)	विकल्प	-	किसी वस्तु के न होने पर भी उसका ज्ञान
(iv)	निद्रा	-	जिसमें सभी भावों में अभाव जैसी प्रतीती हो।
(v)	स्मृति	-	पूर्व में अनुभव किये गये विषय का ज्ञान।

(III) **अभ्यासं वैराग्याभ्यां तन्निरोध :। (1/2)**

चित्त की पांचों वृत्तियों का निरोध (रोकना) अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा होता हैं।

(A) अभ्यास - तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास : (1/13)

महर्षि पतजंलि कहते हैं कि किसी भी ''स्थिति विशेष'' का पुन: पुन: बारम्बार प्रयास करना ही अभ्यास है।

(B) वैराग्य - दृष्टानुश्रविकविषयवितृशणस्य वषीकारसंज्ञा वैराग्यम्। (1/15)

पूर्व में देखे गये एवं सुने गये विषयों से मन-बुद्धि-अहंकार युक्त चित्त को सम्बन्धित अनुभव किये गये विषय से हटाकर आत्मतत्त्व (यथार्थ) में एकाग्र करना ही वैराग्य है।

(IV) श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार योग की चार महत्त्वपूर्ण परिभाषायें एवं सिद्धान्त निम्नानुसार बताये हैं-

(1) योगस्थ : कुरू कर्माणि सङ्ग् व्यक्तवा धन्जय।

सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

((2/48) श्रीमद् भगवद् गीता)

अर्थात्- हे अर्जून तू योगस्थ होकर कर्म कर। किसी भी कार्य की सिद्धि अर्थात् सफलता तथा असिद्धि अर्थात् विफलता में स्वयं को समान भाव से रखता हुआ विचलित न हो यह ही योग है। अर्थात् अनुकूलता एवं प्रतिकूलता में भी समभाव रखना ''योग'' है।

(2) यस्मिन्सिथतो दु:खेन गुरूणापि विचाल्यते।

तं विद्यात् दु:ख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्।।

(6/23) श्रीमद् भगवद् गीता)

अर्थात्- सांसरिक वह स्थिति जिसमें बड़ा से बड़ा दु:ख भी व्यक्ति को विचलित न कर सकें, उस स्थिति को योग की संज्ञा दी गई हैं। तात्पर्य यह हैं कि योग की अवस्था में दु:ख का लेशमात्र भी संयोग नहीं होता हैं।

(3) बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुश्कुते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कोशलम्।।

(2/50) श्रीमद् भगवद् गीता)

अर्थात् - जब व्यक्ति की बुद्धि योग की अवस्था में होती है वह कार्यों की सफलता एवं निष्फलता से प्रभावित नहीं होता। उस योग की तटस्थ स्थिति में रहकर ही व्यक्ति को कुशलतापूर्वक कर्म करते रहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सांसारिक बन्धनों से मुक्त रहते हुये कुशलतापूर्वक व्यवस्थित कर्म मनुष्य को करना चाहिये।

(4) योगस्त्रयों मया प्रोक्तो नृणां श्रेयोविधित्समा।

ज्ञानं कर्मं च भक्तिष्च नोपयोऽन्योऽस्ति कृत्राचित्।।

(11/20/6) श्रीमद् भगवद् गीता)

अर्थात्- भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि अपना कल्याण चाहने वाले मनुश्यों के लिये मैंने तीन योग बताये हैं, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग। इन तीनों के सिवाय दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है।

(2) वर्तमान समय मे योग की स्थिति- आज समाज में योग का प्रचार-प्रसार तीव्रगति से हो रहा है। आज योग अन्तर्राष्ट्रीय आकर्षण का विषय हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है। बिना दवाइयों के स्वस्थ रहने के लिये योग का अपना वैषिश्ट्य वैश्विक जगत में फैल रहा है। पाष्चात्य

संस्कृति में दुनिया के दूसरे देश उनके लिये ''व्यवसाय के केन्द्र'' है, इसलिये वे '' योग का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार'' के रूप में प्रयोग करते हैं। भारत दुनिया को अपना परिवार मानता है। अत: भारतीय योग '' सर्वे भवन्तु सुखिन: एवं ''लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु'' की मंगलकामना सभी के लिये करता है। आज योग व्यक्तिगत साधना का विषय ही न होकर सामाजिक अनिवार्य उपयोगिता जैसा बन गया है। योग के क्षेत्र में नितनवीन अनुसंधान विज्ञान आधारित तंत्र पर हो रहे हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान आधारित परीक्षणों के साथ-साथ भौतिकवाद के तथाकथित मोर्केटिंग वाले योगाचार्यों ने विभिन्न नामों से जैसे पावर योगा आदि द्वारा इसके वास्तविक आध्यात्मिक एवं औपनिशिदिक मूल स्वरूप को आघात पहुँचाया जा रहा है। वर्तमान में योग पर कई संस्थायें आधुनिक चिकित्सा विज्ञान आधारित परीक्षणों पर अनुसंधान कार्य कर रही है। जिसका संक्षेप में नामोल्लेख निम्नानुसार किया जा रहा है,-

1. एस. व्यासा विश्वविद्यालय, बेंगलूरू
2. एस.एम. वाई.एम. समिति कैवल्यधाम लोनावाला, पूणे
3. पंतजलि योग पीठ, हरिद्वार
4. आर्टऑफ लिविंग फाउन्डेशन, बेंगलूरू
5. ईषा योग फाउन्डेशन, कोयंबटुर
6. रामकृष्णमिशन, नई दिल्ली
7. योग संस्थान, शांताक्रूज, मुबंई
8. अयंगर योगाश्रम मुबंई एवं पूणे
9. कृशणामाचार्या योग मंदिरम्, चेन्नई
10. एस.डी.एम. कालेज एवं शान्तिवन ट्रस्ट, उजरे (धर्मस्थला)
11. लकुलिष योग विश्वविद्यालय, अहमदाबाद
12. आधात्यम साधना केन्द्र, नई दिल्ली
13. देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शान्तिकुंज, हरिद्वार
14. बिहार योग स्कूल, साकेत, नई दिल्ली
15. मोक्षायतन योगाश्रम, सराहनपुर (उ.प्र.)
16. प्रजापिता ब्रह्मकुमारी वि.वि. माउन्ट आबू
17. क्रियायोग संस्थान, रांची
18. आई. सी. वाई. ई. ई. आर., पुदुच्चेरी
19. सी.सी. आर. वाई. एन., नई दिल्ली
20. एम. डी. एन. आई. वाई., नई दिल्ली
21. आयुश मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली

उक्त इन सभी के अतिरिक्त केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, आयुर्वेद महाविद्यालयों, आयुर्वेद एवं अन्य विश्वविद्यालयों तथा सभी खुला विश्वविद्यालयों में ''योग शिक्षा'' से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक कार्य वर्तमान में चल रहा है। आज भारतीय योग की विश्वभर में माँग बढ़ रही है। भारत की पहल पर 21 जून 2015 को प्रथम ''अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस'' के रूप में विश्वभर में मनाना भारतीय योग की दक्षता, इसकी चिकित्सकीय वैज्ञानिकता को विश्वभर में सिद्ध करता है।

(3) <u>स्वास्थ्य संरक्षण में योग विवेचन : -</u>

हमारा परम सौभाग्य है कि हमने ऋषि-मुनियों की इस पुण्य भूमि पर जन्म लिया है। इसी धरा को पूण्यभूमि, कर्मभूमि, मोक्षभूमि, धर्मभूमि एवं आध्यात्म की भूमि के नाम से पुकारते हैं। योग भी हमारी भारतीय संस्कृति की परम विशेषता है। योग के महत्त्व को स्वामी विवेकानन्दजी ने 125 पूर्व शिकागो के धर्म सम्मेलन में बताया था। आज अमेरिका के 1.75 करोड़ लोग '' योगमय जीवन'' जी रहे है, साथ ही तीन अरब डालर ''योग विज्ञान'' पर वार्षिक व्यय कर रहे हैं। पाश्चात्य जगत में अमेरिका सहित सभी देशों ने स्वीकार किया है कि ''योग'' का किसी पंथ-उपासना पद्धति'' से सम्बन्ध नहीं है, जबकि कुछ धार्मिक कार पंथियों द्वारा सम्पूर्ण योग विज्ञान को अनावश्यक विवाद का विषय हमारे ही देश में बनाने का कुत्सित प्रयास चल रहा है, जो घोर निन्दनीय हैं। योग भारत की विश्व को अनुपम देन है।

'' शरीर माध्यमं खलु धर्म साधनम्'' अर्थात् सभी कर्मों (धर्मो) की पालना का एकमेव साधन ''स्वस्थ शरीर'' है, इसलिये ऋषि-मुनियों नें जीवन का निचोड़ ''पहला सुख-निरोगी काया'' को माना है परन्तु आज की भौतिकवादी, यांत्रिक एवं आणविक चकाचौंध ने मानव को प्रकृति से दूर सा कर दिया है। प्रतिस्पर्धा की इस अन्धाधुन्ध विलासिता की दौड़ में मानव ''तनावग्रस्त'' जीवन जी रहा है। परिणामस्वरूप जीवन शैली जन्य रोग यथा- हृदयाघात, रक्तचाप, मधुमेह, माइग्रेन, कैंसर, लीवर (यकृत) मोटापा, थायोराइड, जोड़दर्द एवं किडनी के रोगों से ग्रसित होकर अवसाद, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा एवं मानसिक रोगों से पीड़ित होकर अषान्त होता जा रहा है।

वैश्विक दृष्टि से देखा जाय तो सन् 2002 की तुलना में आज विश्व में 50 से 60 फीसदी लोगों की ''योग'' के प्रति रूचि बढ़ी है। योग से रक्त में ऑक्सीजन (प्राणवायु) का स्तर बढ़ता है। अत: प्रात: जल्दी उठकर अपनी दैनिक जीवनचर्या में योग अर्थात् आसन, संधियोग, प्राणायाम एवं ध्यान आदि को स्थान देकर सुखी एवं ''आनन्दमय जीवन जीने की कला'' को स्वास्थ्य की दृष्टि से अपनाना चाहिये।

भारत ही सम्पूर्ण विश्व को आध्यात्मिक प्रेरणा एवं योग के सोपानों की शिक्षा देने की सामथ्र्य रखता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की 69 वीं साधारण सभा में 21 जून 2015 को ''अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस'' के रूप में मान्यता देना यह सिद्ध करता है कि '' रोग एवं रोग ग्रस्त'' विश्व को '' योग की ही शरण '' में आना चाहिये। भारतीय योग ऋषि प्राचीनकाल से ही '' योग के विश्व गुरू'' माने जाते रहे हैं। योगासनों से व्यक्ति एवं सामूहिक सभाभ्यास द्वारा '' योग आधारित जीवन'' के अभ्यास से स्वयं का, परिवार का, जीवन स्तर उन्नत करने में सहायता मिलती है।

स्वास्थ्य संरक्षण के क्षेत्र में योग की विज्ञान आधारित महती भूमिका है। योग एक ''आध्यामिक अनुशासन'' का नाम है। योग प्राचीन भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की ''विश्व स्वास्थ्य जगत'' को अमूल्य वैज्ञानिक देन है। योग सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित वह

‘‘नेनोटेक्नोलोजी’’ का ज्ञान है जो मन एवं शरीर, प्राणी एवं प्रकृति के मध्य सामंजस्य का कार्य करता है। वस्तुत: योग स्वास्थ्य जीवन जीने की कला एवं विज्ञान दोनों है।

योग सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति दिलाने का साधन है। योग द्वारा शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य उत्पन्न कर साधना द्वारा ‘‘आत्म साक्षात्कार’’ करने का सुनहरा अवसर प्राप्त होता है जिससे त्रिविध दु:खों की निवृत्ति में सहायता मिलती है।

योग द्वारा प्रेम, शांति, आनन्द एवं उल्लास आदि प्राप्त कर मनोरोगों से निवृत्ति पायी जाती है। योग के द्वारा ही शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक एवं चारित्रिक स्वास्थ्य की श्रेष्ठता अर्जित किया जाना सम्भव होता है। योग द्वारा ही अन्तर्मन की गहराइयों की जटिलतम समस्याओं को सुलझाने में सहयोग प्राप्त होता है।

योग शिक्षा द्वारा छात्रा-छात्राओं में नैतिक आचरण का विकास, उनकी बौद्धिक क्षमता का विकास, शारीरिक क्षमताओं का विकास, अनुशासन एवं आध्यात्मिक उत्थान का भाव विकसित किया जाता है। आज सम्पूर्ण विश्व में भ्रष्टाचार सभी राष्ट्रों के विकास में कठोर कानून होने के बावजूद भी बाधक बना हुआ है। ऐसे में योग द्वारा नैतिकता का उत्थान तथा ईमानदारी का भाव बाल्यकाल से विकसित किये जाने के कारण भ्रष्टाचारियों की संख्या में शनै: शनै: गिरावट होते हुये कमी आ रही है।

योग द्वारा सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है, जिससे मन में स्फूर्ति-उत्साह-षांति का भाव पैदा होता है। योग द्वारा ही मन में संतोश का भाव जागृत होता है जिससे चित्त की वृत्तियाँ शांत रहती है।

आज आतंकवाद सम्पूर्ण विश्व में सुरसा के मुँह की तरह फैल रहा है। ऐसे में योग द्वारा ‘‘जियो एवं जीवन दो’’ का सिद्धान्त विकसित होकर इस आंतकवाद जैसी ज्वलंत समस्या पर शांति के द्वारा विजय प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो रहा हैं।

आज सम्पूर्ण मानव जाति को अष्टांग योग के यम-नियम के दस सिद्धान्तों के पालन करने की आवष्वयकता महसूस की हो रही है। विश्वषांति के लिये एवं विशेषकर ‘‘सर्वे भवन्तु सुखिन: लक्ष्य’’ की प्राप्ति के लिये योग की महती आवश्यकता सार्वभौमिक है।

संभावनाओं को संभव करने का नाम योग है। योग द्वारा मानवीय शक्ति एवं ऊर्जा का विकास होता है। श्रमिकों, कर्मचारियों, अधिकारियों में उनकी कार्यदक्षता एवं कार्य कुशलता बढ़ायी जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में, औद्योगिक संस्थानों के क्षेत्र में, खेलकूद के क्षेत्र में, व्यापार के क्षेत्र के साथ-साथ चिकित्सा के क्षेत्र में सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति में योग की महान भूमिका है। योग का कार्यक्षेत्र अपरिसीमित है। जहाँ-जहाँ सृष्टि है वहाँ-वहाँ सभी जगह योग की उपादेयता सर्वविदित है।

योग द्वारा जीवन के चार स्तरों पर शरीर-मन-भावना एवं ऊर्जा के क्षेत्र में क्रमशः कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं क्रियायोग द्वारा कार्य किया जाता है। व्यक्ति की भावनात्मक प्रवृत्तियों एवं संवेदनशीलता का संतुलित विकास होता है। योग द्वारा आमजनों में उत्तम स्वास्थ्य का विकास किया जाता है। आज योग के प्रयासों द्वारा ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में बीमारियों के प्रकोप को घटाते हुए ‘‘स्वस्थ जीवन जीने की कला’’ को साकाररूप दिया जा रहा है।

योग द्वारा ही आम जनता से जुड़ी लगभग सभी समस्याओं की जड़ तक पहुँचकर मानव को शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्तरों पर सुदृढ़ करते हुए ''स्वस्थ जीवन जीने'' के लिये मार्ग प्रषस्त हो रहा है।

आज के यांत्रिक युग में मशीनों के आविष्कार, भौतिक सुख सुविधाओं के लिये विकसित यंत्रों ने मानवजीवन में शारीरिक श्रम को सीमित सा कर दिया है । बढ़ते हुए शहरी विकासों ने तथा औद्योगिकीकरण से अशुद्ध वायु एवं अशुद्ध जल की समस्या बनी हुयी है। इस कारण मानव जीवन पर वातावरण-पर्यावरण की बिगड़ती हालत के कारण ''ग्लोबलवार्मिंग'' की समस्या से विश्व जूझ रहा है। बढ़ते हुए वाहनों के कारण एवं तेजी से घटते हुये जंगलों के कारण पर्यावरण असंतुलित होकर कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि जैसे प्रकृति के भयानक विकृत हालात बने हुए है। ऐसे में योग ही एक मात्र ऐसा विकल्प बचा है जिसके द्वारा ''अपरिग्रह'' का भाव जागृत कर प्रकृति, पुरुष एवं पर्यावरण के संरक्षण में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। भौतिकता की चकाचौंध में अस्वस्थ मानव समुदाय की ''चित्तवृत्तियों का निरोध'' में प्रवृत्ति कर विश्वकल्याण में लोका:समस्ता सुखिनो भवन्तु: की स्थिति योग द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

अष्टांग योग के द्वारा निम्न प्रकार से स्वास्थ्य संरक्षण करने में संक्षेपत: सहायता मिलती है।

(iv)

अष्टांग योग	**वैशिष्ट्य**
यम	आत्मसंयम, समाज उद्धार
नियम	व्यक्तिगत एवं सामाजिक श्रेष्ठ व्यवहार
आसन	शारीरिक मुद्रायें/ स्थितियाँ
प्राणायाम	प्राणवायु पर नियंत्रण
प्रत्याहार	इन्द्रियों को बाह्यविषयों से हटाना
धारणा	चित्त को स्थिर रखना
ध्यान	ध्येय वस्तु का निरन्तर मनन
समाधि	आत्म तन्मयता/अनासक्त भाव

उक्त अष्टांग योग के द्वारा आत्मानुशासन के आठ अंगों के अभ्यास से एकाग्रता, मानसिक शुद्धि प्राप्त होती है। आसनों के द्वारा ध्यान-शरीर संवर्धन, विश्रामात्मक आसन (षवासन, मकरासन, बालासन) से मेरूदण्ड लचीला एवं मजबूत तथा माँसपेषियों को लचकदार बनाया जाता है। जिससे आरोग्यता प्राप्त होती है।

योगासनों के द्वारा नियमित व्यायाम, शारीरिक अभ्यास, उचित आहार-विहार, पोषण एवं यथोचित विश्राम के द्वारा सुडौल शरीर, शरीर की ऊँचाई तथा उम्र के अनुरूप भार एवं बीमारी का अभाव प्राप्त किया जाता है।

आज चारों तरफ ''तनाव'' मानव जीवन को दीमक की तरह खोखला करता जा रहा है। यह तनाव त्रुटिपूर्ण-अमर्यादित जीवनचर्या के कारण बढ़ रहा है। आज जीवन शैली में व्यसन भी एक हिस्सा सा बन गया है। आधुनिकता के चक्कर में फैशनपरस्ती, खोखली दिखावे करने की मनोवृत्ति बदलते परिवेश में बढ़ रही है। उच्च कैलोरी वाले जंकफूड (खाद्य पदार्थ), धूम्रपान, मद्यपान, जर्दा-गुटखा-खैनी का सेवन परिवार की आर्थिक स्थिति एवं स्वास्थ्य बिगाड़ रहा है। ऐसी विकट परिस्थितियों में योग एक आषा की किरण है। जिससे प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों पर संयम (नियंत्रण) के माध्यम से इन अवांछित कर्मो में लिप्तता को दूर किया जा सकता है।

योग द्वारा आदर्श दिनचर्या के माध्यम से स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का पालन करने से, शारीरिक व्यायाम करने से, शरीर की ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का परिमार्जन करने से, सदाचरण का पालन करने से, शाकाहार का सेवन करने से, प्राणायाम के द्वारा प्राण शक्ति एवं "वासों पर नियंत्रण करते हुए स्वास्थ्य प्राप्त किया जाता है। "वसन क्रिया के तीनों अंग पूरक ("वास खींचना) रेचक ("वास छोड़ना) तथा कुम्भक ("वास को कुछ देर तक स्थिर रखना) प्राणायाम का विशेश अभ्यास है। प्राणायाम के दैनिक अभ्यास से चिन्तन-मनन प्रक्रिया पर नियन्त्रण होता है, इससे शरीर एंव मन के बीच सामंजस्य उत्पन्न होता है। प्राणायाम द्वारा शरीर में ऑक्सीजन रूपी प्राण तत्व में वृद्धि, उदरावयवों का सूक्ष्म व्यायाम, चयापचय की प्रक्रिया में संतुलन, मानसिक शान्ति, सुखाभास, मानसिक सजगता, एकाग्रता, स्वनियन्त्रण, स्मरणषक्ति का विकास प्राप्त होता है। प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को बाह्यविषयों से हटाते हुए उन्हें संयम द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। इन्द्रियों का संयम होने से एकाग्रचित होकर ''ध्यानमग्न'' में सहायता प्राप्त होती है। धारणा के द्वारा ध्येय वस्तु का एकाग्रचित्त होकर मनन किया जाता है, तथा ध्येय वस्तु पर सतत निरन्तर प्रवाह ही ''ध्यान'' की अवस्था है। अष्टांग योग की चरमावस्था तथा अंतिम योग ''समाधि'' है। समाधि के अन्तर्गत ध्येय रूपी विषय के अतिरिक्त सभी विषयों का अभाव हो जाता है :-

योग के शट्कर्मो द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण निम्नानुसार है-

(V) <u>यौगिक शट्कर्म-</u>

(V) **शट्कर्म**	**स्थान विशेष पर शुद्धि का प्रभाव**
1. धौतिक्रिया	ऊपरी जठरांत्र एवं अमाषय
2. बस्तिक्रिया	मलाषय
3. नेतिक्रिया	गले से नासिका तक
4. त्राटक	आँखों की स्वच्छता
5. नौलिक्रिया	उदरांगों की सफाई
6. कपालभातिक्रिया	नसिका से फैंफड़े

- शट्कर्मो द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण में ''शंखप्रक्षालन'' द्वारा सम्पूर्ण जठर तंत्र की सफाई की जाती है।
- शट्कर्मो द्वारा शुद्धिकरण, अंगावयवों की स्वच्छता सक्रियता बढ़ायी जाती है।
- शट्कर्मो द्वारा विभिन्न अंगों की कार्यप्रणाली में सुधार लाया जाता है।
- शट्कर्मो द्वारा अंगों की अतिगतिशीलता, अति संवेदनशीलता में कमी लायी जाती है।
- शट्कर्मो द्वारा आंतरिक चेतना में वृद्धि की जाती है।
- शट्कर्मो द्वारा रक्तपरिसंचरण में सुधार लाया जाता है।
- शट्कर्मो द्वारा शरीर, मन एवं भावनाओं को संतुलित किया जाता है।
- शट्कर्मो द्वारा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ायी जाती है।

3.5 स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद की भूमिका:-

आयुर्वेद शब्द आयु एवं वेद इन दो शब्दों को मेल से बना है। आयु अर्थात् जीवन, वेद अर्थात् ज्ञान (Knowledge) आयुर्वेद अर्थात् जीवन का विज्ञान (Science of Life) ।

(1) आयु का अर्थ:-

1. जो निरन्तर गतिमान रहे।
2. जीवितकाल को आयु कहते है।
3. जन्म से लेकर चेतना के बने रहने तक का काल
4. शरीर एवं जीवन के संयोग के काल को आयु कहते है।

(2) **आयु के चार प्रकार:-**

(1) हितायु (2) अहितायु(3) सुखायु (4) दु:खायु

(3) परिभाषा :- ''आयुशो वेद : इति आयुर्वेद'' अर्थात् आयु से सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान का वर्णन जिसमें हो वह आयुर्वेद कहलाता है।

(4) आयुर्वेद के दो प्रयोजन-

(i) स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना

(ii) रोगी के रोगों का शमन उपचार करना।

(5) स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा :-

'' समदोष : समाग्निष्च समधातुमलक्रिय :।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमना : स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।

(सुश्रुत सूत्र स्थान 15/4)

अर्थात् स्वस्थ उसे कहते है जिसमें वात-पित्त, कफ त्रिदोष, सात धात्वाग्नियाँ, पाँच महाभूतियाँ एक जाठराग्नि कुल तेरह अग्नियाँ, सप्त धातु (रस-रक्त-माँस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) तथा मल-मूत्र का निर्बाध विसर्जन हो साथ ही साथ उसकी आत्मा इन्द्रियाँ एवं मन प्रसन्न हो।

- ❖ शारीरिक दोष - वात-पित्त-कफ
- ❖ मानसिक दोष - रज एवं तम
- ❖ रोगों का कारण - त्रिदोशों की वैशम्यता (विषमता)
- ❖ स्वास्थ्य का कारण - त्रिदोशों की साम्यता (समावस्था)
- ❖ रोग के दो स्थान - शरीर एवं मन
- ❖ आत्मा - यह निर्विकार होती है।

(6) **त्रिविध दु:ख -**

(i) आध्यात्मिक

(ii) आधिभौतिक

(iii) आधिदैविक

(7) **दशाविध परीक्षा-**

1.	प्रकृति	6.	सात्मय
2.	विकृति	7.	सत्त्व
3.	सार	8.	आहारषक्ति
4.	संहनन	9.	व्यायाम शक्ति
5.	प्रमाण	10.	वय

(8) अष्टांग आयुर्वेद

1)	काय चिकित्सा	(शारीरिक एवं मानसिक रोग)
2)	शल्य चिकित्सा	(सर्जरी से सम्बन्धित)
3)	शालाक्य चिकित्सा	(ऊर्धजत्रू रोग-आँख-नाक-कान-गला-सिर)
4)	भूतविद्या	(देव -गन्धर्व -भूत -प्रेत शांति के लिये)
5)	कौमार मृत्य	(बालक एवं स्त्री रोग)
6)	अगद तंत्र	(विष नाशन)
7)	रसायन चिकित्सा	(वय स्थापन, यौवन हेतु)
8)	वाजीकरण चिकित्सा	(वीर्य वृद्धि, यौवन, संभोग शक्ति)

(9) आरोग्य प्राप्ति में आयुर्वेद की विशेषता-

- असाध्य रोगों की चिकित्सा- (स्कलेरोडर्मा, हेपेटाइटिस, कैंसर, प्लास्टिक एक्जिमा, पथरी, प्रोस्टेड ग्लेंड (पौरूश ग्रंथि) मायोपैथी एवं बिना नाम के रोग।
- वे रोग जिन्हें यन्त्र नहीं देख पाते-
  - (I) परिणामषूल की चिकित्सा
  - (II) सूर्यावर्त की चिकित्सा
  - (III) वातगुल्म की चिकित्सा का वर्णन
- जीवेम शरद : शतम् की प्राप्ति
- रोग निदान की अनुठी पद्धति - नाड़ी परीक्षा
- जनपदोध्वंस के कारण तथा बचाव के उपाय
- अर्ष-भगन्दर रोगों की शल्य क्रिया
- रसायन वाजीकरण द्वारा चिर स्थायी यौवन प्राप्ति
- पंचकर्म द्वारा शोधन चिकित्सा

(10) आयुर्वेदिय दिव्य, औषधियाँ-

1.	लाल इन्द्रायण	10. ऋद्धि-वृद्धि
2.	‘‘वेतपुष्पी	11. नीम
3.	ब्राह्मी	12. हल्दी
4.	शंखपुष्पी	13. तुलसी
5.	जीवन्ती	14. नीमगिलोय
6.	ब्रह्यदण्डी	15. आँवला
7.	रूद्रवन्ती	16.एलोवेरा
8.	जीवक -ऋशमक	17. रसोईघर के मसाले
9.	काकोली-क्षीरकाकोली	

(11) ‘‘स्वास्थ्य रक्षण हेतु सामान्य उपाय’’

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, आहार-निद्रा-ब्रह्मचर्य, रसायन, वाजीकरण का सेवन, पथ्य सेवन के द्वारा स्वास्थ्य को संरक्षित किया जाता है, तथा ‘‘सामान्यं विशेष’’ के सिद्धान्तानुसार रोगों की चिकित्सा की जाती है। अत: आयुर्वेद रोगों को जड़मूल नष्ट कर रोगों को पुन: उत्पन्न नहीं होने देती ऐसी बिना साइड इफेक्ट की वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है।

3.6 स्वास्थ्य संरक्षण में शाकाहार की भूमिका

भोजन हमारे जीवन के लिये परम आवश्यक तत्व है। पौष्टिक एवं सन्तुलित भोजन पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि क्या खाना है, कैसे खाना है, कितना खाना है, कैसे पकाना है, प्रात: का नाष्ता कैसा हो, दोपहर एवं सांय का भोजन कैसा हो, भोजन में किन-किन आहार सामग्री का समावेश हो?

वर्तमान में चाय, पराठे, अचार, चाट, तेज मिर्च मसाले, तेज खटाई डिब्बा बंद सामग्री का बहुताधिक आहार द्रव्यों में उपयोग हो रहा है जो अस्वस्थ होने का बड़ा कारण है। गलत खान-पान से व्याधियाँ बढ़ रही है। रोगों का होने का कारण पाचनतंत्र का कमजोर होना है, जो विशेषकर आहार पर आधारित है। ''आहार ही औषधि है।'' पाचनसंस्थान को उपवास, शाकाहार एवं रसाहार के द्वारा सषक्त बनाया जा सकता है। उपवास द्वारा पाचनतंत्र को विश्राम मिलता है। सतुंलित भोजन के अन्तर्गत प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, खनिजलवण, पानी आदि की आवश्यक मात्रा का संयोजन होता है। प्रत्येक व्यक्ति की कार्यषक्ति के आधार पर आहार की मात्रा एवं आहार की कैलोरी भिन्न-भिन्न होती है। व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार तथा ऋतुओं के अनुसार भी आहार की परिकल्पना पृथक्-पृथक् होती है।

विशेष मौसम में विशेष फल एवं सब्जियाँ उत्पन्न होती है, उनका सेवन करने से शरीर स्वस्थ एवं शक्तिवर्धक होता है। आज यह भी एक समस्या है कि सालभर जब चाहे व्यक्ति जैसा कृत्रिम तरीकों से आहार सामग्री उत्पादित कर लेता है या कोल्डस्टोरेज में उन्हें संरक्षित कर लेता है। फलों की स्थिति यह है कि कीटनाशक रसायनों द्वारा उन्हें उत्पादित एवं पकाया जाता है, एल्यूमिनियम के प्रेषर कुकर में खाद्य सामग्री तैयार की जाती है जो कैंसर जैसे रोगों का कारण है। ''डाल पक के स्थान पर पालपक'' फल मिल रहे हैं। ऐसे में हल्का, सुपाच्य, शुद्ध एवं सात्विक शाकाहार सेवन से आयु, बुद्धि, बल आरोग्य, सुख और तृप्ति होती है जिससे मन प्रसन्न होता है।

(1) रोगोत्पत्तिकारक आहार निम्नानुसार है-

- अति कड़वे एवं खारे लवणयुक्त
- बहुत गरम या बहुत ठण्डा आहार
- तीखे एवं दाहकारक आहार
- अधपका एवं रसरहित आहार
- दुर्गन्धयुक्त, बासी तथा उच्छिष्ट आहार
- अपवित्र आहार
- गरिष्ठ एवं तला हुआ आहार
- असन्तुलित अम्लीय आहार
- विरूद्ध आहार का सेवन

स्वस्थ रहने हेतु सन्तुलित एवं शाकाहार का सेवन करने से ही शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सामाजिक विकास, आध्यात्मिक विकास एवं आत्मिक विकास निर्भर करता है। अत: दीर्घायु एवं उन्नत स्वास्थ्य हेतु पोषण द्वारा ऊर्जा की प्राप्ति आहार से संभव है। स्वास्थ्य प्राप्ति में आहार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तथ्य निम्नानुसार है:-

(2) भोजन कब और क्यों करें?

- शरीर के रख-रखाव-मरम्मत और विकास हेतु
- कड़ी एवं स्वाभाविक भूख लगने पर आहार लेवें
- बार-बार खाने से पाचन क्रिया कमजोर होती है।
- शाम का भोजन पर्याप्त मात्रा में लेवें।
- रात्रि भोजन का निशेध करें।
- भोजन के तुरन्त बाद नही सोना चाहिए।
- दो प्रधान भोजन के मध्य आहार नहीं करना चाहिए।
- कोल्डस्टोरेज एवं फ्रिज में रखे फलों एवं सब्जियों का सेवन नहीं करना चाहिये।

(3) भोजन कब नहीं करें?

- ❖ अस्वस्थ होने पर
- ❖ तीव्र बीमारी होने पर
- ❖ शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम के ठीक पहले
- ❖ चिन्तित एवं कुद्ध अवस्था में, शोक के समय
- ❖ बिना भूख एवं स्वरूचि के अभाव में

(4) भोजन क्यों एवं कैसे करें?

- ○ भोजन के पहले विश्राम करें।
- ○ ठण्डे पानी से हाथ-पैर एवं मुँह धोकर सफाई पष्चात् करें।
- ○ चबा-चबाकर करें।
- ○ सदैव प्रसन्नचित्त होकर एकाग्रता के साथ तन्मय होकर भोजन के समय सिर्फ भोजन ही करें। (उस समय अखबार-टीवी न पढ़े एवं ना ही देखें)
- ○ मौन रहकर भोजन करें।

(5) भोजन कितना करें?

- भूख से कम करें
- ठूंस-ठूंस कर चलते-फिरते समय न करें
- पेट का चौथायी भाग हवा-पानी के लिये छोड़े
- समयाभाव में उतना ही भोजन लें जितना चबा सकें

(6) भोजन कैसा करें?

- कच्चा-अंकुरित भोजन श्रेष्ठ होता है।
- अग्नि से बिना पकाया सूर्य द्वारा पकाया भोजन उत्तम होता है।
- चोकर युक्त भोजन करें।
- सलाद का उपयोग अवष्य करें।
- साधारण नमक की जगह सैंधानमक का उपयोग करें।
- रेशे युक्त (फाइबर वाला) आहार का सेवन करें।
- भोजन में क्षारधर्मी 80%तथा 20% अम्लधर्मी आहार द्रव्य लेवें।

(7) **A) क्षारधर्मी आहार-**फल-सब्जियाँ, अंकुरित आहार, कच्चा नारियल, भीगे हुए सूखे हुये, रसदार मेवे- दाख, अंजीर, खजूर, गुड़ आदि।

B) अम्लधर्मी आहार- घी-तेल-तली हुयी चीजें, दही, गेहूँ चावल, मक्का, बाजरा, काजू, मूँगफली, मैदा, बैसन, बिना चौकर का आटा, चटनी, आचार, गिरीदार मेवे,बीज, मुरब्बा, शक्कर, मांसाहार एवं अन्य तले हुए कचौरी, समोसा, पुड़ियां, नमकीन आदि बनावटी पदार्थ।

- अधिक गरम एवं अधिक ठण्डा आहार नहीं लेवें।
- अल्पाहार (नाश्ते) में मौसमी फल, गाजर अंकुरित अन्न का सेवन करें।
- बेमेल भोजन तथा मैदा से बने आहार का सेवन नहीं करें।

(8) अहितकर आहार-

- दानेदार चीनी — प्रोसेस्ड एवं फास्ट फूड
- शर्बत-षीतल पेय — पिज्जा-बर्गर
- मिठाई, मुरब्बा — टॉफी, मैदे के बिस्कुट

❖	आचार	चाय, काफी
❖	नमकीन आहार	उत्तेजना पैदे करने वाले
❖	डिब्बा बन्द आहार	जुलाब की गोलियाँ
❖	व्यसन कारक सामग्री	

(9) **शाकाहार के लाभ-**

स्वास्थ्यवर्धक	प्रसन्नतादायक	पर्यावरण दृष्टि से लाभदायक
कम खर्चीला	पौष्टिक	पाचकगुण युक्त
शक्तिदायक	नैतिकतायुक्त	रोगप्रतिरोधकक्षमतावर्धक
रोगोपचारक	जीवजंतुसंरक्षक	तन-मन-धन संरक्षक
सात्विक भाववर्धक	हिंसा अवरोधक	स्फूर्तिदायक
पापविनाशक	पुष्टि-तुष्टिप्रदायक	सर्वोत्कृश्ट-प्रशंसनीय

3.7 स्वास्थ्य संरक्षण में पंचकर्म की भूमिका:-

पंचकर्म अर्थात् पंच = पांच संख्या

कर्म = क्रिया का किया जाना

आयुर्वेद शास्त्र में पंचकर्म ये है-

3. वमन कर्म
4. विरेचन कर्म
5. अनुवासन वस्तिकर्म
6. निरूह वस्तिकर्म
7. नस्यकर्म

(I) **पंचकर्म का उद्देश्य:-**

1. ''स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्'' स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण करने हेतु
2. ''आतुस्य विकरोपषमन्'' बीमार के रोगों का नाश करने के लिये
3. ''रसायनवाजीकरण गुण प्राप्त्यर्थम्'' रसायन-वाजीकरण एवं असाधारण स्वास्थ्य वर्धक गुण प्राप्ति के लिये।

(II) **दैनिक जीवन में पंचकर्म:-** नस्यकर्म, मात्रावस्ति, कर्णपूरण, दन्तमंजन, स्नान, अभ्यंग, षिराअभ्यंग, नाभि में तेल लगाना, पादतल में अभ्यंग (तेल मालिश), षिरोधारा, षिरोवस्ति आदि।

(III) **ऋतुचर्या में उपयोगी पंचकर्म:-** ग्रीश्मादि ऋतुओं में अलग-अलग दोष वात-पित्त-कफ का संचय-प्रकोप एवं प्रषमन होता है। बढ़े हुए त्रिदोशों में वातदोष को बस्ति के द्वारा, पित्तदोष को विरेचन द्वारा कफदोष को वमनकर्म द्वारा शोधन करते हैं।

(IV) **अधारणीय वेगों में पंचकर्म:-**वात (अपानवायु) मल-मूत्रादि तेरह प्रकार के वेगों के धारण करने से रोग उत्पन्न होते हैं अत: पंचकर्म के द्वारा वेगों के स्वमार्ग से निर्हरण करने हेतु शोधन क्रियायें की जाती है।

(V) **रसायन-वाजीकरण हेतु पंचकर्म:-** रसायन सेवन से शरीर सुदृढ़ होता है, ऊर्जावान बनता है, वाजीकरण सेवन से यौवन बढ़ता है एवं श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति होती है। अत: रसायन-वाजीकरण की फलप्राप्ति के पूर्व पंचकर्म द्वारा शरीर का शोधन किया जाता है।

(VI) **जनपदोध्वंस में पंचकर्म:-** आपदा-महामारी फैलने पर, संक्रामक रोगों के विनाश हेतु देश-वायु-जल प्रदूशित होने पर जनसमूह में महामारियाँ फैलने पर पंचकर्म से शोधन क्रियाकर रसायन सेवन कराते हैं, जिससे रोगप्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है एवं जनहानि से बचाया जाता है।

(VII) **रोगों के जड़मूल नाश हेतु पंचकर्म:-** पंचकर्म द्वारा शोधन की क्रियाओं से शरीर के प्रदूशित वात-पित्त-कफ दोष, मलों आदि का निष्काशन होने से औषध अधिक कार्यकारी होती है तथा रोग पुन: पुन: नहीं होते हैं तात्पर्य यह हैं कि रोगों का जड़मूल नाश होता है।

(VIII) **विष चिकित्सा में पंचकर्म-** विषों का सेवन से मृत्यु निश्चित होती है ऐसे में पंचकर्म द्वारा शोधनविधि से विषों को शरीर से बाहर निकालकर रोगी के प्राण बचाये जाते है।

(IX) **पंचकर्म की श्रेष्ठता:-** स्वास्थ्य संरक्षण में शोधन एवं शमन दो प्रकार की चिकित्सा की जाती है। आचार्य चरक ने शोधन चिकित्सा को योग के शट्कर्मो की तरह श्रेष्ठ चिकित्सा मानते हुए अनेक असाध्य रोगों की चिकित्सा में सर्वप्रथम पंचकर्म चिकित्सा का उल्लेख किया है।

जलोंका चिकित्सा (LEACH)

वमन कर्म

पत्र पिण्ड स्वेद (PPS)

नस्यकर्म (शिरोविरेचन)

अभ्यंग (मसाज करते हुये)

शिरोबस्ती कर्म

शिरोधारा कर्म करते हुये

जानुबस्ती कर्म करते हुये

अक्षितर्पण करते हुये

ग्रीवावस्ती करते हुये

कटिवस्ती करते हुये

वस्ती देते हुये

वस्ती यंत्र (एनिमा यंत्र)

सर्वांग स्वेदन लेते हुए (लेटकर)

सर्वांग स्वेदन लेते हुए (बैठकर)

3.8 स्वास्थ्य संरक्षण में सूर्य नमस्कार की भूमिका:-

सूर्यनमस्कार एक श्रेष्ठ सम्पूर्ण व्यायाम पद्धति है जिसमें बारह मंत्र एवं बारह आसनों का पुंज हैं जिसमें पूरक-रेचक रूपी श्वसन क्रिया के साथ अभ्यास किया जाता है। स्वास्थ्य संरक्षण में सूर्य नमस्कार प्राप्ति पद्धति द्वारा निम्न लाभ प्राप्त होते है :-

- शरीर के विभिन्न संस्थानों तथा ग्रंथियों पर क्रियात्मक प्रभाव होता है जिससे शरीर का शुद्धिकरण एवं पुनर्योवन प्राप्त होता है।
- शरीर में लचीलापन आता है।

- इडा -पिंगला नाड़ियाँ समावस्था में प्रभावित होती है।
- शरीर की सूक्ष्म इकाई कोषिकायें स्वस्थ होती है।
- ‘‘वसन एवं रक्तसंचरण संस्थान स्वस्थ होता है।
- कोशिकाओं को शुद्ध प्राणतत्त्व तथा पोशकतत्त्व प्राप्त होता है।
- हृदय की मांशपेशियों स्वस्थ होती है।
- पाचन संस्थान स्वस्थ एवं शक्तिषाली होता है।
- उत्सर्जन तंत्र सक्षम होता है।
- त्वचा के रोग (विजातीयद्रव्यों के निर्हरण) से दूर होते हैं।
- नाड़ीमण्डल स्वस्थ होता है।
- ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा मन स्वस्थ होता है।
- मेरूदण्ड लचीला एवं नाड़ियाँ तथा मांसपेषियां स्वस्थ होती हैं।
- हाथ-पैर-भुजायें-संधियाँ मजबूत एवं स्वस्थ होती है।
- मानसिक शान्ति, बल एवं सात्विक भाव विकसित होता है।
- मोटापा, मधुमेह, थायराइड आदि रोगों के निवारण में लाभदायक होते है।
- मोटी कमर को पतली एवं लचीली बनाता है।
- महिलाओं के यौन रोगों को दूर कर मासिक धर्म को नियमित करता है।
- मनो अवसाद को दूर करता है।
- कार्य करने में कुशलता-स्फूर्ति-शरीर चुस्त दुरस्त करता हैं।
- आयु -बुद्धि -बल-वीर्य -तेज (आभा) आदि को बढ़ाता है।

अत: सूर्य नमस्कार सम्पूर्ण व्यायाम है जिसमें सभी आसनों का सार समाहित है इसलिये शारीरिक एवं मानसिक आरोग्यता के लिये सूर्य नमस्कार का दैनिक अभ्यास निर्धारित क्रम में निर्दिश्ट नियमों का पालन करते हुये श्रेष्ठ है। सूर्य नमस्कार का यह वैषिश्ट्य है कि बिना दवाइयों के, बिना आर्थिक खर्चा किये इसके द्वारा कम समय में ही स्वास्थ्य का संरक्षण तथा रोग निवारण दोनों उद्देष्यों की प्राप्ति की जाती है। आज के युग में जहाँ मनुष्य के पास समयाभाव है, ऐसे में कम समय में भी सूर्य नमस्कार के दैनिक अभ्यास से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति मे यह श्रेष्ठ पद्धति है।

3.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में स्वास्थ्य संरक्षण हेतु सर्वप्रथम स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्त्व, स्वास्थ्य के लक्षण, स्वास्थ्य संरक्षण के उपाय, आरोग्य प्राप्ति में योग, शट्कर्म, आयुर्वेद, संतुलित एवं

शाकाहार पंचकर्म एवं सूर्य नमस्कार की भूमिका का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तथ्यों पर आधारित वैज्ञानिक विवेचन वर्तमान परिस्थितियों में करने का वर्णन किया गया है।

3.10 बोधात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य की परिभाषा की विवेचना कीजिये ?
2. शिक्षा के क्षेत्र में स्वास्थ्य की आवश्यकता बताइये ?
3. स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिये ?
4. स्वास्थ्य संरक्षण के उपायों का वर्णन कीजिये ?
5. स्वास्थ्य संरक्षण में योग की भूमिका को विस्तार से लिखिये ?
6. वर्तमान समय में योग की संस्थाओं का नामोल्लेख कीजिये ?
7. अष्टांग योग की विशेषता लिखिये ?
8. शट्कर्मो की स्वास्थ्य प्राप्ति में भूमिका का वर्णन कीजिये ?
9. स्वास्थ्य के क्षेत्र में आयुर्वेद की भूमिका का विषद वर्णन कीजिये ?
10. आयु एवं स्वास्थ्य के लक्षण बताइये ?
11. आयुर्वेदिय दिव्य औषधियों का नामोल्लेख कीजिये ?
12. संतुलित एवं शाकाहार की आरोग्य प्राप्ति में भूमिका स्पष्ट कीजिये ?
13. आहार के सिद्धान्तों का विषद् वर्णन कीजिये ?
14. अहितकर आहार का वर्णन कीजिये ?
15. पंचकर्म की स्वास्थ्य प्राप्ति में भूमिका बतलाइये ?
16. सूर्यनमस्कार श्रेष्ठ सम्पूर्ण व्यायाम पद्धति है, विवेचना कीजिये ?

3.11 संदर्भ ग्रन्थ:-

चरक संहिता	-	डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी
सुश्रुत संहिता	-	डॉ. अम्बिकादत्त शास्त्री
अष्टांग संग्रह	-	डॉ. रविदत्त त्रिपाठी
स्वस्थवृत्त विज्ञान	-	डॉ. सर्वेश कुमार अग्रवाल
पातन्जल योगदर्शन	-	वैद्य नित्यानन्द शर्मा
पंचकर्म विज्ञान	-	वैद्या अंजना शर्मा
सामान्य योग प्रोटोकाल	-	आयुष मंत्रालय, भारत सरकार

इकाई 4

अधुनातन विभिन्न संक्रामक व्याधियों मे योग एवं आयुर्वेद का विशिष्ट योगदान

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 संक्रामक रोग परिचय एवं फेलने की विधियाँ

4.4 संक्रामक रोग बचाव के उपाय, टीकाकरण एवं टेस्ट/परीक्षण

4.5 विभिन्न संक्रामक रोगों के नाम एवं वर्णन

4.6 विभिन्न संक्रामक व्याधियों में योग का वैशिश्ट्य

4.7 विभिन्न संक्रामक व्याधियों में आयुर्वेद का वैशिष्टय

4.8 सारांश

4.9 बोधात्मक प्रश्न

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1 प्रस्तावना :-

- हमें दैनिक जीवन में विभिन्न संक्रामक रोग लोगों के समुदाय मे देखने को मिलते हैं।
- यह संक्रामक रोग मुखयतया वातावरण, कीटाणु या रोगाणुओं एवं कमजोर रोग प्रतिरोधक क्षमता वाले लोगो के संयोग से अपना प्रभाव बताते हैं।
- इस इकाई में हम विभिन्न संक्रामक रोगो के बारे में अध्ययन करेंगे। उनके फेलने की विधियों, बचाव के उपाय, चिकित्सा, टीकाकरण आदि के बारे में वर्णन करेंगे।
- कुछ सामान्यतया आम जनता मे होने वाले रोगों का सार गर्भित वर्णन का अध्ययन करते हुये इन संक्रामक रोगो को योग पद्यत्ति एवं आयुर्वेदिक उपचार विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- हमसे हम प्रथम तथा इन संक्रामक रोगों से स्वयं एवं अन्य लोगों को बचाव कर सकें एवं यदि रोग हो जाने पर उसके लक्षण पहचान कर, निदान करके उपचार करने में सहायक हो सकते हैं।

4.2 उद्देश्य

- संक्रामक रोगों का परिचय एवं फेलने की विधियाँ
- संक्रामक रोगों से बचाव के उपाय, टीकाकरण एवं टेस्ट/परीक्षण
- विभिन्न संक्रामक रोगों के नाम एवं वर्णन
- विसंक्रामक व्याधियों में योग का वैशिश्ट्य
- विसंक्रामक व्यधियों मे आयुर्वेद का वैशिश्ट्य

4.3 संक्रामक रोग का परिचय एवं फेलने की विधियाँ :-

संक्रामक रोग शरीर में विभिन्न तरीको से विभिन्न प्रकार के जीवाणु इत्यादि संक्रमण से होते है। जब भी रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है तब यह संक्रमण शरीर पर हावी होकर व्यक्ति को रोग ग्रस्त कर देते है।

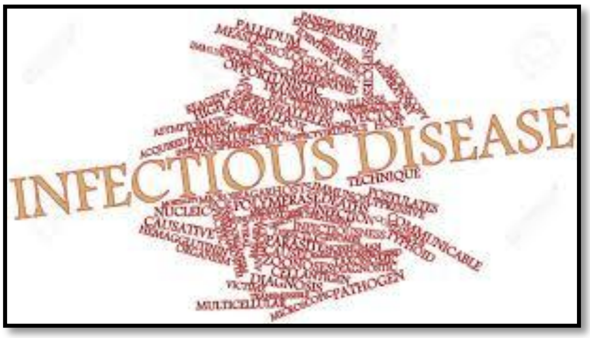

शरीर में दो तरह की रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है:-

1) INNATE IMMUNITY :- जन्मजात प्रतिरोधक क्षमता यह CD Cells. (श्वेत रक्त कणिकाओं), कम्प्लीमेंट सिस्टम, T-Cell, B-cells द्वारा आती है।
2) ADAPTIVE IMMUNITY :- जब कोई जीवाणु/Toxin/Antigen शरीर के अन्दर प्रवेश करता है तो उसके विरूद्व एन्टी बॉडी बनती है जो रोगों से लड़ती है। यह CD4 Helper Cell एवं अन्य "वेत रक्त कणिकाओं (WBC) द्वारा होती है।

संक्रामक रोग फैलने की विधियाँ :-

संक्रमण इन निम्न तरीकों से शरीर में आता है :-

→ भोजन एवं पानी के द्वारा

→ रोगी के त्वचा के सीधे सम्पर्क में आने पर

→ रोगी के मल, मूत्र, रक्त इत्यादि के सम्पर्क में आने पर

→ चमड़ी में लगे घाव, कट इत्यादि के माध्यम से

→ अप्रशिक्षित लोगो से इन्जेक्शन इत्यादि लगाने

→ माता के गर्भ से गर्भस्थ शिशु में

→ रक्त चढ़ाने पर रक्त के साथ

→ असुरक्षित तरीकों से यौन संबन्ध बनाने पर

→ **ड्रोपलेट्स (DROPLETS)** :- यह रोगी के खांसने या छींकने पर बनते है। यह अत्यधिक छोटे होते है एवं जब रोगी खांसता/छींकता है तो उसके नाक एवं मुहं से निकलते है। इसमें जीवाणु एवं नाक/मुहँ द्वारा स्त्रावित "लेश्मा होते हैं। यह आस-पास बैठे व्यक्ति के श्वास के माध्यम से उसमें प्रवेश करते हैं। इन्हें ड्रोपलेट्स कहते हैं।

Droplets

→ कुत्ते, जानवर, चूहे इत्यादि के काटने से

→ महामारी के रूप में

→ मच्छर, Fleas, खटमल इत्यादि द्वारा

संक्रामक रोग एवं एवियन इन्फ्लूजा

- एवियन इनफ्लूएन्जा
- पक्षियों का अतिसंक्रामक रोग

4.4 संक्रामक रोगों से बचाव के उपाय, टीकाकरण एवं टेस्ट/परीक्षण

संक्रामक रोगों से बचाव के उपाय :-

→ संक्रामक रोगों से बचाव हेतु हमें नित्य दिन शरीर एवं हमारे कपड़ो की सफाई रखनी चाहिये।

→ आंख, मुँह, नाक, जननांगों एवं शरीर के अन्य अंगों की विशेश रूप से सफाई होनी चाहिये।

→ मल, मूत्र इत्यादि की व्यवस्था घर से दूर होनी चाहिये।

→ पानी उबाल कर छान कर पीना चाहिये खुले एवं दूषित भोजन से बचना चाहिये।

→ भोज्य पदार्थो पर मक्खियाँ इत्यादि ना बैठे एसी व्यवस्था होनी चाहिये। बासी भोजन नहीं करना चाहिये।

→ शरीर पर कोई कटा-फटा घाव हो तो उसे ढ़क कर रखें।

→ असुरक्षित यौन संबन्धों से बचना चाहिये।

→ रोगी के पास जाने का काम पड़े तो उसके खून, मल, मूत्र, छींक, बलगम इत्यादि से दूर रहना चाहिये।

→ मच्छरों से बचाव का उपाय करना चाहिये।

→ कहीं इन्जेक्शन लगवाना पड़े तो नई सीरींज का इस्तेमाल करना चाहिये।

→ लोगों को संक्रामक रोगो की एवं फेलने की विधियों की जानकारी देनी चाहिये ताकि हमारे चारों और लोगों की जागरूक रहे एवं वातावरण भी शुद्ध रहे।

→ आजकल बहुत से रोगों के बचाव हेतु टीकाकरण की व्यवस्था भी है जो उचित समय पर टीके लगवा लेना चाहिये।

→ रोगी के पास जाते समय मास्क पहनना चाहिये।

→ घरों में डिटोल-फिनाइल-स्प्रीट-फिटकरी आदि का उपयोग करने से साफ-सफाई रहती हैं एवं बीमारियों में बचा जा सकता हैं।

→ एपीडेमियोलोजिकल त्रिकोण :-
HOST (मरीज)

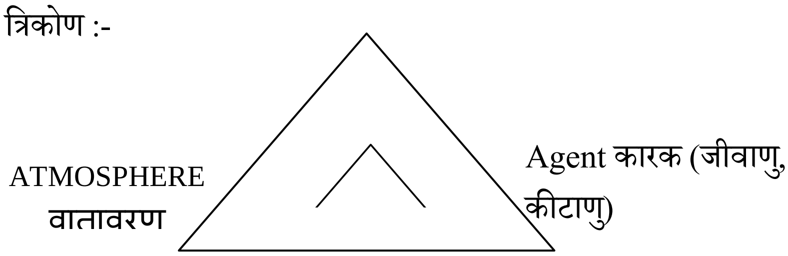

HOST, AGENT एवं ATMOSPHERE तीनों के संयोग से संक्रामक रोग होते हैं।

ई 4.4 (B) टीकाकरण

टीकाकरण :- सामान्यतया टीके दो प्रकार के होते है।

(1) जीवित जीवाणु सहित - MMR, Oral Polio, Influenza

(2) मृत जीवाणु सहित - DPT, T.T. आदि टीकाकरण करके आजकल बहुत सी बिमारियों से बचा जा सकता है जो कि निम्नानुसार है :-

- Whooping Cough (कुकर खांसी)
- डिप्थीरिया
- पोलियो

Oral Polio Vaccine

- मीजल्स (खसरा)
- रूबेला
- मम्प्स
- वेरिसेला (हर्पीज)
- Hepatitis (यकृतशोथ)
- स्वाइन फ्लू

स्वाइन फ्लू टीकाकरण

ई **4.4 (C) टेस्ट/परीक्षण**

Infections बीमारीयों के निदान हेतु निम्न टेस्ट वर्तमान में उपलब्ध है :-

(1) ELISA (एलाइसा = एन्जाइम लिंक्ड़ इम्यूनों सोरबेंट एसे) उदाहरण - H.I.V.

(2) इम्यूनो इलेक्ट्रोफौरेसिस

(3) इम्यूनों हिस्टो केमिस्ट्री
(4) DNA क्लोनिंग
(5) Gel-इलेक्ट्रोफोरेसिस
(6) साउथर्न-ब्लॉट टेस्ट एवं वेस्टर्न ब्लॉट टेस्ट
(7) DNA प्रोब
(8) पोलीमरेज चेन (PCR) रिएक्शन
(9) Miscroscopy (उपकरण द्वारा)

यह टेस्ट सुविधा उच्च चिकित्सा केन्द्रों पर उपलब्ध है जो रोग के लक्षण दिखने पर करवाना उचित है।

4.5 विभिन्न संक्रामक रोगो के नाम एवं वर्णन

निम्नलिखित संक्रामक रोग सामानयतया आम तौर पर हमें देखने को मिलतें है :-

खसरा (मीजल्स), रूबेला (जर्मन मीजल्स), मम्प्स (गलफड़े), हर्पीज, इन्फेक्षीयस मोनोन्यूक्लियोसस (ग्रंथि बुखार), चिकन पोक्स (माता बुखार), चिकनगुन्या, ड़ेगू, मलेरिया, EBOLA (इबोला) बीमारी, ड़ीप्थीरिया, प्लेग, बोटुलिज्म, कूकर खांसी (WHOPING COUGH) तपैदिक/मियादी/टाइफाईड बुखार, भोजन विषाक्तता (FOOD POISONING), हैजा (CHOLERA), बेक्टीरियल खूनी बवासीर (DYSENTRY), अमीबा, कुष्ठ रोग (LEPROSY), फंगल संक्रमण (FUNGAL INFECTION), एस्केरियासिस (गोलक्रमी रोग), चुनिया (ENTEROBIUS), फाईलेरिया (हाथी पांव), गोनोरिया (GONORRHOEA), क्लेमाइडिया, सिफिलिस, टी.बी, खुजली (SCABESE), स्वाईन फ्लू इत्यादि।

विभिन्न संक्रामक रोगों का वर्णन :-

(1) खसरा (मीजल्स) : - यह RNA पेरामिक्सो वाईरस से होता है। यह ड्रोपलेट से फैलता है।

यह दाने उपस्थित होने से 4 दिन पहले एवं 2 दिन बाद तक अत्यधिक संक्रामक होते है।

खसरा (मीजल्स)

लक्षण :- पहले बुखार, जुखाम, हाथ पैर दुखना, आँखें दुखना, आँखे लाल होना, आँखें चुंधियाना (PHOTOPHOBIA), खांसी इत्यादि होते है। फिर उपर के मसूड़ों पर लाल नीले KOPLIK दानें

होते है। फिर कान के पीछें लसीका से भरे दाने होकर दाने मुँह, गर्दन, छाती, एवं पैरों पर हो जाते है। फिर दाने गायब होने के 5-6 दिन तक बुखार रहता है।

गंभीरता : - न्यूमोनिया आँख के घाव, लीवर हृदय एवं किड़नी की जटिलता दिमागी बुखार।

रोकथाम :- MMR टीका (मम्प्स-मजीलस-रूबेला) यह टीका 9 से 15 माह की उम्र पर लगता है जो कि 15 साल तक प्रभावी रहता है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाई जाने पर बचाव हो सकता है।

(MMR टीका)

(2) रूबेला (जर्मन मीजल्स) - यह टीका वाईरस से ड्रोपलेट संक्रमण से होता है। लक्षण:- खांसी जुकाम बुखार शुरू में आता है, गर्दन इत्यादि में लिम्फ नोड़ बड़े हो जाते है। फिर कान, छाती, हाथ पैर पर लाल लसीका युक्त फफोले हो जाते है जो तीन दिन में अपने आप सही हो जाते है। यह दिमागी बुखार (ENCEPHALITIS), रक्त स्राव, गर्भपात (गर्भवती महिलाओं में) करता है एवं गर्भस्थ शिशु को नुकसान पहुचाता है। रूबेला रोग से संक्रमित नवजात शिशु हृदय रोग, आँख का रोग, बहरापन, मानसिक अल्पता, छोटा सिर इत्यादि रोगों के साथ पैदा होता है।

रोकथाम:-रूबेला VACCINE (टीका) - MMR युवतियों को 11-13 साल की उम्र में यह टीका लगता है, इसे गर्भवती महिलाओं को नहीं लगाना चाहिये।

(3) गलफड़ा (मम्प्स MUMPS) -

यह पेरामिक्सो वाइरस से होता है।

ड्रोपलेट इन्फेक्शन से फैलता है।

लक्षण :- भूख ना लगना, बुखार, हाथ पैर दर्द, जबड़े में दर्द इत्यादि शुरू में होते है। फिर निचले जबड़े के गाल पर बड़ी-बड़ी गिठाननुमा सूजन आकर दर्द करती है। रोगी को खाने, चबाने, निगलने, बोलने में परेशानी होती है।

गलफड़ा रोग

गंभीरता :- यह पुरुषों के अण्डकोशो में सक्रमण करके दर्द एवं सूजन करता है।

(4) हर्पीज (Herpes):-

यह Herpes Simplex एवं Herpes Zoster वाइरस से होता है। रोगप्रतिरोधक क्षमता कम होने पर होता है। मरीज के सम्पर्क में आने से भी होता है।

लक्षण :- शरीर पर छोटी-छोटी पानी से भरी समूह में फुंसिया हो जाती है। इन फुंन्सियों में बहुत दर्द होता है। यह 5 से 15 दिन रहते है।

हर्पीज

निदान **:-** पानी से भरी फुंसियाँ जो कि समूह में होती है, जिनमें दर्द होता है एवं लाल रंग की सूजन एवं खुजली चलती है। यह शरीर के किसी भी हिस्से में हो सकता है।

उपचार **:-** Acyclovir नाम की एन्टी वायरल दवा उपयोगी है।

(5) इन्फेक्शियस मोनोन्यूक्लीओसस (ग्रंथि बुखार)

यह E.B. Virus (Ebstein-Barr-Virus) से होता है। यह रोग प्रतिरोधकता कम होने पर शरीर में आता है। यह श्वेत रक्त कणिकाओं में दूशित होने, यह ज्यादातर थूक, लार, चुम्बन, इत्यादि से फैलता है। यह ज्यादातर युवा लोगों को प्रभावित करता है।

लक्षण :- बुखार, गले में लालपन एवं सूजन, टाँसिल, गर्दन में और एवं पीछे लीम्फ ग्रंथियों में सूजन, पूरे शरीर में छोटी-छोटी पानी से भरी फुंसियाँ एवं लीवर व प्लीहा (तिल्ली) में सूजन एवं एनिमिया (खून की कमी), पेषाब में रक्त आना, पीलीया, दीमागी बुखार, लकवा इत्यादि।

जाँच :-लीवर एन्जाइम, रक्त की जाँच, पॉल-बनेल टेस्ट, विकृत लिम्फोसाईट (“वेत रक्त कणिका)।

उपचार :- स्टीरोइड एवं लक्षण जनित उपचार।

(6) चिकनपोक्स :- यह वेरिसेला जोस्टर (Varicella Zoster) वाईरस से होता है।
रोगप्रतिरोधकता शक्ति कम होने पर यह रोग लगता है।
यह अत्यधिक संक्रामक रोग है। एक बार होने पर पूरे घर वालों एवं मुहल्ले वालों को प्रभावित कर सकता है। यह ड्रॉपलेट्स द्वारा एवं चमड़ी पे हुए फफोलों के फूटने पर निकलने वाला द्रव द्वारा रोगी के सम्पर्क में आने पर होता है।
लक्षण :- बुखार, हाथ, पैर, दर्द फिर गले में जलन, फिर पहले छाती एवं पीठ पर फिर हाथ पैर पर छोटे बड़े सभी स्टेज की पानी से भरे फफोले/फुंसिया हो जाती है। इसी तरह की आतों में भी छाले हो जाते है। एवं रोगी को खानें पीने में दिक्कत रहती है।

चिकनपोक्स

निदान :- हर तरह की स्टेज की फुंसियां/फफोले पहले छाती फिर हाथ पैर पर आने को देख कर।

उपचार **:-** रोगी से दूर रहें, तरल पदार्थ लेवे, फोड़े फुंसियों को फोड़े नही, Acyclovir दवा एन्टीवाइरल आदि।

(7) डेंगू :- यह एडिस इजिप्टी मच्छर के काटने से होता है। यह तीन प्रकार का होता है:-

(1) सामान्य डेंगू बुखार

(2) रक्त स्त्रावी डेंगू बुखार

(3) डेंगू-षॉक-सिंड्रोम

डेंगू वाइरस एक ''अर्बो वाइरस'' ग्रुप का वाइरस है जो कि ''एडिस-इजिप्टी'' मच्छर की लार में पनपता है एवं इन्फेक्टेड मच्छर के काटने से होता है। इसे 'सेडल बेक बुखार (अर्थात बुखार होकर 2 से 3 दिन सामान्य हो जाना एवं तीसरे दिन पुन: बुखार आना) भी कहते है।

लक्षण :- बुखार आना, शरीर लाल पड़ना, लाल चकते हाथों-पैरों पर होना, मुँह एवं मसूड़ों में रक्त आना, आँखों की सफेद कन्जक्टीवा में रक्त स्त्राव होना, B.P. कम होना, आंतो में अन्दरूनी रक्त स्त्राव होकर काली लेट्रिंग आना, खून की उल्टी होना, मल-मूत्र के साथ खून का आना, रक्त की कमी होना शरीर में सूजन आना, फेंफड़ो एवं पेट में आंषिक पानी भर जाना, शरीर में पानी की कमी (डिहाइड्रेशन) यह डेंगू एपिडेमिक (महामारी) रूप में भी सामने आता है एवं पुरे गाँव/नगर को संक्रमित कर सकता है।

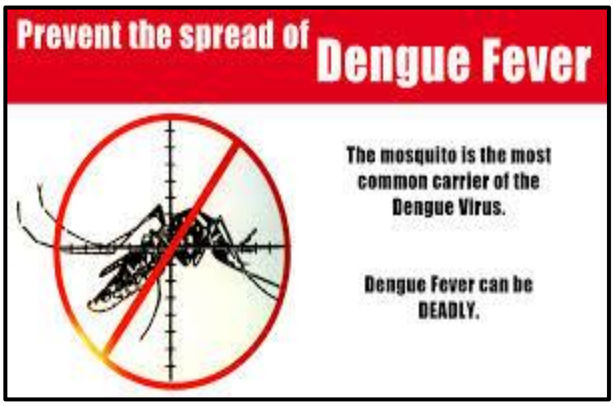

डेंगू बुखार का मच्छर एवं रोगी

निदान :- लक्षणों के आधार पर

रक्त में NS-1 एन्टीजन की उपस्थिति

रक्त में डेंगू एन्टीबॉडी की उपस्थिति

रक्त में ‘‘वेत रक्त कणिका की कमी

रक्त में प्लेटलेट की 1 Lakh/MM^3 से कम होना

यह रोग लीवर, आंतो, पित्ताशय, अग्नाषय एवं अस्थिमज्जा को बहुत नुकसान पहुचाता है।

उपचार :- तरल खाध्य पदार्थ, प्लेटलेट कम होने पर प्लेटलेट-सांद्र-रक्त यूनिट आवश्यकता अनुसार चढ़ाना, रक्त की कमी होने पर रक्त चढ़ाना, बुखार का उपचार, B.P. मेन्टेन रखना, शरीर में पानी की कमी ना होने देना।

रोकथाम :- मच्छरों से बचाव, पानी के गड्ढ़ो में जहा मच्छर पनपतें हो वहाँ नीम पानी, मिट्टी का तेल इत्यादि ड़ालना।

(8) चिकन गुन्या :- यह चिकन गुन्या वाइरस से होता है। यह मच्छरों के लार ग्रन्थि में पनपता है। एवं मच्छरों के काटने से होता है। यह भी एपिडेमिक रूप से सामने आता है।

लक्षण :-शरीर के समस्त जोड़ो में असहनीय दर्द, बुखार, उल्टी, जोड़ों में सूजन, उठने-बैठने में परेषानी इत्यादि

उपचार :- बुखार की दवा एवं दर्द निवारक दवाईयाँ एवं मालिश इत्यादि।

(9) ड़िप्थीरिया :- यह कार्निबेक्टीरिया डीप्थीरि से होता है। इसका संक्रमण ड्रॉपलेट विधि से होता है।

लक्षण :- गले में दर्द, खाने-पीने निगलने में तकलीफ, सांस लेने में दिक्कत, टॉसिल का बढ़ना, गले की लीम्फ ग्रन्थियों में सूजन (सांड-ग्रीवा (Bull Neck)), आवाज में परिवर्तन, गले में सूजन की वजह से गंभीर अवस्था में दिमागी बुखार एवं न्यूरो रोग भी हो सकता है।

निदान :-गले में टॉसिल के उपर भूरी-सफेद रंग की झिल्ली होती है जिसे औजार की सहायता से हटाने पर रक्त स्राव होता है। निदान = माइक्रोस्कॉपी एवं कल्चर विधि।

उपचार रोकथाम :- एन्टी-डीप्थीरी टोक्सिन, एन्टीबायोटिक (पेनिसिलिन एवं इरीथ्रो माइसिन), D.P.T. एवं D.T. का टीका (समयानुसार)

(10) प्लेग**:-** इसे (काली मृत्यु) Black Death रोग भी कहते है। यह यरसिनिया पेस्टिस बैक्टिरिया से होता है। यह जानवरों से फैलता है (ZOONOTIC DISEASE)। यह चूहों के रक्त में संक्रमण कर पनपता है। चूहों की मक्खी RAT FLEA इसे चूहों से मानव तक लाती है। मानव में यह RAT FLEA के काटने से होता है।

यह रोग तीन का होता है।

(1) ब्यूबोनिक प्लेग

(2) न्यूमोनिक प्लेग

(3) सेप्टीसिमिक प्लेग।

गुजरात के सूरत शहर में प्लेग महामारी के रूप में फैला था।

ZOONOTIC DISEASE = जो जानवरों से फैलती है।

लक्षण :- कांखों एवं जांघों के उपरी हिस्सें में जननांगों के पास गिठाने हो जाती है जिन्हें ''ब्यूबो'' कहतें है। यह बहुत दर्द करती है। कुछ मरीजो मे बुखार, न्यूमोनिया, सेप्टीसिमिया होता है। कुछ में हाथ पैर, मुंह नाक, होठ एवं अन्य हिस्सों में रक्त संचरण बन्द होकर ग्रेंग्रीन होकर अंग काले पड़ जाते है। इस लिए Black Death भी कहते है। यह लिम्फ ग्रंथियो, लिवर एवं रक्त संचरण को बहुत प्रभावित करता है।

Rat and Rat flea

निदान :- घावो में से उत्तक निकाल कर जाँच।

इलाज :- स्ट्रेप्टोमाइसिन, जेन्टामाइसिन, सिप्रोफ्लोक्सासिन, टेट्रासाइक्लीन इत्यादि एन्टीबायोटिक।

रोकथाम :- चूहों से एवं चूहों की RAT-FLEA से बचाव टेट्रासाइक्लिन, डोक्सीसाइक्लिन की दवा रोगी के सम्पर्क में आने वालों को देनी चाहिये।

(11) **बोटूलिज्म एवं भोजन विषाक्तता** :- यह विवाह, पार्टी, होटल इत्यादि में समय से पूर्व बने भोजन में इन्फेक्षन से होता है। जिसको खाने से बहुत से लोग एक साथ बीमार पड़ते है। यह सामान्यतया दूध, पनीर, मावा, इत्यादि चीजो से बनी वस्तुएं खाने से होता है। बोटूलिज्म

नामक रोग क्लोस्ट्रीडियम बोटूलिनम बेक्टीरिया से होता है जो बोटूलिन टॉक्सिन विषैला पदार्थ बनाता है। यह रखे हुए बासी भोजन से पनपता है। इससे संक्रमित भोजन खाते ही उल्टी दस्त एवं लकवा (पक्षाघात) हो जाता है। अन्धापन, बहरापन इत्यादि भी हो जाता है।

फूड पोइजनिंग निम्न बेक्टीरिया से होती है :-

- स्टेफलोकोसस
- क्लोस्ट्रीडियम
- विब्रियो कॉलेरी
- रोटा वाईरस
- एष्चरिया कोलाई
- षिगेला वाईरस
- बेसिलस वाइरस

लक्षण :- उल्टी दस्त, चक्कर आना, कमजोरी आना, पानी की कमी होना आदि।

रोकथाम :- बासी खाने को ना खावें, खाना बनते ही ताजा खावें, ऐसा खाना खा भी लिया होतो उल्टी करके वापस निकाल देवें।

(12) कुकर खांसी/WHOOPING COUGH :- यह बोर्डेटेला परट्यूसिस नामक बेक्टीरिया से होता है। इसे 100 दिन की खांसी भी कहते है जो आसानी से सही नही होती है महीनों तक सूखी खांसी चलती है एवं गले से विशेष आवाज (WHOOP) सी आती रहती है।

निदान :- गले से रूई के स्वाब से सेम्पल लेकर माईक्रोस्कोपी एवं कल्चर से।

उपचार :- इरीथ्रोमाईसिन-एन्टीबायोटिक।

यह बीमारी फेफड़ो एवं गले पर बुरा असर डालती है।

(13) टाइफॉइड/तपैदिक/मियादी बुखार :- यह सालमोनेला टाइफी नामक बेक्टीरिया से होता है जो आंतों में पनपता है। यह बेक्टीरिया भोजन एवं पानी के माध्यम से शरीर में प्रवेष करके आंतों को संक्रमित करता है। इसमें 10-28 दिन तक बुखार आता है जो कि रोजाना ही बढ़ता है। यह घरेलू मक्खी द्वारा भोजन एवं दूशित पानी से फैलता है।

लक्षण :- छाती पर लाल छोटे-छोटे निशान 'Rose Spot' हो जातें है, रोज बुखार आता है, भूख कम लगती है, उल्टी दस्त इत्यादी हो सकते है। पेट दुखना, पीलीया भी हो जाना इत्यादी। यह बीमारी लीवर, आतों, किड़नी एवं दिमाग को कमजोर करती है।

निदान :-

1. सालमोनेला 'O' एवं 'H' एन्टीजन पहचान।
2. रक्त में WIDAL Test (7 वें दिन बाद से)।
3. हाइफीडोट इम्यूनो एसै।

उपचार :-

- सेफ्ट्राइक्जोन
- सिप्रोफ्लोक्सासिन
- एजिथ्रोमाइसिन इत्यादि
- एन्टीबायोटिक

- Liquid diet
- घी एवं तेल चिकनाई का परहेज

(14) **हैजा/कॉलेरा (CHOLERA)** :- यह विब्रियो कॉलेरी बेक्टीरिया से होता है। यह एन्टोरोटाक्सीन विशाक्त पदार्थ बनाता है। जो आतों (छोटी एवं बड़ी आंत) को नुकसान कर भयंकर दस्त लगवाता है। यह घरेलू मक्खी से फैलता है। मक्खियां गन्दी जगह पर बैठती है एवं मक्खी से दूशित भोजन पानी से यह होता है।

लक्षण :-इसमें चावल का पानी “Rice Water Stool” जैसी दस्त निकलती है। शरीर में पानी की कमी हो जाती है। इसमें सामान्यतया पेट दर्द नहीं होता है।

निदान :-दस्त के सेम्पल का कल्चर करवाना।

उपचार :- तरल पदार्थ, ORS घोल एवं “Intra venous fluid”, एन्टीबायोटिक (टेट्रासाइक्लिन, डोक्सी साइक्लिन)

बचाव :- टेट्रासाइक्लिन

घरेलू बचाव :- शुद्ध ताजा भोजन खावे
भोजन पर मक्खियों को ना बैठने दें।

(15) खूनी बवासीर **:-** यह निम्न **जीवाणुओ द्वारा होता है** :- (1) **शिगेला डिसेन्ट्री** (2) **शिगेला सोनाई। यह दूषित भोजन एवं पानी से फैलते हैं।**

लक्षण :-**लाल रंग की पानीनुमा रक्त निक्षित दस्तें लाती है। पेट में मरोड़ी लगती है शरीर में पानी की कमी** (Dehydration) **हो जाता है।**

निदान :- **दस्त से सेम्पल की जाँच एवं** ‘Elisa Test’ यह रोग बड़ी आतों को बहुत प्रभवित करता है।

(16) **अमीबायसिस** :- यह सामान्यतया कुओं तालाबों के पानी में रहता है। यह एक प्रोटोजोआ है जिसका नाम एन्टअमीबा हिस्टो लाइटिका है। यह दूशित पानी फैलने से होता है।

लक्षण :- पैट दर्द, गैस, पतली दस्त, पेट में मरोड़ी उठकर दस्त आना, चिकनी दस्त आना। यह आंतों में घाव व छिद्र भी कर देता है।

निदान :- मल की जाँच में अमीबा के जीवित जीवाणु एवं सिस्ट।

सिस्ट एक आवरण होता है जिसमें चार अमीबा पुत्रक देते है।

बचाव :- पानी उबालकर छान कर पीवें। आंते साफ करने की दवा लेवें। पेट साफ रखें।

दवा :- मेट्रोनिडाजोल, टिनिड़ाजोल, एन्टीबायोटिक इत्यादि।

(17) **कुष्ठ रोग/Leprosy** :- यह रोग तंत्रिका तंत्र एवं चमड़ी एवं उत्तकों को प्रभावित करता है। यह शरीर में नाक के द्वारा एवं चमड़ी में घावों द्वारा कुष्ठ रोगी के सम्पर्क में आने पर फैलता है यह ''माइक्रोबेक्टीरियम लेप्री'' द्वारा होता है यह दो प्रकार का होता है:-

(1) टयूबरक्यूलोईड़ लेप्रोसी

(2) लेप्रोमेटस लेप्रोसी

लक्षण :- टयूबरक्यूलोइड़ लेप्रोसी में चमड़ी पे सफेद दाग पड़ते है जिनमें की सवेंदना (Sensory System) नष्ट हो जाती है। वहाँ पर गर्म/ठण्डा/दर्द पिन चुभाना इत्यादि संवेंदनाऐं रोगी महसूस नहीं कर पाता उस जगह पर पसीना भी नहीं आता एवं आस-पास की तंत्रिकाएं बाद में मोटी हो जाती है हाथ-पैर एवं नाक-कान की हड्डिया धीरे-धीरे गलने लगती है। चमड़ी सुन्न हो जाती हैं। लेप्रोमेटस लेप्रोसी में चेहरे पर बड़ी-बड़ी गिठाने होकर चेहरा "ोर के चेहरे जैसा हो जाता है जिसे "Leonine Face" कहते है। जिसमें बाद में घाव अलसर इत्यादि होकर चेहरा गल जाता है। यह रोग हाथ पैर के पंजो, नाक, कान, चमड़ी, तंत्रिका तंत्र एवं लिम्फ ग्रंथियों को प्रभावित करता है।

कुष्ठ रोग से गले हुये नाक एवं हाथ

निदान :- नाक से "वास लेना एवं माइक्रोस्कोपी चमड़ी के निषान से कुरेद कर सेम्पल की जाँच ।

रोकथाम :- कुष्ठ रोगी के सम्पर्क में आने पर अपनी सावधानी बरतें।

उपचार :- डेप्सोन, क्लोफेजामिन, रिफाम्पीसिन इत्यादि दवाएँ।

(18) **फंगल संक्रमण** :- यह फंफूदी/Fungus इत्यादि से होता है। यह चमड़ी में, कांखों में, मूँह में, नाखूनों में, सर में, योनि-जननागों इत्यादि में संक्रमण करता है।

लक्षण :- पहले छोटे फिर बाद में बड़े-बड़े लाल चकते बन जाते है। इनमें खुजली होती है, खुजली करने पर घाव हो जाता है। मुख में गलें में, सफेद रंग का पदार्थ जम जाता है।

निदान :- घाव एवं चकतों में से उत्तक खुरचकर K.O.H. Mount Stain से माइक्रोस्कोपी।

उपचार :- माइकोनाजोल, फलूकोनाजोल लगाएँ।

यह रोग प्रतिरोधक शक्ति को कम हो जाने पर होता है।

(19) **गोल कृमि/एस्केरियासिस** :- यह एस्केरिस लुम्बरीकोइड्स नामक कृमि से होता है दूशित भोजन पानी में इसके अण्डे रहते है जो कि पहले से बीमार व्यक्ति के मल से निकलते है।

लक्षण :- फेट फूलना, वजन कम होना, कमजोरी आना, मल में लम्बें सफेद रंग के कीडे निकलना खून की कमी होना।

गोलकृमी - नर एवं मादा

निदान :- मल की जाँच ।

रोकथाम :- पानी एवं भोजन शुद्व करके खाना ।

उपचार :- एलबेन्डाजोल नामक दवा के साथ मल को शीघ्रता से निकालने की दस्त कारक दवा देना।

(20) **चुनिया** :- Enterobius Infection :- यह एन्टेरोबियस इन्फेक्षन से होता है। यह दूशित भोजन एवं पानी व नाखूनों से फैलता है। यह मलाषय में पनपता है एवं गुदा द्वार पर संक्रमण कर खुजली करता है एवं अंगुलियों से खुजली करने से नाखूनों में आता है एवं नाखूनो से भोजन एवं पानी में मिलकर फैलता है।

लक्षण :- खून की कमी, कमजोरी, मलद्वार पर खुजली इत्यादि।

रोकथाम :- साफ-सफाई का ध्यान, भोजन पानी की शुद्धता का ध्यान रखना।

उपचार :- एलबेन्डाजोल दवा।

(21) **हाथी पाँव/फाइलेरिया** :- यह वाउचेरिया बेनक्रोफ्टाई से होता है जो कि एक कृमि है। यह क्यूलेक्स मच्छर के काटने से मनुष्य में फैलता है। लिम्फ नलियों एवं ग्रथियों में शरीर में रहता है। इसके लार्वा लिम्फ वाहिनियों को अवरोहित कर देते है जिससे वह अंग पूरा सूज जाता है।

लक्षण :- पैर सूज कर हाथी के पाँवनुमा हो जाते है इसलिये इसे हाथी पांव बीमारी कहते हैं। जांघों के उपर की ग्रन्थियां सूज जाती है। संबधित अंग में दर्द होता है फिर घाव इत्यादि हो जाते हैं।

हाथी पाँव रोग

रोकथाम :- मच्छर से बचाव करना चाहिए।

(22) **यौन संक्रामक रोग** :- यह असुरक्षित यौन संबंध बनाने से होती है।

उदाहरण :-

- गोनोरिया
- सिफिलिस
- हेपेटाइटिस. B
- एड्स
- क्लेमाइडिया
- हर्पीज
- माइकोप्लाज्मा

गोनोरहिया :- यह 'Gonococci' बेक्टीरिया द्वारा होता है। यह असुरक्षित यौन संबंध से शरीर में आता है। जननांगों में लालपना एवं सूजन एवं बदबूदार मवाद निकलती रहती है। बुखार आता है।

निदान :- मवाद की माइक्रोस्कोपी एवं कल्चर।

रोकथाम :- सुरक्षित यौन संबध, कोण्ड़ोम का इस्तेमाल करना आदि।

उपचार :- सेफट्राइक्सोन, सीप्रोफलोक्सासिन एन्टीबायोटिक।

(23) **सिफिलिस** :- यह ट्रिपोनीमा पेलिडम नामक जीवाणु से होता है। यह असुरक्षित यौन संबंधो से एवं रोगी के Direct सम्पर्क में आने से होता है।

यह तीन तरह का होता है :-

(1) Primary -जननांगों पर घाव होते है जो बिना दर्द के होते है।

(2) Secondary - शरीर पर तरह तरह के घाव, लिम्फ नोड सूजन आदि।

(3) Tertiary - इसमें न्यूरो सिफिलिस इत्यादि होते है। मुख्य रूप से ह्रदय, हड्डियां, मस्तिष्क, चमडी, तंत्रिंका तंत्र प्रभावित होती है।

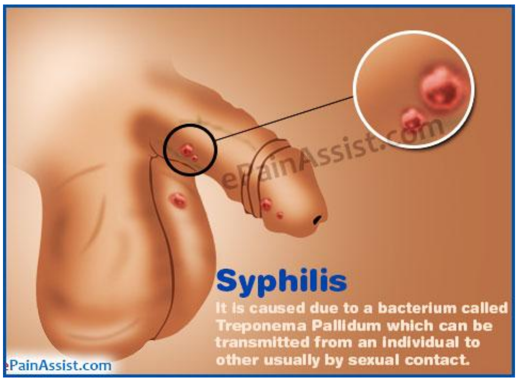

प्राइमरी सिफिलिस के घाव

Tertiary सिफिलिस

<u>उपचार</u> :- FTA-ABS जाँच, VDRL जाँच।

<u>इलाज</u> :- Penicilln Antibiotic

(24) **<u>टीबी</u>** :- यह ट्यूबर क्यूलोसिस बेक्ट्रीरिया द्वारा होता है। यह ड्रोप्लेट या रोगी के डाइरेक्ट सम्पर्क में आने से होता है। इसमें फेफडें, आंते एवं लसीका System आदि प्रभावित होते है। 1-2 महीना खांसी, बलगम, शाम को बुखार, वजन कम होना, भूख ना लगना आदि।

<u>निदान</u> :- कफ की जाँच में A. F. B. (Acid Fast Bacilli) का Detection, X-Ray Chast PA View आदि।

<u>उपचार</u> :- DOTS थिरेपी जिसमें आईसोनियाजाईड, रिफाम्पीसिन, पाइराजिनामाईड, ईथेम्ब्यूटोल एवं स्ट्रेप्टोमाइसिन है।

(25) **<u>स्वाइन फ्लू</u>** :- यह H_1 N_1 इन्फ्लूएंजा वाईरस से होता है। यह Droplet तरीके से फैलता है। यह शरीर में नाक, मुँह, सांस के जरियें प्रवेष करता है।

<u>लक्षण</u> :- खांसी, जुखाम, बुखार, फिर न्यूमोनिया एवं फेफड़ों में प्रोटीन पदार्थ भर कर ARDS रोग करता है। (Adult respiratory distress syndrome)

स्वाइन फ्लू से बचाव हेतु मास्क

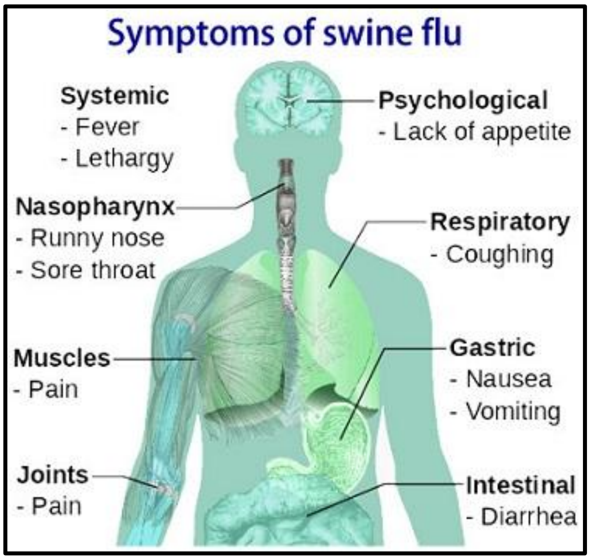

स्वाइल फ्लू के लक्षण

निदान :- H_1 N_1 एन्टीजन की जाँच गले के सेम्पल से।

इलाज :- Fluvir नामक एवं Oseltemivir नामक दवा।

टिकाकारण :- स्वाइन फ्लू वेक्सीन इस रोग में मुख्यतया फेफड़े खराब होते है।

(26) **मलेरिया** :- यह प्लाज्मोडियम प्रोटोजोआ से होता है जो कि मादा एनोफीलिज के काटने से हमारे शरीर में आता है।

लक्षण :- ठण्ड़ एवं कंपकपी एवं पसीना आकर बुखार आना, पीलीया होना।

मादा एनोफिलीज मच्छर

गंभीरता : - Multiple Organ failure

निदान :- रक्त मे MP Slide & Antigen की जाँच करना आदि।

उपचार :- कुनीन, क्लोरोक्वीन, आर्टीसुनेट

यह लीवर एवं रक्त को ज्यादा प्रभवित करता है।

(27) एवियन इनफ्लून्जा रोग : यह एक वायरस जन्य पक्षियों का रोग है, जिसमें पक्षियों में 100 प्रतिशत तक मृत्यु दर हो सकती है। इसमें श्वांस एवं पाचन तन्त्र प्रभावित होता है इसे फाउल प्लेग भी कहते हैं। इस रोग से मुख्यत: घरेलू व जंगली पक्षी जैसे मुर्गी, टर्की, बतख, वाटर फाउल आदि ग्रसित होते है। पक्षियों से यह रोग मनुष्यों मे भी फैलता है जिसको कि एवियन इनफ्लूएन्जा रोग भी कहते हैं।

रोग का कारण : यह रोग आर्थोमिक्सोविरिडी परिवार के इनफ्लूएन्जा जाति के ए टाइप के वायरस से फैलता है। एवियन इनफ्लूएन्जा वायरस की 15 उप जातियां होती है जिनमें से एच-5, एच-7 एवं एच-9 उप जाति से पक्षियों में प्राणघातक अति संक्रामक रोग फैलता है।

रोग पक्षियों में कैसे फैलता है ?

वायरस रोग ग्रस्त पक्षी की लार, नासास्राव एवं बींट में पाया जाता है जिसके सम्पर्क में आने से स्वस्थ्य मनुष्यों में भी यह रोग फैल जाता है। रोग सवंमित आहार, पानी उपकरण आदि के सम्पर्क आने से भी फैलता है।

सामान्यत: एवियन इनफ्लूएन्जा वायरस से मनुष्यों में रोग उत्पन्न नहीं होता है। किन्तु इस वायरस में निरन्तर परिवर्तन से नई उप जातियां विकसित होती रहती है। इनमें से कुछ उपजाजियों से पक्षियों के सम्पर्क में रहने वाले मनुष्यों में भी घातक श्वांस रोग उत्पन्न करता है एवं मृत्यु हो सकती है जैसे :- रोग चीन देश से शुरू होकर पूरे विश्व में फैला था।

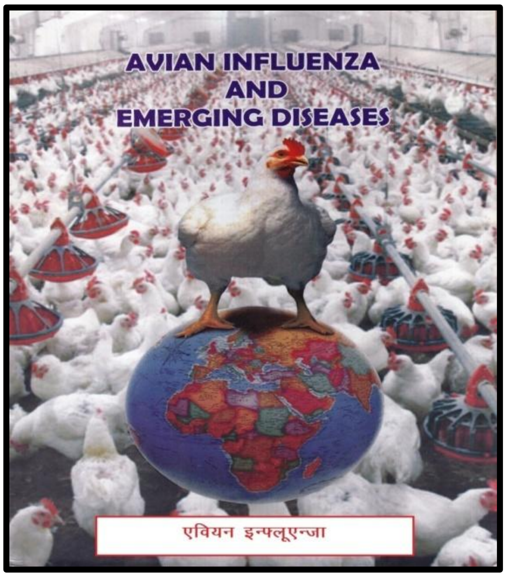

मनुष्यों में रोग के लक्षण

- जुकाम होना व
- आंखों का लाल होना

- सांस लेने में तकलीफ
- ज्वर होना
- मांस पेशियों में दर्द
- निमोनिया

पक्षियों में रोग के लक्षण

- अचानक अधिक संख्या में पक्षियों की मृत्यु (मृत्यु दर 100 प्रतिशत तक भी हो सकती है)
- पक्षी सुस्त हो जाते हैं व आहार खाना बन्द कर देते हैं।
- अण्डा उत्पादन में अत्यधिक कमी।
- पक्षी के सिर पर सूजन आना कलंगी ; ब्वउइ द्ध व लटकन ; ॅंजजसम द्ध पर सूजन एवं नीलापन आ जाता है।
- चाँच और नासाछिद्र से स्राव जो रक्त युक्त भी हो सकती है।

उपचार

- कुक्कुट फार्म पर किसी भी रोग की जानकारी मिलने पर अविलम्ब पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।
- कुक्कुट फार्म पर एवियन इनफ्लून्जा की पुष्ठी होने पर समस्त पक्षियों को मार कर जला दिया जावें अथवा गहरे में किटाणु नाशक दवा के साथ गाड़ कर नष्ट कर दिया
- रोगग्रस्त कुक्कुट फार्म के सभी अण्डे, लिटर आदि को भी जला कर नष्ट कर दिया जाना चाहिए।
- कुक्कुट फार्म पर पूर्ण कीटाणुनाशन की प्रक्रिया अपना कर रोग की रोकथाम की जानी चाहिए।

4.6 विभिन्न संक्रामक व्याधियों मे योग का वैशिष्टय

जब शुद्ध वायु, जल, देश एवं काल विकृत हो जाते हैं, तब विभिन्न वात-पित्त-कफ प्रकृति के मनुश्यों का आहार, बल, मन सभी समान अवस्था में होने पर भी एक साथ एक ही समय में एक ही जैसे रोग गांव, शहर एवं महानगरों में उत्पन्न होते हुये मानव को संक्रमण से संक्रमित कर पीड़ित कर उनका विनाश कर देते हैं। प्रदूशित वायु, प्रदुषित जल, प्रदूशित ऋतु इन चारों की संक्रामक रोगों के फैलाने में अंह भूमिका हैं। **प्रदूषित वायु में** रेत, धूल, धुंआ, **प्रदूषित जल में** विकृत जल, दुर्गन्धयुक्त जल, बिगड़ा हुआ जल का रंग, जलाशयों में पानी की कमी, **प्रदूषित देश** के अन्तर्गत दुर्गन्धयुक्त स्थान, मच्छर, मक्खी, गिद्ध, बीमार हिंसक जीव, मछलियाँ, मुर्गियां आदि का समावेश दृष्टि गोचर होता है। संक्रामक रोगों में सर्वाधिक खतरनाक वायु प्रदुषण होता है इसके कारण संक्रमण एक स्थान से दूसरे स्थान पर त्वरित गति से फैलता है।

ऐसी विसंक्रामक व्याधियों के निवारण हेतु अष्टांग योग की अहम भूमिका है। महर्षि पंतजलि ने योग द्वारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति के साधनों में अष्टांग योग के अन्तर्गत यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि का वर्णन किया है। योगासनों द्वारा शरीर का व्याधिक्षमत्त्व बल अर्जित

किया जाता है। ''इम्यून सिस्टम'' मजबूत होने से संक्रामक रोगों का असर जल्दी से हो नहीं पाता। योगासनों एवं प्राणायाम द्वारा शरीर की रक्षा तंत्र प्रणाली मजबूत होती है। प्लेटलेट्स का रक्त में स्तर सामान्य बना रहता है। अष्टांगयोग के द्वारा यम-नियम का पालन करने से आध्यात्मिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत स्वास्थ्य प्राप्ति में सहायता मिलती है। मन में कभाव बढ़ता है। मन प्रवर सत्त्व होने से जीवन में उत्साह, उमंग तथा सकारात्मक भावों की अभिवृद्धि होती है जिससे रोगाणुओं एवं कीटाणुओं के दुश्प्रभावों से बचा जा सकता है।

वर्तमान समय में योग के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में निम्नानुसार लाभ प्राप्त किये जा रहें हैं-

*आनन्द प्राप्ति में *संक्रामक रोग निवारण में

*शारीरिक एवं मानसिक दर्दों को दूर करने में *शरीर में लचीलापन बनाये रखने में

*एकाग्रता बढ़ाने के लिये *हृदय को दुरस्त करने के लिये

*मस्तिष्क के दोनों हिस्सों में संतुलन बनाये रखने के लिये

*तनाव भगाने के लिये, शारीरिक एवं मानसिक संतुलन हेतु

*यौवन बढ़ाने के लिय, आंतरिक ऊर्जा बढ़ाने के लिये

*दवाइयों की निर्मरता कम से कम करने के लिये

*गर्भवस्था में स्वस्थ शिशु प्राप्ति के लिये

*अनिद्रा दूर भगाने के लिये

*घुटना-कमर-पीठ-कंधे के दर्द दूर करने के लिये

*शारीरिक हार्मोन्स का संतुलन करने के लिये

*जीवन शैली अन्य रोगों को दूर करने के लिय

*स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये आदि शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु उपयोगिता है। विभिन्न संक्रामक रोगों में योग द्वारा नियमों के अन्तर्गत ''शौच'' का वर्णन आता है। संक्रामक रोगों के निवारण में शौच अर्थात् शुद्धता स्वच्छता का ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि केवल शारीरिक शुद्धता ही नहीं अपितु मानसिक शुद्धता, तन एवं मन की पवित्रता होना आरोग्य प्राप्ति में आवश्यक है। योग के द्वारा शरीर, मन, भावना एवं ऊर्जा रूपी चारों स्तरों पर लाभदायक सुपरिणाम प्राप्त होते हैं। क्रियायोग के द्वारा ''जीवन ऊर्जा'' का विकास किया जाता है। संक्रामक रोगों की निवृत्ति हेतु मनुष्य की ''जीवन ऊर्जा'' का स्तर ऊचां होना परमावश्यक है। योग के द्वारा शरीर के विजातीय द्रव्यों का उचित मात्रा में शरीर से निर्हरण किया जाता है। विजातीय द्रव्य अर्थात् मल, मूत्र, स्वेद आदि का सम्यक शोधन से संक्रामक रोगों से निवृत्ति पायी जाती है।

आज संक्रामक रोगों का महत्त्वपूर्ण कारण ''अब्रह्मचर्य'' है। असुरक्षित यौन सम्पर्क भी बड़ा कारण है। योग द्वारा पंच यमों के अन्तर्गत ''ब्रह्मचर्य का पालन'' करने से शरीर की ''रोगप्रतिरोधक क्षमता'' में वृद्धि होती है। योग ऋषियों ने ''प्रत्याहार'' का उल्लेख करते हुये बताया है कि मनुष्य प्रत्याहार के समाम्यास से एकादश इन्द्रियों को सांसारिक भोगों से दूर करते हुये

आत्मनियत्रंण में रखा जा सकता है। इन्द्रियों के स्वनियत्रंण में रहने से शरीर का रंक्षातंत्र मजबूत होता है जिससे संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है। इसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा शरीर में प्राण तत्त्व (O_2) की वृद्धि होती है। रक्तसंचार सुव्यवस्थित होता है। शरीर के सभी महत्त्वपूर्ण अंगावयव जैसे - हृदय, किडनी, मस्तिष्क, फुफ्फुस एवं महास्रोतस (पाचनतंत्र के अवयव) आदि प्राणायाम के द्वारा स्वस्थ होते हैं। योग के शट्कर्मों द्वारा विभिन्न संक्रामक रोगों से पीड़ित शरीर को शुद्ध करते हुये स्वास्थ्य लाभ किया जाता है। विभिन्न प्रकार की नेतियों द्वारा नासिका, मस्तिष्क की नस-नाड़ियों, गले का कफ, आंख, नाक, कान एवं गले का संक्रमण दूर किया जाता है। कुंजल क्रिया द्वारा आमाशय का संक्रमण दूर किया जाता है। बस्ती अर्थात् एनिमा द्वारा बड़ी आंत में सड़े हुये संक्रमिक मल का निष्काशन किया जाता है। नौलिक्रिया द्वारा पाचनतंत्र को मजबूत कर शक्ति दायक बनाया जाता है। त्राटक कर्म द्वारा नेत्रों का संक्रमण दूर किया जाता है। संक्रामक रोगों से बचाने में **''कपालभाति'' प्राणायाम ब्रह्मास्त्र का कार्य करती है।** कपालभाति से आंते प्रभावित होती है, मस्तिष्क की नस-नाड़ियाँ शुद्ध होती है साथ ही सभी मुख्य ग्रंथियाँ सक्रिय होकर स्वस्थ होने से संक्रामक रोगों से बचाने में इसका दैनिक अभ्यास महत्त्वपूर्ण है। योग चिकित्सा द्वारा (1) शरीर की शुद्धि होती है, (2) अंत:स्त्रावी ग्रंथियों की संक्रियता बढ़ती है (3) महत्त्वपूर्ण संस्थान जैसे नाड़ी संस्थान, श्वसन संस्थान, पाचन संस्थान, रक्त संचार संस्थान एवं मल निष्काशन तंत्र स्वस्थ होकर संक्रामक रोगों से बचाते है। हल्का, सुपाच्य एवं संतुलित शाकाहार का सेवन चित्तशुद्धि करता है इससे आक्तिक मानसिक एवं शारीरिक पवित्रता एवं सुढ़ता बढ़ती है परिणाम स्वरूप शरीर एवं मन को तनाव रहित होते हुये स्वस्थ आध्यात्मिक रहता है।

संक्रामक रोगों में योग की उपादेयता -

1. पाचनतंत्र मजबूत होता है तथा स्वाभाविक भूख जागृत होती है।
2. शारीरिक भार का स्तर संतुलित बना रहता है।
3. मानसिक रूप से संतुष्टि, उत्साह एवं प्रसन्नता का भाव बढ़ता है।
4. मन सकारात्मक एवं रचनात्मक गति विधियाँ की ओर प्रेरित एवं सक्रिय होकर नकारात्मक सोच दूर होती है।
5. जनपादोध्वंस, मौसम प्रदूषित एवं परिवर्तन होने से प्रभावित मौसमी संक्रामक रोगों को व्याधिक्षमत्व बल वृद्धि द्वारा दूर किया जाता है।
6. शरीर में रक्तवाहिनियों के ब्लोकेज (अवरोध) दूर होकर रक्तसंचार सुचारू होता है।
7. शरीर में आक्सीजन (प्राणतत्त्व) की मात्रा बढ़ने से संक्रमित कोशिकायें स्वस्थ होती है।

4.7 विभिन्न संक्रामक व्याधियों मे आयुर्वेद का वैशिष्टय

संक्रामक रोग आयुर्वेदानुसार

(1) **संक्रामक रोग ; प्दमिबजपवने क्पेमेंमे द्ध -** सर्वप्रथम आचार्य सुश्रुत ने संहिता में व्याधियों के संक्रमण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है। ये रोग तथा इन्हीं की तरह संक्रमित होने वाले अन्य रोगों को ''संक्रामक रोग'' कहा जाता है।

प्रसंगात् गात्र संस्पर्शात् नि:श्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्।।

कुष्ठ ज्वरश्च शोचश्च नेत्राभिष्यन्द एवं च।
औपसर्गिकरोगश्च संक्रामन्ति नारन्नरम्।।

(सुश्रुत निदान 5/33-34)

प्रसंगात् (रोगी के साथ मैथुन करने से), गात्रसंस्पर्शात् (रोगी के शरीर को स्पर्श करने से), नि:श्वासात् (रोगी के श्वाँस के द्वारा), सहभोजनात् (रोगी के साथ भोजन करने पर), सहशय्यासनाच्चापि (रोगी को शैय्या एवं आसन को प्रयोग करने से) एवं वस्त्रामाल्यानुलेपनात् (रोगी के वस्त्र, माला एवं अनुलेपन द्रव्यों को प्रयोग करने से) से कुष्ठ, ज्वर, शोष, नेत्राभिष्यन्द आदि एवं अन्य औपनसर्गिक रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में संक्रमित (फैलते) होते हैं।

(2) **जनपदोध्वंस ;म्चपकमउपबेद्ध** - जनपद का अर्थ है कोई स्थान विशेष तथा ध्वंस का अर्थ है विनाश। जब रोग स्थान विशेष में वहाँ के वातावरण (वायु, जल, देश एवं काल) के दूषित हो जाने से तेजी से फैलता है तो इसे कहा जाता है। जनपदोध्वंस का वर्णन चरक विमान स्थान अध्याय.3 में किया गया है। जनपदोध्वंस को जनमार, मरक या महामारी भी कहा जाता है।

चिकित्सा जनपदोध्वंस में रसायनों का प्रयोग, संशोधन चिकित्सा, जनपदोध्वंस से पूर्व संग्रहित औषधियों का प्रयोग, सत्यभाषण, प्राणियों में दया, दान, बलिकर्म, देवतापूजन, सद्वृत्त का आचरण, शान्ति, अपनी सब प्रकार से सुरक्षा, कल्याणकारक जनपदों में जाकर निवास करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और ब्रह्मचारियों, महर्षियों, जितेन्द्रियों की सेवा करना, धर्मशास्त्र की कथा सुनना-सुनाना, वृद्ध पुरूषों द्वारा प्रशंसित धार्मिक पुरूषों के साथ रहना आदि उपाय है।

संक्रामक रोगों में ओज एवं रसायन

(3) **व्याधिक्षमत्व**- आयुर्वेद में ; प्उउनदपजल द्ध के लिए व्याधिक्षमत्व, बल, ओज, प्राकृतिक श्लेष्मा आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

ओज के गुण -

गुरू शीतं मृदु श्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम्।

प्रसन्नं पिच्छिल स्निग्धमोजो दशगुणं स्मृतम्।। (च.चि.)

ओज के दस गुण है - गुरू, शीत, मृदु, श्लक्ष्ण, बहल (घना), मधुर, स्थिर, प्रसन्न (निर्मल), पिच्छिल एवं स्निग्ध।

ओज का स्वरूप

हृदितिष्ठति यत् शुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम्।

ओज: शरीरे संख्यातं तत्राशात्रा विनश्यति।। (चरक सूच 17/74)

रसायन -

दीर्घमायु: स्मृति मेधामारोग्यं तरूणं वय:। प्रभावर्ण स्वरोदार्य देहेन्द्रिय बलं परम्।।

वाक्सिद्धि प्रणति कान्ति लभते न रसायनात्। लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।।

जिन द्रव्यों का सेवन करने से दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, मेधा (धारण शक्ति), आरोग्य, तरूणावस्था, प्रभा (चमक), वर्ण (सुन्दर वर्ण), स्वर (वाणी) का उदार होना, देह एवं इन्द्रियों में उत्तम बल की प्राप्ति, वाक्सिद्धि (कहे हुये वाक्य सत्य होना), प्रणति (नम्रता), कान्ति (सुन्दरता) आदि की प्राप्ति होती है तथा जिनसे उत्तम रस आदि धातुओं की प्राप्ति होती है, उन्हें रसायन कहते है।

आचार्य धर ने जरा एवं व्याधि को दूर करने वाली औषधि को रसायन कहा है।

1- विभिन्न संक्रामक व्याधियों में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में सबसे प्रथम सूत्र है कि संक्रामक रोग आयुर्वेदानुसार ''निदान परिवर्जनम्'' अर्थात् संक्रामक रोग होने के जो कारण है उनका परित्याग किया जाना चाहिये। उदाहरण के लिये जैसे - मलेरिया, डेंगू आदि रोग हैं तो सर्वप्रथम मच्छरों के काटने से बचाना चाहिये। यौन रोग हो गये हैं तो ब्रह्मचार्य का पालन करना चाहिये या सुरक्षित यौन सम्बन्धों हेतु विधियों का कठोरता एवं संयम से पालन करना चाहिये।
2- पंचकर्म चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत रसायन द्रव्यों का शरीर शोधनोपरान्त सेवन करना चाहिये। इन रसायन द्रव्यों में आंवला, हरीतकी, अश्वगंधा, शतावरी, "वेतमूसली, गिलोय, कौंच इत्यादि औषधियाँ है। मेध्य (बुद्धिवर्धक) रसायनों में शंखपुष्पी, गुडुची एवं मधुयष्टि आदि है। नैमित्तिक रसायनों मैं शिलाजीत, मल्लातक, अबगस्त्य रसायन आदि है।

- आजस्त्रिक रसायन अर्थात् नित्य सेवन किये जाने वाले ओजवर्धक आहार जैसे दुग्ध-घृत आदि हैं।
- आयुर्वेद में संक्रामक रोग से बचाव हेतु शरीर के बाल दोष एवं अग्नि तीनों के अनुकूल पथ्य आहार का उल्लेख है। अत: रोगी के बल शक्ति एवं ऊर्जा बढ़ाने के उपाय बताते है।
- संक्रामक रोगों में वायु शुद्धि हेतु लाक्षा, द्ररिद्रा, अतिविषा, एला, दालचीनी, कुष्ठ, प्रियंगु आदि को जलाकर उनके घूयें से वायु का शोधन करना चाहियें।
- शहरी क्षेत्रों में पानी का निकास (सिवरेज सिस्टम) सही तरीके से होना चाहिये।
- विद्यालय में छात्र-छात्राओं का, भीड़ वाले स्थानों पर नागरिकों का समय-समय पर विशेश केम्प लगाकर स्वास्थय परीक्षण करते रहना चाहिये।
- पाचन संस्थान के संक्रमण से बचाने हेतु प्रवालपंचामृत, अग्नितुण्डी वटी, हिंग्वाष्टक चूर्ण, शिक्षाक्षारपाचन चूर्ण, गंधक वटी, शंखभस्म, लहशुनादिवटी, आरोग्यवर्धनी वटी, संजीवनी आदि का प्रयोग लाभदायक होता है।
- अतिसार, हैजा आदि संक्रमण में - सूतशेखर रस, रसपर्पटी, जीरकाद्यरिश्ट, पंचामृत पर्पटी, रामबाण रस, बिल्बचूर्ण आदि का सेवन लाभदायक होता है।
- ग्रंथिजन्य संक्रामक रोगों में कांचनार गुग्गुलू, ताम्रभस्म, वंगभस्म, ताप्यादिलौह का सेवन लाभदायक होता है।
- अर्शभगदर जैसे रोगों में अभयारिश्ट, गंधकासायन, उशीरासव, कासीसादि तैल आदि का सेवन लाभदायक होता है।

- यौन रोग (सिफलिस, एड्स) आदि में पारदभस्म, रसकर्पूर, गंधक रसायन, मल्लादिवटी, प्रवालपिश्ठी, पंचतिक्तघृत गुग्गुलू, अमृतारिश्ट एवं पारदादि मल्हम आदि के प्रयोग लाभदायक होते है।
- छेवदारू, धूप, चन्दन, कर्पूर, निम्ब, गन्धक, गुग्गुलू एवं बाकुची आदि द्रव्यों से मिश्रित सामग्री द्वारा हवन करना चाहिये।
- जलशुद्धि हेतु सर्वप्रथम जल को उबालकर उसका सेवन करना चाहिये। सूर्य की धूप से जल को तपाना चाहिये। जल में सुगन्धित द्रव्य जैसे -नागकेशर, चम्पा, केतकी के पुश्प आदि डालना चाहिये।

  अधिकाधिक मिट्टी के निर्मित पात्रों का जल संचयन में उपयोग करना चाहिये। हंसोदक का पान करना चाहिये, निर्मली के बीजों द्वारा जल को शुद्ध करना चाहिये।
- भूमि आदि की शुद्धि हेतु गाय के 'गोबर' का प्रयोग करना चाहिये।
- सूर्य के प्रकाश में प्रात: सायं बैठना चाहिये, इससे भी संक्रामक रोग दूर होते है।
- अपद्रव्यों का निर्मूलन (Disposal of Solid Waste) व्यवस्थित तरीके से नियमित करते रहना चाहिये।
- अपशिश्ट खाद्य सामग्री, प्लास्टिक एवं मृत जानवर आदि का निस्तारण व्यवस्थित तरीके से किया जाना चाहिये।
- शौचालय एवं रसोई का शिंक आदि एकदम स्वच्छ होना चाहिये।
- गले के संक्रामक रोगों में सितोपलादि चूर्ण, तालिसादिचूर्ण, मधुयस्टि (मुलेठी) कवल एवं गण्डू.श विधि, शहद (मधु) आदि का सेवन लाभदायक होता है।
- यकृद् के संक्रामक रोगों में - ताप्यादि लौह, मंडूरभस्म, पुनर्नवामंडूर, अमृतारिश्ट, स्वर्णमाक्षिक मक्ष्म, कुटकी चूर्ण, भूमि आंवला, नाग एवं वंग भस्म आदि औषधियाँ लाभकर होती है।
- फुफ्फुसादि के संक्रामक रोगों में अभ्रकभस्म, मल्ल भस्म, आनन्द मैरव कफकुठार रस, श्वास-कुठाररस, शुभ्राभरस, वासा चूर्ण, श्रृंग भस्म, लक्ष्मी विलास रस, सितोपलादि चूर्ण आदि का सेवन लाभदायक होता है।
- त्वचा सम्बन्धी संक्रामक रोगों में - गन्धक रसायन, खदिरारिश्ट, आरोग्यवर्धनी, मंजिश्ठादिचूर्ण, हरतालभस्म, पंचतिक्तघृत, फिटकरी एवं हरीद्रा आदि का सेवन लाभदायक होता है।
- कृमिजन्य संक्रामक रोगों में - कृमिकुठाररस, संजीवनी हींग, अजवाइन आदि का सेवन लाभदायक होता है।
- विभिन्न प्रकार के संक्रामक ज्वरों (Fever) में गोदन्ती भस्म, महासुदर्शन चूर्ण, त्रिभूबनकीर्ति, संजीवनी वटी, गिलोयवटी (अमृतावटी), अमृताश्टकक्वाथ, विषमज्वरारि वटी, मल्लसिंदूर, लक्ष्मीविलास रस आदि का सेवन लाभदायक होता है।
- संक्रामक रोगों में घातुक्षीणता एवं निर्बलता हो जाती है अत: इस हेतु शक्तिवधर्क एवं घातुपौष्टिक औषधियों का सेवन लाभदायक होता है जैसे :- प्रवाल पिश्टी, त्रिवंग भस्म,

शिलाजीत, नागभस्म, नारसिंह चूर्ण, संशमनीवटी, च्यवनप्राशावलेह, अश्वगंद्यारिश्ट, क्रौंचपाक, बसन्त कुसुमाकर भस्म, पूर्णचन्द्रोदयस रस, रौप्य भस्म, मुक्तापिश्टी एवं प्रवाल पिश्टी, च्यवनप्राश, अश्वगेधापाक, शमावटी ग्रेनूल्स इत्यादि का सेवन लाभदायक होता है।

- स्वास्थ्य दिनचर्या का पालन जैसे-ब्रह्ममुहूर्त्त में जागरण, ऊशा पान, मलोत्सर्ग विधि, दन्तेधावन, जिव्हा निलेखिन, मुखप्रक्षालन, नस्थ सेवन, कवल-गण्डूश धारण, अभ्यंग (मालिश), व्यायाम, शरीर परिमार्जन (उबटन), स्नान, स्वच्छ वस्त्र धारण एवं शाकाहार के सेवन से तन,मन स्वस्थ रहता है परिणाम स्वरूप संक्रामक रोग दूर होते हैं।
- रात्रीचर्या-ऋतुचर्या के पालन से त्रिदोशों की समावस्था बनी रहती है जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ी रहने से संक्रामक रोगों से सुरक्षा होती है।
- आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य के पालन से इम्यून सिस्टम मजबूत होता है जिससे संक्रामक रोगों से मुक्ति में सहायता मिलती हैं।
- आयुर्वेदीय सद्वृत्त का वर्णन आचार्य चरक ने चरक संहिता के सूत्र स्थान अध्याय-8 ''इन्द्रियोपक्रमणीय'' में विस्तार से किया है। धार्मिक सद्वृत्त में पूजा, यज्ञ, दान का उल्लेख है। संक्रमण से बचने हेतु गोधृत, अक्षत, तिल, कुशा व सरसों द्वारा वेदमंत्रों से हवन करने का विधान है। इसी प्रकार सामाजिक सद्वृत्त, मानसिक सद्वृत्त, चारित्रिक सद्वृत्त, मैथुन सम्बन्धी सद्वृत्त, व्यायाम सम्बन्धी सद्वृत्त, आचार रसायन सम्बन्धी सद्वृत्त, व्यवसाय आदि कार्य सम्बन्धी सद्वृत्त का विस्तार से शारीरिक एवं मानसिक सुदृढ़-आरोग्यता हेतु वर्णन किया है।

अत: विभिन्न संक्रामक रोगों में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति द्वारा मानव संक्षेपत: उक्त सिद्धान्तों का पालन करते हुये स्वस्थ रह सकने में सक्षम होता है।

4.8 सारांश

इस इकाई मे हमने विभिन्न संक्रामक रोगो की जानकारी प्राप्त करते हूये।

संक्रामक रोग क्या होते है, उनके फेलने मे तरीके, बचाव के तरीके, टीकाकरण, एवं उपचार के बारे में अध्ययन किया हैं।

आमतौर पर हमारे चारो और जन-समुदाय से हो रहे सक्रामक रोगों की जानकारी उनके लक्षणों की जानकारी आदि जैसे मलेरिया, डेंगू, कुष्ठ रोग, स्केबीज, चिकन फोक्स, खसरा, यौन संक्रामक रोग, स्वाइन फ्लू आदि के बारे में जाना।

संक्रामक रोगों को योग एवं आयुर्वेद पद्धत्ति द्वारा कैसे बचाव एवं उपचार किया जाता है उनके बारे मे वर्णन किया गया है।

योग एवं आयुर्वेद द्वारा हम स्वयं के एवं दूसरी के संक्रामक रोगों से बचाव एवं निदान/उपचार/प्रशिक्षण देते हुये स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

4.9 बोधात्मक प्रश्न

1- संक्रामक रोग क्या होते है ? प्रमुख संक्रामक रोगों के नाम लिखिये।

2- रोग प्रतिरोधक क्षमता क्या होती है ? इसके भाग कितने हैं ?

3- संक्रामक रोगों के फैलने की विधियाँ लिखिये।

4- ड्रोपलेट्स Droplets के बारे मे बताइये ?
5- संक्रामक रोगों से बचाव के सामान्य तरीके बताइये ?
6- टीकाकरण के बारे मे लिखिये।
7- एपिडेमियोलोजिकल त्रिकोण के बारे में समझाइये।
8- संक्रामक रोगों के परीक्षण निदान हेतु विभिन्न परिक्षणों (Tests) के नाम लिखिये ?
9- चिकन फोक्स के बारे मे लिखिये ?
10-डेंगू रोग क्या है इसके लक्षण एवं निदान के बारे मे लिखिये ?
11-हैजा (Cholera) के बारे मे समझाइये व इससे बचाव के तरीको पर प्रकाश डालिये ?
12-यौन संक्रमण रोगों के बारे में समझाइये एवं बचाव के तरीको पर प्रकाश डालिये ?
13-संक्रामक रोगों व बचाव उपचार में योग पद्धति का क्या योगदान है। विस्तार से समझाइये ?
14-संक्रामक रोगों के बचाव एवं उपचार मे आयुर्वेद की भूमिका समझाइये ?

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

≈ HARRISON'S PRINCIPLE OF INTERNAL MEDICINE BY LONGO, FAUCI, KASPER JAMESON, HAUSER, LOSCALZO

≈ INTRODUCTION TO INFECTIOUS DISEASE : HOST – PATOGEN-INTERACTION BY LAWRENE C. MAD OFF & DENNIS L.KASPER

≈ चरक संहिता - डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी

≈ सुश्रुत संहिता - डॉ. अम्बिकादत्त शास्त्री

≈ अष्टांग संग्रह - डॉ. रविदत्त त्रिपाठी

≈ स्वस्थवृत्त विज्ञान - डॉ. सर्वेश कुमार अग्रवाल

≈ पंचकर्म विज्ञान - वैद्या अंजना शर्मा

≈ पातन्जल योगदर्शन - वैद्य नित्यानन्द शर्मा

इकाई 5

योग चिकित्सा कि परिभाषाऐं

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 योग चिकित्सा की परिसीमाये

5.4 अश्टायोग में अष्ट सिद्वियॉ का स्वरूप (स्वामी चरण दास जी के अनुसार)

5.5 हठयोग सिद्वि के भाव

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.10 सन्दर्भ ग्रंथ

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

आज के इस भौतिकवादी यांत्रिक एवं आणविक युग की चकाचौध के युग में मानव समयाभाव के चलते अमर्यादित असंतुलित , तनावपूर्ण दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं जीवन जी रहा है। दु:ख का विषय यह है कि भौतिक तथा कथित सुखों की तलाष में जानते हुये भी व्यक्ति तन- मन धन का दुरूपयोग कर बदले में रोग प्राप्त कर रहा है।

योग विलासी संस्कृति, अब्रह्मचर्य, प्रज्ञापराध, दूशित एवं मिलावटी आहार-विहार, कीटनाशक रसायनों से उत्पादित आहार सामग्री, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों से उत्पन्न आणविक किरणों के दुश्प्रभावों , भा्रमक विज्ञापन आदि के कारण मनुष्य चिड़चिड़ा होकर तनावग्रस्त एवं बीमार हो रहा है।

योग एक दर्शन है, जीवन विज्ञान है। विश्व को दी जाने वाली भारतीय संस्कृति की अमूल्य कल्याणकारी देन है। जो प्रकृति के पुरुष में (जड़एवं चेतन)जीवात्मा एवं परमात्मा में, मन तथा शरीर में, सांसरिक द्वन्दों में एकता, शांत तथा सामजस्य योग विज्ञान के अभ्यास द्वारा संभव है।

जब सारी सृष्टि में एकात्मा, पूर्णता का भाव रखते है। जीव मात्र के कल्याण की कामना करते है। साथ-साथ प्रार्थना -मंत्र बालते है, तो मन मिलते है, दिल मिलते हैं, तो फिर मतभेद नहीं हो सकते हैं, अत: योगा जाति, धर्म, क्षेत्र, राष्ट्र, की सीमाओं से परे सर्वत्र एवं नित्य तथा सर्वकालिक विद्या है। जिसकी सीमायें अपरिसीमित है। भूण्डल से लेकर अंतरिक्ष मय जगत आकाश की समस्त सृष्टियों तक योग की अपार व्यापक परिसीमायें हैं।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्न विषयों का अध्ययन कर हम जान सकेगे कि योग की परिसीमायें कहॉ तक है। अष्ट सिद्विऍा एवं अष्टऐष्वर्या, योग सिद्वि के समस्त भाव रोगों के शमन हेतु योग चिकित्सा, ध्यान एवं विधि नियम योग चिकित्सा में सूर्यमनस्कार, तथा अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस आदि का अध्ययन इस इकाई में किया जा रहा है।

5.3 योग चिकित्सा की परिसीमायें

योग का वास्तविक उद्देश्य तो (1) जीवात्मा का परमात्मा से मिलन था। (2) ब्रह्म की प्राप्ति। (3) आत्मा का स्वरूप -ज्ञान तथा (4) उसी आत्मसत्ता में स्वस्थ शरीर के माध्यम से समाधिस्थ होना। (5) चित्त की वृतियों का निरोध करते हुये (7) पूर्ण तत्त्व परमात्मा की प्राप्ति करना।

लेकिन आज मनुष्य योग के इस आध्यात्मिक पहलू से हट गया है। पात¥ुजल योग दर्शन में शरीर को यम- नियम का पालन करते हुये आसनों के द्वारा स्वास्थ्य शरीर बनाना तथा सुसंगठित मन की शांति एवं आनन्द हेतु प्राणायाम का अभ्यास करना है। गीता के त्रिविध में उपदेश यथा ज्ञान - भक्तिकर्म तथा क्रियायोग का क्रमशः मन, भावना, शरीर एवं उर्जा के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करते हुये पूर्णतावादी दृष्टिकोण का अपनाकर विश्व कल्याण हेतु प्रयासरत होना है।

योग का जनसामान्य में उपयोग

(i) योग की परिसीमायें अनन्त है।
(ii) योग को सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता है।
(iii) योग विश्व की समस्त जातियों से परें है।
(iv) योग विश्व ही क्या सम्पूर्ण सृष्टि का विषय है।
(v) योग जहॉ तक कि सृष्टि-ब्रह्माण है। सभी जगह पर इसकी सत्ता है।
(vi) योग समय सीमा में बाधा नहीं जा सकता है।
(vii) योग में पूर्व में भी था, आज भी है, तथा आगें भी रहेगा।
(viii) योग सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक जीवन साधना की विद्या है।
(ix) योग पुर्णता प्राप्् करने की कला है।
(x) योग के द्वारा मानव एवं प्रकृति में स्नेह बढता है।
(xi) योग शरीर एवं मन में सामजस्य बिठाता है।
(xii) योग के द्वारा जीवन शैली में परिवर्तन होते हैं, जिससें हमारा स्वास्थ्य सुधरता है।
(xiii) योग से मन के अन्दर शरीर में भीतर जागरूकता पैदा करता है।
(xiv) योग व्यायाम मात्र ही नहीं अपितु आध्यात्मिक उत्कर्ष की साधना रूपी विद्या भी है।
(xv) योग के द्वारा स्वास्थ्य को प्रोत्साहन मिलता हैं।
(xvi) योग के द्वारा हम बीमारियों की रोकथाम करते है।
(xvii) योग के द्वारा हम स्वस्थ जीवन की शैली का प्रबधंन करते हैं।
(xviii) योग के द्वारा पूर्ण आत्मा की स्वतंत्रता जीव को प्राप्त होती है।
(xix) योग के द्वारा स्वास्थ्य एवं आनन्द की प्राप्ति होती है।
(xx) योग द्वारा इन्द्रियॉ प्रसन्न रहती है।

(xxi) योग द्वारा जाठराग्नि प्रदीप्त रहती है।

(xxii) योग के द्वारा पाचन पणाली स्वस्थ रहती है।

(xxiii) योग द्वारा शरीर एवं मन का सतुलन बनता रहता है।

(xxiv) योग द्वारा कुछ ना कुछ अवष्य कर लाभ प्राप्त कर सकते है।

(xxv) योग से जीवन शैली जन्य मोटापा, मधुमेह एवं हृदय आदि रोग दूर होते हैं।

(xxvi) योग के द्वारा मानव शरीर के सभी अंगावयवों, स्त्रोतसों एवं आषयों पर प्रभाव पडता है।

यह स्पष्ट है कि योग के द्वारा पांच भौतिक शरीर के अन्तर्गत सात धातुओं पर उनकी आरोग्यता हेतु प्रभाव पड़ता है, लेकिन ''अस्थि वह तंत्र'' एक ऐसा संस्थान है जहाँ सीधें सीधे योग के द्वारा विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। उदाहरण के लिये- किसी व्यक्ति की दुर्घटना के दौरान हाथ पैरों में फैक्चर (अस्थि- संधात) हो जाये तो उसे एक बार तो चिकित्सालय ले ही जाना पडेगा। चिकित्सकीय शल्यउपचार पटबन्धन आदि कराना ही श्रेष्ठ है। ऐसे में दुर्घटना पीडित व्यक्ति को यदि कपालभांति कराने लग जाये तो हम नहीं समझ सकते है कि उसकी आत्यायिक (इमरजेन्सी) परिस्थिति ठीक हो जायेगी।अत: योग का वात पित्त एवं कफ इन त्रिदोशों पर निष्चय रूप से प्रभाव होकर शरीर स्वस्थ करने में महती भूमिका हे। सप्त धातुओं में योग के द्वारा कोषिका के जीव द्रव्य पर नेनोटेक्नोलेजी के तहत रस, रत्त,मांस, मेद, भज्जा, एवं शुक्रादि सभी धातुओं पर योग का स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण दोनों प्रकार से पूरा पूरा लाभ मिलता है। जहॉ तक अस्थि वह स्त्रोरस या अस्थि धातु का प्रश्न है। वहॉ पर सीधे तौर पर तो नहीं पर किन्तु आषांष की कल्पनानुसार लम्बे समय बाद इस धातु पर भी आंषिक ही सही, लेकिन प्रभाव तो स्वास्थ्यानूकुल पड़ता ही है।

योग विज्ञान के प्रमुख निम्न क्षेत्र जहॉ योग की भूमिका को स्वीकारोक्ति मिली हुयी है।

(i) शिक्षण संस्थानों के सभी स्तरों पर सभी क्षेत्रों में योग की उपयोगिता

(ii) भारतीय चिकित्सा पद्वतियाँ जैसे - आयुर्वेद -नेचुरोपैथी,सिद्ध एवं यूनानी चिकित्सा आदि।

(iii) खेल में शारीरिक सौशठव एवं प्रतिस्पर्धा में विजय हेतु योग की उपादेयता।

(iv) औद्योगिक संस्थानों के सभी स्तरों में कार्यदक्षता बढ़ाने हेतु।

- मनोचिकित्सा के स्तरों में
- शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में।
- सुसंस्कारित नागरिक बनानें के क्षेत्र में।
- राजनेताओं एवं पन्द्रह वर्श के स्वास्थ्य समायोजन के क्षेत्र में।
- भृष्टाचार राकने के क्षेंत्र में।
- आत्मानुशासन के क्षेत्र में।
- सामाजिक एवं धार्मिक अनुशासन के क्षेत्र में।
- चिकित्सा पर बढ रहें आर्थिक बजट को कम करने के क्षेत्र में।
- वैश्विक शांति के क्षेत्र में।

- परोपकार के क्षेंत्र में।
- व्यक्तिगत जीवन के सर्वागींण विकास के क्षेंत्र में।
- शारीरिक एवं मन के सौन्दर्य संवर्धन हेतु।
- समुदायिक स्वास्थ्य प्रबन्धन हेतु।
- आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के स्वास्थ्य हेतु।
- मोक्ष एवं कैवल्य प्राप्ति के क्षेत्र में।
- प्रकृति एवं पुरुष में सामजस्य हेतु।
- बीमारियों को राकने हेतु(शिक्षा के सभी क्षेत्रों में)
- बीमारियों को रोकने हेतु (समाज के सभी क्षेंत्रों में)
- आध्यात्मिकता के क्षेंत्र में। मानव जीवन सफल बनाने के क्षेत्रों में

अत: योग की अपनी कोई सीमा नहीं है। अंश्टागयोग के द्वारा सम्यक् स्वास्थ्य पाप्ति के लिये महर्षि पतंजली शारीरिक - मानसिक एवं आत्मिक शुद्धि हेतु इन आठ सोपानों (1) यम (पपद्ध नियम;पपपद्धआसन ;पअद्ध प्राणायाम ;अद्ध प्रत्याहार ;अपद्धधारणा ;अपपद्धध्यान एवं समाधि का वर्णन किया।

यम नियमों का पालन करने से शरीर को सांसारिक द्वन्द परेषान नहीं करते। द्वन्दहीन शरीर में प्राणों का संचालन स्वुच्छानुसार किया जा सकता है।जब प्राण स्वाभाविक इच्छानुसार गति करता है तो बुंद्वि स्थिर हो जाती है तथा बुद्धि के स्थिर होने पर विवेक ज्ञान प्राप्त होता है। बुंद्वि से विवेक की प्राप्ति होने पर मन के निग्रह अर्थात् वष में करने की योग्यता आ जाती है। मन के वषीकरण उपरान्त ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियॉ भी स्वत: संयम में आ जाती है। जिससे प्रत्याहार की स्थिति उत्पन्न होती है। ‘‘प्रत्याहार ‘‘की स्थिति में ‘‘ अंहकार का भावष् समाप्त हो जाता है। तथा चित्त अर्थात् मन- बुद्वि - अंहकार शांत होने लगता है।षांत चित्त के द्वारा धारणा ध्यान एवं समाधि की प्राप्ति होती है। इन तीनों को ‘‘संयम योगष् कहा जाता है। जिससे शांति - आनन्द एवं कैवल्य की साक्षात् अनुभुमि होकर परमात्मा साक्षात्कार होता है।

संयम से भूत एवं भविश्य सदृष्ट होकर उनका ज्ञान / अभ्यास होता है। श्रद्वापुर्वक मन, वचन, एवं कर्म से यमों का नियमों के द्वारा पालन करना चाहिए। शरीर का शटकर्मों, यथा: -नेती,धोती, कुंजल, नौली, त्राटक तथा कपालभाति की क्रियाओं को करने से शरीर का प्राकृतिक शोधन एवं विकास होता है। प्राणायाम के द्वारा ‘‘स्थिरता’’ तथा प्रत्याहार द्वारा मन का निग्रह हेतु धारणा फिर ध्यान एवं अन्त में ध्यान की गहराई के अनुरूप ही सम्यक समाधि की प्राप्ति होती है। जड शरीर की सम्यक शुद्वि होने बाद चित्त (मन, बुद्वि,अंहकार) की शुद्वि होने पर सम्यक स्वास्थ्य (मोक्ष, निर्वाण, परमपद) अर्थात कैवल्य को प्राप्त किया जा सकता है। यही योग का आत्मानुशासन एवं श्रेष्ठ प्रबन्धन है जो कि मोक्ष (कैवल्य) की ओर प्रेरित करता है।

5.4 अश्टांयोग में अष्ट सिद्वियॉ का स्वरूप (स्वामी चरण दास जी के अनुसार)

(i) अणिमा

(ii) महिमा

(iii) लघिमा

(iv) गरिमा

(v) प्राप्ति

(vi) पराकाम्य

(vii) इषिता

(viii) वशीकरण

01-अणिमा:- साधक को सूक्ष्म अणुरूपम में आभास होता है।

02-महिमा:- हर जगह व्यक्तित्त्व की व्यापक सत्ता का होना।

03-लघिमा:- फूलवत वह हल्का हो गया है ऐसी प्रतीति होने लगती है।

04-गरिमा:- शरीर का भार बढने की प्रतीति।

05-प्राप्ति:- सब प्राप्त कर सकता हूँ।

06-परकाम्य:- अजेय एवं शक्तिषाली बन गया हूॅ।

07-इषिता:- जिसे चाहे उसे अपने आदेशों पर चला सकता हूॅ।

08-वशीकरण:- पूरा संसार मेरे अधीन है ऐसी सिद्धी प्राप्त होती है।

योगियों की अलौकिक अष्टऐश्वर्य युक्त शक्ति (आचार्य -चरक के अनुसार)

आवेशष्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दत: क्रिया।

दृष्टि: श्रोत स्मृति: कान्तिरिश्टतष्चाप्यदर्शनम्ॎ।।

(i)	आवेषष्चेतस -	(स्वेच्छा से मन को बारे में शरीर में प्रवेष करना)
(ii)	ज्ञानम अर्थानाम् -	(सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों का त्रैकालिक ज्ञान)
(iii)	छन्दत:क्रिया -	(अलौकित अप्रत्याषित कार्य करने की शक्ति)
(iv)	दृष्टि : -	(दिव्य दृष्टि का होना)
(v)	श्रोतम् -	(दिव्य श्रवण शक्ति को हेना)
(vi)	स्मृति-	(अलौकिक स्मरण शक्ति को होना)
(vii)	कान्ति	(दिव्य कांति युक्त शरीर का होना)
(viii)	इश्टतष्चाप्यदर्शनम	(इच्छानुसार गायब एवं प्रकट होने की शक्ति का होना)

इस प्रकार के योग के सतत अभ्यास से अष्ट सिद्वियॉ एवं अष्टऐश्वर्य प्राप्त हो सकते है।

5.5 हठयोग सिद्वि के भाव

(i) उचित आहार विहार

(ii) उचित एवं शांत गहरी निद्रा

(iii) उचित साधना रूपी चेष्टा (क्रिया में)

(iv) योग में विष्वास श्रद्वा होना

(v) वीर्य शक्ति का संरक्षण करना

(vi) स्मृति (स्मरण शक्ति) बनाये रखना

(vii) समाधि स्थ होने की साधना

(viii) प्रज्ञा (ज्ञान) का सतत् प्रवाह

अन्य छ: भाव (निम्नानुसार)

01-उत्साह

02-साहस

03-धैर्य

04-तत्त्वज्ञान

05-निश्चय 06 जनसामान्य का परित्याग करना

योग प्रतिबन्धक भाव

01-अतिसार

02-अल्पाहार

03-अतिनिद्रा

04-अतिजागरण

05-रात्रि जागरण

06-दिवास्पन

योग प्रतीबन्धक अन्तराय भाव:-

- व्याधि
- स्त्यान (मन नहीं लगना)
- संशय
- प्रमाद(अनियंत्रित मन)
- आलस्य
- अविरति (सांसरिक मोह)
- भ्रान्तिदर्शन (मिथ्या ज्ञान)
- अलब्ध भूमिकत्व (ध्यान ना लगना)
- अनवस्थितत्त्व (ध्यान का भंग हो जाना)

योग प्रतिबन्धक सहभुव भाव-

(i) दु:खम

(ii) दौर्मनस्य

(iii) अंगमेजसत्व (शरीर में अस्थिरता)

(iv) ‘‘वास लेना (अंदर लेना)

(v) प्रश्वास (बाहर छोड़ना)

अन्य सहभुव भाव़

01-अधिक आहार

02-अधिक प्रयास

03-प्रजल्य (अधिक वार्तालाप)

04-नियमग्रह (नियमों के चिपके रहना)

05-सामान्य व्यक्तियों की संगती (जनसंड़ग्)

06-लालच

उक्त सभी भाव योगाभ्यास का नाश करने वाले है।

ध्यान विधि एवं ध्यान नियम: धारणा ध्यान की नीव है। ज्यौ-ज्यौं धारणा का पक्का होने लगता है त्यों त्यों ध्यान की लगने लगता है। नाभिचक्र ,भूमध्य या हृदयादि में ध्येय रूपी परमात्मा में एकाग्रता को ध्यान की संज्ञा दी है। ध्यान के समय मन की ब्रह्मा के आनन्दमय ज्योतिमर्य एवं शांतिस्वरूप में अवस्थित हो जाना ध्यान है। ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। आनन्दमय एवं शांतिमय जीवन हेतु ध्यान सहायक होता है।

01-ध्यान से पूर्व प्राणायाम अवष्य करना चाहिये।जिससे कि मन पूर्ण शांत एवं एकाग्रता हो जाये।?

02-ध्यान से पूर्व तीन मिनट कपालभांति के द्वारा शोधन क्रिया तथा न्यूनतम पांच. मिनट अनुलोम- विलोम प्राणायामक रने से मन निर्विशय होने लगता है, ध्यान करने वाले का मूलाधार चक्र जाग्रत होकर ऊध्र्वागामी होकर आज्ञाचक्र में स्थित होकर औंकार स्वरूप में जाकर मन एकाग्र हो जाता है।

03-ध्यान करते समय यदि फिर भी अन्य कोई समसामयिक या नकारात्मक विचार आ जाये तो उन्हें आने दे, मूल विषय पर ध्यान को सर्वोपरि रखतें हुये महत्त्व देवें।

04-अनासत्त भाव में रहकर विवेक एवं वैराग्य के साथ परमात्मा का शुभकार्य है। ऐसा मानते हुये साधना में उपधा रहित निश्काम एवं फल की अपेक्षा रहित ध्यान करना चाहिये।

05-सुख प्राप्ति एवं सुखात्मक बुद्धि रहने पर ईष्वर प्रणिधान अर्थात है्

गोविन्द ‘‘त्वदीयं वस्तु गोविन्दम्, तुभ्यमेव समर्पयेत्ष्

यह सब कुछ तेरा है यह तुझे अर्पित है।

ऐसा भाव आना चाहिये। बिना ईष्वर प्रणिधान के ध्यान एवं समाधि तक पुहॅचना सर्वथा असम्भव है। ध्यान लगाने की क्रिया का प्रयास हो सकता है परन्तु प्राप्ति असंभव है उसके लिये साधना की आवश्यकता होती है।

06-परमात्मा ने भौंहे, आँख, नाक, कान, ओश्ठ, कान, हृदय, वक्ष, सहित समस्त अंगावयवों की आकृति औंकारमय बनायी है। अत: औंकार का ध्यान, जप, सवोतम है। शरीर रूपी पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में सभी औंकारमय है। वेदों में गायत्री मंत्र का जप औंकारपूर्वक किया जाने का विधान है।

07-ध्यान में प्राण के साथ प्रणव को उदगीथ के उपासना से सिद्व करते हैं। सभी ज्ञानेन्द्रियॉ, द्वन्दमय संदोष कारक है, जैसे कान, अच्छा- बुरा दोनो सूनता है। नासिका सूगन्ध-दुगन्ध दोनों ही प्रकार को सूघंती है। आंखे शुभ – अशुभ दोनों को देखती है , जिहा भक्ष्य अभक्ष्य दोनों का भक्षण करती है। वाणी- मधुर कटु दोनों प्रकार की होती है। यहॉ तक कि मन में सुविचार एवं कुविचार दोनों ही आते है। एकमात्र ुष् प्राण "ही ऐसा श्रेष्ठ तत्त्व है जो कि पूर्णतया निर्दोश है। अत: सच्चिदानंद के साक्षात्कार हेतुष् प्राणतत्त्वष् प्रणवमंत्र औंकार की उपासना, गीथ प्राणायाम के साथ करनी चाहिये।

08-प्रतिदिन एक घण्टा जब ध्यान एवं उपासना हम चाहे जिस पूजा पद्वति को मानने वाले हो अवष्य करना चाहिये। इससें स्वस्थ्य की प्राप्ति एवं जीवन संतुलित रहता है।

09-ध्यान एक ऐसा विषय है जिसको भौगोलिक सीमा में हम बांध नहीं सकते। विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में शांति- एकाग्रता- स्ववस्थ शरीर - संतुलित जीवन जीने हेतु ध्यान की क्रियायें करता हुआ परम शक्ति परमात्मा का साक्षात्कार करने की साधना कर सकता है।

ध्यान विधि:-

सर्वप्रथम सुखासन, स्वस्तिकासन किसी भी सुखानूभुत आसन में बैठते है। रीढ सीधी कमर सीधी, आंखें कोमलता से बंद कर "वास गति लम्बी एवं गहरी तथा अत्यन्त धीमी। मन का आहार विचार है। अत: मन को विचारों से शून्य करना ही ध्यान की अवस्था है। मन को एकाग्र करते हुये प्रणव अपने इष्ट का स्मरण करना एवं उसी अवस्था में उसका साक्षात्कार कर आनन्द का प्राप्त करना है, वस्तुत: मन को विचारों से रहित करने से ही उत्तरोत्तर ध्यान एवं समाधि की स्थिति प्राप्त होती है। ध्यान हटाने पर ही वापस चेतना, जाग्रति लाते हुये दोनों हाथों की हथेलियों का परस्पर घर्शण करते हुये चेहरों पर आंखों पर स्पर्ष करावें।ध्यान की स्थिति में शड्चक्रों की मानसिक यात्रा एवं प्राणों के द्वारा

मूलाधार- स्वाधिश्ठान, -मणिपुर-अनाहत- विषुद्व एवं आज्ञाचक्र, , सहस्रार चक्रतक प्राणतत्त्व को ले जाना एवं उप चका्रे को स्वस्थ करना, जागृत करना आदि है। मन से भावनात्मक क्रिया की जा सकती है। लेकिन अन्त में एकमात्र परमात्मा का साक्षात्कार रूपी ध्यान आवश्यक है। आंखों को स्पर्ष के बाद से धीरे धीरें कोमलतापूर्वक आंखों को खोलकर वातावरण के सम्पर्क में लाना चाहिये। मन में पुन: शान्ति, हल्कापन एवं ताजगी महसूस करें। यह साधारण ध्यान विधि है।

"**रोगों के शमन हेतु योग चिकित्साष्**।।

रोग	-	योग चिकित्सा के आसन एवं प्राणायाम्।
पाचन के लिये	-	पष्चिमोत्तनासन, मयूरासन, त्रिकोणासन, अर्धमत्स्येंद्रासन
कब्ज रोग	-	पवनमुक्तासन, चक्रासन, अर्धमत्स्येदासन, पादहस्तासन।
गैस रोग	-	पवनमुक्तासन, धनुरासन, चका्रसन, जानुशिरासन।
नैत्र रोग	-	सर्वागांसन, वृक्षासन, मयुरासन, उश्ट्रासन।
आमवात		-पष्चिमोतानासन, मत्स्येन्द्रांसन, शीर्शासन ।
उदरकृमि (कीडै)	-	मत्स्येन्दासन, वृष्चिकासन, नौकासन, चक्रासन आदि।

अम्लपित्त एसिडिटी	-	शलभासन, नाडी शोधन प्राणायाम।
मेदो रोंग	-	मयूरासन, जानुसिरासन , सर्वागांसन, शलभासन आदि।
पाइल्स (अर्ष)	-	सर्वागांसन, पष्चिमोत्तनासन, गौमुखासन, अष्विनी मुद्रा ।
आलस्य त्याग	-	ताडासन, त्रिकोणासन, शीर्शासन, सर्वागासन।
थकावट दूर करने हेतु	-	शवासन, दण्डासन, मकरासन, योगनिद्रा।
झुर्रियों दूर करने हेतु	-	शीर्शासन, सर्वागासन, विपरीतकरणी, योगमुद्रा ।
उच्च रक्तचाप	-	शषाकासन, भा्रमरी, प्राणायाम।
हीन रक्तचाप	-	वक्रासन, भात्रिका पाडीषेधन, सूर्यनमस्कार करना आदि।
‘‘वास(दमा) मास्त्रिका	-	‘‘वासन , सर्वागासन, शीर्शासन, भुंजगासन, कपालमाति,
मधुमेह	-	सूर्यनमस्कार , टलासन, सर्वागासन, पष्चिमोत्तानासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, वक्रासन
कमरदर्द शंषकासन।	-	त्रिकोणासन, उत्कासन, गौमुखासन, भुंजगासन, चका्रसन,
मेरूदण्ड के रोंग	-	हलासन, धनुरासन, उश्ट्रासन, चक्रासन, , पष्चिमोत्तनासन , वक्रासन आदि।
खांसी (कफ)	-	शीर्शासन, पादहस्तसन, उश्ट्रासन कपालभांतिक्रिया, ।
सयटिका	-	शलभासन, भुंजगासन, गरूड़ासन, धनुरासन, वज्रासन, गौमुखासन।
मानसिक तनाव शंषाकासन आदि।	-	शवासन, वजा्रसन, सर्वागांसान, शीर्शासन, मकरासन,

योग चिकित्सा की वैज्ञानिकता

संसार में कोई भी व्यक्ति दु:ख एवं अहितायु को प्राप्त नहीं करना चाहता। हर व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है। सभी ‘‘रोग मुक्त जीवन चाहते हैं।’’ कोई भी ‘‘रोगमुक्त जीवन “ जीना नहीं चाहता है। शरीर को साधना ही धर्म का साधन है। योग द्वारा शरीर की उपेक्षा नहीं अपितु शरीर को सशक्त एवं लचीला बनानें पर जोर दिया जाता है। भौतिक संसाधनों एवं तृष्णाओं के चक्कर में मनुष्य इतना फंस रहा है, कि कभी कभी तो यह संदेह भी होने लगता है कि वह इन भौतिक सुख सुविधाओं को भोग भी पायेगा या नहीं। आखिर भौतिक सुख सुविधाओं को भी भेगने के लिये, उनके उपयोग के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है।

शरीर के अन्दर की शक्ति बढाने का काम योगासन के द्वारा किया जाता है। योगासन करते समय अपने अपने शरीर को आगे झुकाता है। साधक स्वशरीर को तानता है। शरीर को ढ़ीला करता है। शरीर को मरोड़ता है। इन सभी शारिरीक क्रियाओं के द्वारा स्क्तनलिंक साफ होती है। वे शुद्व होकर

विकार रहित होती है परिणामस्वरूप सम्पूर्ण शरीर में शुद्व रक्त पहुचाने में आसानी होती है साथ ही अशुद्व रक्त को पुन: शुद्विकरण हेतु हदय में वापस लाने में सुविधा होती है।

शरीर में जहॉ जहॉ "प्राणतत्त्व युक्त शुद्व रक्त संचरित होता है। वे अंग सक्रिय पुष्ट एवं रोगमुक्त होते है। योगासन, प्राणायाम, एवं सूर्यनमस्कार से रक्तनलिकायें शुद्व होती है। फुफ्फस के वायुकोषों में अधिक मात्रा में प्राणतत्त्व "अर्थात ऑक्सीजन जाती है। जिससे कोशिकाओं के "जीवद्रव्य" का पोषण होता है।साथ ही शरीर से विकारयुक्त कार्बनडाइआक्साइड विजातीय रूप में बाहर निकलती है।

सारे रोगों की जड पेट अर्थात् मन्दाग्नि है। इससे''पाचन शक्ति'' कमजोर हो जाती है। ''रोगा सर्वेडपि । अत: योगाचिकित्सा के द्वारा पाचन संस्थान ठीक रहता है। पाचक स्त्राव आवश्यकतानुसार स्त्रवित होते है। भूख समय पर लगती है। भोजन का पाचन ठीक रहता है। शरीर को पोशक तत्त्वों की पूर्ति होकर उर्जा शक्ति प्राप्त होती है।

योग चिकित्सा द्वारा मेरूदण्ड में लचक पैदा की जा सकती देती है। मेरूदण्ड की लचक से शडचक्र उद्दीप्त होते है। सुशम्ना नाडी इड़ा एवं पिंगला सहित सक्रिय होकर मस्तिष्क में स्थित नाडी मण्डल को पोषण देते हुये स्वस्थ रखती है।

जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी शांत होगा, तभी भीतर की शक्तियॉ जागेगी। चक्र खुलेगे, एवं मन एकाग्र होगा। कार्य करने में कुशलता आयेगी। जिससे कि मन प्रसन्न होगा। मन की यहीप्रसन्नता तो आनन्द का स्वरूप है। आनन्द ही परमात्मा का दूसरा नाम है। जीवात्मा परमात्मा बन जाये उसी साधन का नाम होता है योग।।

आज योग के प्राणतत्त्व पर क्रिया करने के कारण उसें ''नैनों मेंडिसन'' कहा जाने लगा है। प्राण तत्त्व आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक चिकित्सा है। हम जानते हे कि प्राणायामक का प्रायोगिक करने पर फुफ्फसों को आयतन को सामान्य से दस गुना बढाया जा सकता हैं। ऑक्सीजन की शरीर में वृद्वि की जाती है। जिससें रक्तषोधन की रासायनिक प्रक्रिया में वृद्वि होती है। शरीर का प्रत्येक कोषिका को आवश्यकतानुसार प्राणतत्त्व आक्सीजन प्राप्त हो जाता है। इसी आक्सीजन के द्वारा जारूण की प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राप्त उर्जा (ए.टी.पी.)के द्वारा उचित पोषण होकर सभी अंग अवयव स्वस्थ होते है। योग चिकित्सा में प्राणायाम के द्वारा कोशिकाओं एवं अंगों में होने वाले क्षरण ''नेक्रोसिस'' या ''डिजेनेरेशन'' को रोका जाता है। अत: प्राणायाम श्रेष्ठ ऑक्सीडेन्ट माना जाता है ।

5.7 सारांश

प्राचीन भारतीय परम्परागत योगचिकित्सा का आध्यात्म के साथ साथ स्वास्थ्य ्रपाप्ति में योगदान में हेतु इसका परिसीमायें ,अष्टसिद्वियॉ, हटयोग सिद्विकर भाव ध्यान विधि एवं नियम, रोगों, की चिकित्साऐं हेतु योगासन, योग चिकित्सा की वैज्ञानिकता, योग चिकित्सा का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इस वग्रन के अन्तर्गत हम सार रूप में अध्ययन कर पाये कि समग्र आरोग्य की प्राप्ति में आत्मिक विकास एवं आध्यात्मिक लक्ष्य को पा्रप्त करते हुये सृष्टि क अन्य जीवधारियों प्रकृति आदि के साथ समाजस्य करते हुये विश्व को शातिमय एवं निरोग बनानें के लिये प्रयास में योग की सराहनीयमहत्त्वपूर्ण भूमिका के द्वारा समभव है। जो कि व्यक्ति से प्रारम्भ होकर परिवार- समाज - राष्ट्र एवं विश्व में सभी के लिये कल्याणकारी है।

5.8 शब्दावली

- सांसारिक द्वन्द - दिनचर्या शुभ, अषुभ जड - चेतन, दिन - रात, लाभ हानि, यष-अपयष आदि
- अपरिसीमित - व्यापक एवं विषाल जिसकी कोई सीमा ना हो।
- अष्ट ऐष्वर्य - योग के सतत अभ्यास से प्राप्त आठ विशेष शक्तियॉ
- ‘‘ल्यापचार - आधासज दुर्घटना की द्वारा चिकित्सा
- संयम योग - धारणा, ध्यान, समाणि का संयुक्तानाम
- वषीकरण - दुसरें को वष में कर उसके जैसा वैसा ही करना
- इश्टष्चातदर्शनम् - इच्छानुसार गायब एवं प्रकट होना।
- चेष्टा - क्रिया करना
- प्रष्वास - रेचक ‘‘वास को बाहर निकालना
- जनसड.ग् - सामान्य लोगों के साथ में रहना
- मणिपुर - नाभि में स्थित चक्र का नाम
- अनाहत - हदय स्थित चक्र का नाम
- ओज - सप्त धातुओं का सार भाग
- संगच्छध्वम् - साथ साथ चलें/ गमन करना
- कल्याण - मंगल (दूसरों) का भला करना

5.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. योग की आठ सिद्वियाँ कौनसी है?
2. आट ऐष्वर्यो का वर्ण कीजिये?
3. ध्यान के नियम बताइये?
4. योग चिकित्सा की परिसीमाये लिखिये।
5. हठयोग सिद्वि के भाव को समझाइये।

5.10 सन्दर्भ ग्रंथ

- योग विंज्ञान का परिचय -ओ. एन. तिवाडी
- चिकित्सा विज्ञान एवं पंचकर्म - डॉ. श्रीमती विमला शर्मा
- चरक संहिता ‘‘पिद्योतनी’’ - पं. काशीनाथ शास्त्री
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा

- आयुर्वेद दीपिका - टीका चक्रपाणिकृत
- योग वशिष्ठ - वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री
- प्राणायाम - स्वामी कुवलयानन्द
- आयुर्वेद प्रबोध - डॉ. श्रीमती विमला शर्मा
- हठ योग प्रदीपिका - डॉ. पीताम्बर झा
- अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस गाइड लाइन - केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद् आयुष मंत्रालय ;ब्ब्त्ल्छद्ध

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक प्ररिपे्रक्ष्य में योग की परिसीमायें बताइये?
2. योग सिद्धि के भाव एवं बाधक कारणों का वर्णन कीजिये?
3. योग चिकित्सा के द्वारा रोग निवारण का वर्णन कीजिये?
4. योग चिकित्सा में सूर्यनमस्कार पद्वति के वैज्ञानिक लाभ बताइये?
5. अन्तराष्ट्रिय योग दिवस का परिचय देते हुये इसका विषद वर्णन कीजिये?

इकाई – 6

प्राकृतिक चिकित्सा का योग एवं आयुर्वेद से संबंध

इकाई की रूपरेखा

6.1 परिचय

6.2 उद्देश्य

6.5 योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म

6.6 रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना

6.7 रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस

6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

6.1 परिचय

प्राकृतिक एवं आयुर्वेद चिकित्सा लाभ पृथ्वी पर मानव के विकास से भी पूर्व जीव जगत में मिलता रहा है। जो जीव प्रकष्ति के जितना सन्निकट होता है वह उतना ही प्राकृतिक चिकित्सा लाभ प्राप्त करता है। सूर्य की धूप के अनुसार पौधे का फूल-पत्तीह्र जड़, तना अपनी स्थिति में परिवर्तन करता है। पशुओं और पक्षियों को जब जितनी मिट्टी, धूप, हवा, पानी अथवा आकाश की आवश्यकता होती है वह ग्रहण करने का प्रयास करता है। ये जीव अपना मिट्टी स्नान, टब स्नान, सूर्य स्नान, घर्षण स्नान, व्यायाम एवं अन्य नैसर्गिक क्रियाएं अपनी आवश्यकता के अनुसार करते रहते है।

जिस प्रकार प्रकृति के निकट रहने वाले जीव प्राकृतिक चिकित्सा लाभ करते रहते है। उसी प्रकार ये जीव पौधों, एवं प्रकृति में स्थित द्रव्यों का आयुर्वेदिक प्रयोग ये जीव करते रहते है। बिल्ली कुत्ता भी एक पेट खराब की स्थिति में एक प्रकार की घास खाकर कुछ देर पश्चात मुंह के द्वारा उसे वापस बाहर निकाल देता है। बहुत से जीव प्रकृति में स्थित रसायनों का आयुर्वेदिक प्रयोग नैसर्गिक रूप से जानते है। एवं निरोगी रहते है। क्योंकि आयुर्वेदिक शास्त्रीय ज्ञान के अनुसार प्रकृति में स्थित प्रत्येक द्रव्य वस्तुत :कोई न कोई औषधीय गुण सम्पन्न होती है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य यह है कि पाठ्यक्रम प्राकृतिक चिकित्सा विद्याथ्री मूल भूत रूप से आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर, समानता एवं समन्वय से भली भांती परीचित हो सकें। इस इकाई में प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक सिद्धान्त, आहार विज्ञान षट्कर्म एवं पंचकर्म के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। समय, आत्मानुशासन, इन्द्रिय नियंत्रण योग आयुर्वेदिक चिकित्सा में जितना अधिक आवश्यक है प्राकृतिक चिकित्सा में उससे भी अधिक जरूरी है। एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को भी चाहिए कि उसे प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान हो और प्राकृतिक चिकित्सा को भी चाहिए

उसे आयुर्वेद का भी ज्ञान हो क्योंकि दोनो चिकित्सा पद्यतियों की मात्रा रेल की पटरियों की भांति है जो किसी भी स्टेशन, अथवा जंक्शन पर मिलती रहती है। दोनों का उद्देश्य एक है कि समाज सुखी, स्वस्थ एवं आनन्दित जीवन जी सके एवं भोजन की मात्रा पर रहे।

प्राकृतिक चिकित्सा का विकास प्रकृति के साथ हुआ है। जैसे प्रकृति अनादि है वैसे ही यह चिकित्सा भी अनाधि है। इसी प्रकार आयुर्वेद भी अनादि हैं। प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद तथा योग अपौरूषेय है यानि मनुष्युकश्त नही है। जिस प्रकार चारों वेद को अपोरूषेय कहते है उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग अपोरूषेय है। ये तीनों पद्धतियां आदि और अनन्त है जिसका सटीक सविस्तार वर्णन वेदों में उपलब्ध है। महायोगेश्वर भगवान श्री कृष्णकी गीता, पतंजलि, कशिष के योग दर्शन, चरक संहिता आदि आयुर्वेदिक ग्रंथों में उपलब्ध है जिसका वर्णन आगे किया गया है।

अस्तित्व के दो रूप है। जड और चेतना जड़ से चेतन के विकास वनस्पति सजीव के दो वर्ग वनस्पति तथा प्राणी मुख्य है। चेतन सजीवों वनस्पति तथा प्राणी के उद्भव के साथ उनमें स्वास्थ्य रक्षक एवं रोग निवारक शक्ति जीवनी शक्ति वायटलिटी का विकास हुआ जो अब तक समस्त सजीवों की रोगों से रक्षा करते हुए आरोग्य प्रदान करती रही है। जीने की चाहत जो जिविषा तथा जीवनी शक्ति एक दूसरे के लिए प्रेरक का कार्य कर हर मुसीबतों एवं रोगों पर जो लिखा यानि जीतने की इच्छा हेतु ये सतत् प्रयत्नशील रहती है।

जीवन के विकास सम्बन्धित अनेक धारणायें है। अलग-अलग मिथकों एवं सम्प्रदाओं की पृथक मान्यताएं है। उन सम्बन्धों में हम यह चर्चा नहीं करेंगे। हम यहां वैज्ञानिक मान्यता की चर्चा करेंगे कि कैंसे स्वस्थ रखने वाली जीवनी शक्ति एवं जिविषा का विकास हुआ।

अरबों वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड में एवं अपूर्व एवं अद्वितीय घटना घटी। सूर्य का एक टुकडा अलग हो गया, यही कालान्तर में पृथ्वीकहलाई। पृथ्वीकि गोला थी। धीरे-धीरे उसका बाह्य हिस्सा ठण्डा होने लगा, तापमान कम होने से पृथ्वीं के चारों ओर के आसमान में हाइड्रोजन ऑक्सीजन आदि गैसें मिलकर एक निश्चित अनुकूल तापमान एवं दबाव में रासायनिक प्रतिक्रिया से भाप एवं बादल बन गये। करोडों बरसों तक मुसलाधार बारिश होती रही। सारी पृथ्वी् जलमग्न हो गयी। जिधर देखो उधर जल ही जल था। पृथ्वीके ठण्डे विशाल गहरे पृष्ठी पर प्रचुरता से जल इकट्ठा हो गये, यही बाद में महासागर कहलाये। आकाश धुलकर निर्मल निरभ्र स्वच्छ हो गया। अभी भी पृथ्वीकी आन्तरिक भाग धधकते पिघले द्रव की स्थिति में है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सक्रिय ज्वाला मुखी से निकलते लावा है। धीरे-धीरे वायुमंडल का निर्माण हुआ। वातावरण में मौजूद अनेक रासायनिक परिवर्तन हुए जिनसे शर्करा, एल्कोहल, एल्डिहाइड आदि अनेक रासायनिक तत्वों का निर्माण हुआ। ये सभी बरसात के जल में घुलकर सागर में पहुंचे। सागर के ज्वार भाटे की लहरों से इनका घोल बन गया जो जीवन के आदिम (primiral) सूप कहलाये। इनमें परमाणुओं की संख्या पर्याप्त होने से उनमें स्थायित्व पैदा हुआ। अपने को बचाये रखने की तीव्र लालसा का निर्माण हुआ। तीव्र जिजीविषा की प्रबलता के चलते आदि कालीन सागर में मौजूद रसायन शर्करायें, वसायें, एमिनो एसिड ;प्रोटीनद्ध तथा कोशिक जनक फॉस्फोलिपिडस आदि सर्वोत्कश्'ट संरचनाओं ने आत्म सुरक्षा के लिए एक झिल्ली निर्माण कर लिया।

प्रकृति का यह अद्वितीय महान प्रारम्भिक जैव सश्जन जीवन का जिजीविषा तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने आप में अद्भूत मिसाल तथा कमाल था। झिल्लियों में बन्द होकर यह अनोखा जैव सश्जन

आदिकालिन समुद्र से पृथक अस्तित्व बना लिया। वे समुद्र में रह कर भी सागर से भिन्न थे। बाद में अनेक हिम युग आये, मौसम बदला, सागरों की संरचना बदली, वातावरण बदले लेकिन इन सबका कोई विशेष प्रभाव झिल्लियों मे बन्द इन पुराने सागरों पर नहीं हुआ। झिल्ली मे बन्द इन जैव रसायनों से जीवन का प्रारम्भिक विकास हुआ। इस प्रकार एककोशीय जीव का सश्जन हुआ। एककोशीय जीव के जीने के लिए आवश्यक था पोषक तत्वों की आपूर्ति। इसके लिए भूख की अनुभूति हुईं। भूख से मुक्ति के लिए आहार की खोज प्रारम्भ हुई, उनमें संघर्ष एवं तनाव पैदा हुआ। जो कोशिका ऊर्जा का उपयोग करने में सक्षम हो गई, उनकी संख्या बढ़ने लगी। कमजोर एवं काटिल कोशिकाऐं नष्ट होने के के लिए अभिशप्त थी। सशक्त एवं प्रभत्व का प्रथम बार युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक जाति की कोशिका दुसरी जाति को खाने लगी। अशक्त एवं आलसी कोशिकाएं समाप्त होने लगी। जो जवाबी हमला करने मे सामथ्र्यवान थी, वे बच गयी। इस प्रकार शक्तिशाली कोशिकाओं की संख्या बढती रही। डार्विन के नेचुरल सेलेक्शन के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी क्षेत्र में जो फिट था वही हिट हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम जीवनीशक्ति का प्राणियों में प्रादुर्भाव हुआ। आज भी हमारे शरीर परिवार एवं समाज में यही गुण धर्म विद्यमान है। गुणात्मक दृष्टि से शक्तिशाली कोशिकाओं का साम्राज्य होता है। जब भी किसी प्रकार के शत्रु रोगाणुओं का प्रहार हमारे शरीर पर होता है, शरीर की स्वस्थ खरबों कोशिकाऐं रासायनिक विषों की वर्षा कर तथा अन्य अनेक तरीकों से उनके संहार में लग जाती है, शरीर के ये नन्हें-नन्हें जीव जो सात माइक्रोन ;मि.मी. का हजारवां भागद्ध से भी छोटे होते है अपनी आत्म रक्षा में निरन्तर प्रयत्नशील रहतें है।

गुणात्मक दृष्टि से शरीर का जीव द्रव भी आदिम महासागर की तरह ही किंचित क्षारीय है, वैसा ही युद्ध आज भी चल रहा हैं जैसा आदिम महासागर में चलता रहा है। जब हमारे अन्दर सुस्त, कटिल तथा रूग्ण कोशिकाएं होती है तभी हम शत्रु रोगाणुओं के शिकार बनते है। कुछ घातक रोगों जैसे कम्वाइण्ड इम्यूनोडिफिसिएन्सी, एक्वायर इम्यूनडेफिशिएंसी सिंड्रोम प्रभावशाली होकर हमें नष्ट करने के लिए तुल जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद तथा योग शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाने के लिए रोग प्रतिरक्षात्मक प्रणाली जीवनी शक्ति को शौर्यशाली, शक्तिमान, एवं साहसी बनाने पर बल देती है ताकि प्रत्येक कोशिका रोगाणुओं से लडने में सक्षम हो सके। इसके लिए सम्यक आहार, सम्यक विचार, सम्यक विहार, सम्यक व्यवहार, सम्यक श्रम ;आसन, प्राणायाम, ध्यानद्ध, सम्यक खान-पान, सम्यक जीवन शैली तथा प्रकृति का उन्मुक्त किन्तु सम्यक सेवन पर बल देती है।

6.3 योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद में मल तथा विजातीय पदार्थ को निकाल कर बाहर करने के लिए पंच तत्व चिकित्सा षट्कर्म एवं पंचकर्म को विधान है। पंचकर्म का मूल उद्देश्य शरीर के संचित विकृत दोषों को निकाल बाहर करना है। चरक में आयुर्वेद में चिकित्सा एवं योग का सुन्दर समन्वय किया गया है।

चतुष्प्रकाश संशुद्धि, पिपासा, मारूतातयौ।

पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम।।

प्राकृतिक चिकित्सा में वमन विरेचन, एनिमा (वस्ति), मालिश (स्नेहन) भाप स्वान, जल, वायु, अग्नि (सूर्य), उपवास (आकाश), व्यायाम, योगासन, प्राणायामादि का प्रयोग होता है।

आयुर्वेद के पंचकर्म के अन्तर्रगत(क) पूर्व कर्म से (1) पाचन के अन्तर्कगतक्वाथ, रस, पेय, चूर्ण आदि निरापद वनौषधि फल सब्जी जो दीपन भूख को ठीक करने वाला एवं पाचन हो का प्रयोग होता है (2) स्नेहन के अन्तर्पगततेल मालिश (3) स्वेदन के अन्तर्नगतभाव सावनादि स्नान है। (ख) प्रधान कर्म के अन्तर्चगत(1) वमन-कुंजन आदि यौगिक षढ़कर्म द्वारा वमन कराते है। (2) विरेचन के अन्तेंगत प्राकृतिक यौगिक चिकित्सा के अन्त गत शंख प्रत्तालन कराते है जिसके ऊपर से पानी पिलाकर अधोमार्ग से सारी गन्दगी को विरेचन करते है। (3) वस्ति-पूर्व जमाने में आयुर्वेद में वस्ति के अन्तर्गत जानवरों के मूत्राशय (uninary bladder) द्वारा गुर्दा द्वार से पानी क्वाथ या स्नेह पेट में पहुंचाया जाता था योग मे वस्ति के लिए मोशीजन बांस की पतली नली गुदा द्वार से नौली क्रिया द्वारा झील, तालाब के अन्दर पेट का सकार्य एवं विस्थापित करके जल को पेट में ले जाकर पेट की सफाई करते थे। इन दोनो क्रियाओं के अपेक्षा वर्तमान का एनिमा उपकरण ज्यादा हाइजनिक एवं वैज्ञानिक है। (4) नस्य नेति या शिरो विरेचन के अन्त र्गतप्राकृतिक चिकित्सा एवं योग में जलनेति, रबर नेति, सूत्र नेति, स्नेह नेति आदि का प्रयोग करके नासिका एवं सिर सम्बन्धी रोग को ठीक किया जाता है। (5) रक्तशोधन एवं रक्त माक्षण के अन्तर्रगतप्राकृतिक चिकित्सा में निरापद डिटॉक्सी फाइंग आहार व पंच तत्व चिकित्सा के द्वारा रक्त का शोधन किया जाता है। आयुर्वेद में श्रृंग एवं जलौकावचारण का प्रयोग होता रहा है। वर्तमान निडल द्वारा भी जमे खून को निकाला जाता हैं। (ग)पश्चात के अन्तर्गत - (1) संसर्जन कर्म यानि शरीर का प्राकृतिक योग चिकित्सा मिट्टी पानी धूप, हवा, आकाश (लंघन उपवास), ध्यान, आसन, प्राणायाम, षट्कर्मोदि द्वारा शरीर का संशोधन करने के पश्चात संसर्जन क्रम में रस, सूप, उबली सब्जी शीघ्र सुपाच्य आहार देते है। ताकि उपर्युक्त चिकित्सा से पेट शैथिल्यावस्था में होता है अचानक ठोस आहार देना अहित होता है। तत्पश्चात दलिया, खिचडी आदि देते हुए शने-शनै ठोस आहार पर लायें (2) रसायन आदि क्रम में प्राकृतिक फलों अनार, चीकू, सेव आदि मौसम के अनुसार दें (3) शमन प्रयोग - सबसे अन्त में तीसरा पश्चात कर्म शमन तथा संवर्पण अर्थात रोगी को रोग मुक्ति की संतुष्टि एवं तृप्ति प्राप्त हों। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों का दमन नहीं शमन होता हैं। सही में प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा शरीर के सप्त धातु रस-रक्त मांस मद अस्थि, संधि, मज्जा मेद वीर्य, वात पित, कफ, मल, मूत्र सभी साम्यावस्था में लाकर रोगी को तृप्ति प्रदान करते है। तन एवं मन को शक्ति वृहत्य उत्पन्न कर वृहण बनाते है। बल प्राकृतिक योग पंच करके सम्यक शुद्ध सात्विक प्रयोग से शनै-शनै रोगी बलशाली एवं शक्ति शाली हो जाता है।

वाग्भृट्ट ने भी अष्टांग हृदय में अपतर्पण या लंघन को शोधन और वमन में विभक्त किया है। शमन के दीपन पाचन, सुध, तृषा (जल) व्यायाम, आनप सेवन (सूर्य) और वायु सेवन सात प्रकार है। वमन, विरेक, निरूह, शिरोविरेचन और अस्त्र विस्त्रुति पांच शोधन के प्रकार है।

शोधनं शमन चेति द्विधा तत्रापि लंघनम्।

पंचधा शोधनं च तत्-निरूहो वमनं काय शिरोरे कास्त्रविस्तुति:।।

यमनं तच्च सप्तधा-पाचनं दीपनं क्षुतद् व्यायामतपमारूत:।।

चरकने दोष संचय में पंचकर्म के लिए वसंत-फाल्गुन श्रेष्ठ बताया है। वैशाख में मना किया है) तुक्रमेण फाल्गुन चैत्रो वसंतो भवति। न वैशाख:

शाड्गचर और भाव प्रकाश ने भी चरक की तरह (1) वमन (2)विरेचन (3)निरूद्ध आस्थापन (4) अनुवासन (5) शिरो विरेच यानस्य बताया है।

भा. प्र. के अनुसार - प्रथमं वमन पश्चात विरेकश्चानुवासनम्।

एतानि पंच कर्माणि निरूहो नावनं तथा।।

शाड्गधर के अनुसार - वमनं रेचनं नस्य निरूहश्चातु वासनम।।

एतानि पंचकर्माणि कयितानि मुनीखरै:।।

पंचकर्म के अन्तर्गत जिससे विभिन्न अंगो का शोधन हो उन कर्मो जैसे गेड्ष, निष्ठीव, कर्णधावण, आश्चोतन, नेत्रतर्पण, नेत्रांजन आदि भी जोडे गये है। हालांकि निष्जीवन एवं नेत्राजन शोधन कर्म नहीं है। परन्तु मूत्र के आहार मूत्र शोधन करती है इन्हें पंचकर्म मे समावेश कर सकते है। आयुर्वेद के पंचकर्म कर्म की प्राधन्यता है, औषधि का नहीं है।

सही आयुर्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा की तरह पंचकर्म ;चतवबमेद्ध विजातीय पदार्थो को निकाल बाहर करने की निराप्रद प्रक्रिया है। (panch karm are detoxyfying process nature friendly treat ment) दोषों का संचय उसका प्रकोप प्रसार स्थान संश्रय होता है। जिससे रोगो की पूर्व रूपोत्पति होती है इसके लिए पूर्व कर्म रोगोत्पति के बाद प्रधान कर्म तथा रोगोत्पति के बाद रोग का पुनरूर्वि यानि लौटकर (recurrence) नहीं आये इसके लिए पश्चात कर्म का विधान है। इसके लिए सर्वोत्तम _rq मार्च-अप्रेल वसंत फाल्गुन के नवरात्रा के समय तथा सितम्बर-अक्टूबर अश्विन नवरात्रा के समय सर्वोत्तम होता है। यही कारण है कि हमारे पुरखों ने नवरात्रि में स्वास्थ्य शक्ति शोर्य साहस एवं सौन्दर्य की देवी मां दुर्गा की स्थापना एवं 9 दिन रोगमुक्ति एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु लंघनादि की अनुष्ठान किया जाता है।

वास्तव में आयुर्वेद प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग का एक ही लक्ष्य एवं ध्येय है रोगी को बिना किसी दवा के निरापद तरीके से समस्त दोषों को निकाल बाहर करके सही चिकित्सा की जाये निरामय बनाया जाये। अभय प्रदान किया जाये। क्योंकि औषधियों द्वारा दवायें एवं शान्त किये गये विकार एवं रोग मे कभी भी उमड सकते हैं लौट सकते है लेकिन जो रोग दोष संशोधन द्वारा निकाल दिए जाते है वे पुन: लौट कर नहीं आते है।

दोषा: कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनै:।

जितु: संशोधनैर्यषु न तेषां पुनरूर्वञ्चा्च. स. 16-20

औषधियों द्वारा रोग को ठीक करने को चिकित्सा कहना उचित नही है, क्योंकि सभी रोगों की चिकित्सा पंच कर्म के प्रयोग करने से होता है।

भगवन पंच कर्माणि समस्तानि पृथक तथा।

निर्दिष्टन्याम याना हि सर्वेषामेव भेषजम्।।

दोषजो·स्त्यामयै: कश्चित यस्य तानि भिषग्वर। च. चि. 27 -5-6,7

नस्यु शक्तानि शमने साध्यस्य क्रिमया सत:।

वास्तव में पंच कर्मादि शोधन द्वारा चिकित्सा करना ही सत्य चिकित्सा है। आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य ही “दोष संशोधन” वाली चिकित्सा की रही है जैसे कि बताया गया है याहयु दीर्ण शमयति नान्यं व्याधि करोति च।

सा क्रिया न तु या व्याधि हरित्यन्यमुदीरमेत।।

दोष संशोधन चिकित्सा से सभी रोग नष्ट हो जाते है। उनका दमन नहीं बल्कि शमन हो जाता है इसलिए नये रोग पैदा नहीं होते है। औषधियों के दुष्प्रभाव से होने वाले रोग का डर भी नहीं रहता है। संशोधन चिकित्सा से रोग एवं दोष जड-मूल से नष्ट हो जाता है।

संशोधन चिकित्सा से और कितने लाभ होते है इसका बडा ही वैज्ञानिक वर्णन च. स. 16,17 ,18 ,19 , में किया गया हैं ।

एवं विशुद्धं कोष्ठस्य कायाग्निरभिवर्(ते ।

व्याधयोश्चोपशाम्यते प्रकृतिश्चानुवर्तते।।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि वर्णश्चास्य प्रसीदति।

बलं पुष्टि रपत्यंच वश्षता चास्य जायते।।

जयं कुच्छरेण लभते चिरंजीव व्यनामय:।

(1) कायाग्नि जठराग्नि तीक्ष्ण होती हैं।

(2) कोष्ठ स्त्रोत पवित्र विशुद्ध हो जाता है

(3) व्याधियां प्रशमित होती है।

(4) प्रकृति व स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता है

(5) समस्त इन्द्रियां प्रसन्न होती है।

(6) मन और बुद्धि के कार्यो का विकास व प्रकर्ष होता है।

(7) त्वचा का रंग खिल जाता है। वर्ण प्रसादन होता है।

(8) बल बढता है

(9) शरीर पुष्ट होता है

(10) अपत्य या संतानोत्पति की शक्ति बढ जाती है

(11) वीर्य की वृद्धि होती है। शुक्राणु एवं अंडाणु शक्ति शाली होते है।

(12) वश्द्धावस्था पर रोक लग जाता है, देर से आती है।

(13) रोग रहित दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है।

शल्य कर्म का प्राचीनतम ग्रंथ सुश्रुत में भी शल्य कर्म अस्त्र चिकित्सा को नही बल्कि दोष संशोधन ;पंचकर्मद्ध द्वारा चिकित्सा को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया जाता है। स्पष्ट उल्लेख है कि चिकित्सा का मतलब ही दोष संशोधन है। न तो औषधि प्रयोग और न शल्य शस्त्र कर्म है-

द्विविधास्तु व्याधय: शस्त्र साध्या स्नेहादिभिर्यो साध्यश्च।

तत्र शस्त्र साध्येषु स्नेहादिभिर्यो न प्रतिषिध्यतं,

स्नेहादिभिर्यो साध्येषु शस्त्र कर्म न क्रियते- सु. सू. 24

6.6 रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना।

रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना। वातावरण कीटाणु तथा अन्य कारकों को रोग या दु:ख का कारण बताना अपने उत्तरदायित्व से बचाना है। स्वंय को नकारना है। रोग होने पर भाग्य एवं विधाता को दोष देना स्वंय के द्वारा किये गलत कार्यो से अपना बचाव करना है। गलत आहार विहार विचार करते समय कहां सोचते है कि मैं ही ऐसा क्यों कर रहा हुं। जब बीमारी या कोई दुर्घटना होती है तो उस समय हम ऐसे सोचते है कि हे प्रभु! यह मेरे साथ ही ऐसा क्यों हो रहा है यदि हम करने में सावधान होते है आज जो स्थिति है वैसा नहीं होता है, योगेश्वर श्री कृष्णे ने भी कहा है-

उङ्रेदात्मनालानं नात्मानमवसादयेत।

आत्मैव ‘्यात्मनो बन्धुरात्मैव विपुरात्मन:। गीता 615

अपने द्वारा अपना उद्दार करें। अपन पतन न करें। क्योंकि आप स्वंय ही आप ही अपना मित्र है और स्वंय आप ही अपने दुश्मन है। आप स्वंय अपने चिकित्सक एवं उपधारक है। आपके अन्दर चिकित्सक विद्यमान है। तत्व ज्ञान भी विद्यमान है। आप स्वंय अपने चिकित्सक है वैद्य है आपके अन्दर उपचार की सारी शक्तियां, नाना प्रकार की औषधियां सन्निहित है। योग का मूल मंत्र यही बुद्ध हो या महावीर हो पतंजलि हो या कणाद हो शंकर हो या श्याम हो योगियों मुनियों का एक ही संदेश है रोग एवं दु:ख के कारण हम स्वंय है। रोग और स्वास्थ्य निजी मामला है। यह मनुष्य की स्वतंत्रता है। अज्ञान एवं असंयम के चलते प्रकृति के नियमों को तोडने से ही रोग होता है। प्रकृति के नियमों के अनुसार चलने से हम स्वस्थ रहते है।

प्रकृति के नियम के अनुसार चलने के लिए आत्मसंयम एवं आत्मनुशासन की जरूरत होती हैं। आहार विहार एवं विचार में जहां संयम टूटता है वहीं रोगों का बीमारोपण हो जाता है। इसलिए पंतजलि _षि योग दर्शन का प्रारम्भ ही ‘‘अथ योगानुशासंन’’ तथा योग्श्चित्रवश्ति निरोध: से प्रारम्भ हो जाता है। अर्थात अनुशासन यानि प्रकृति एवं परमात्मा के नियमों तथा योगाचार्य महार्षियों के प्रवचनों आचारों एवं अनुभूत परम्पराओं के अनुसार एवं अनुकूल आचरण या आत्मशासन ही योग का अनुशासन है। जो इस अनुशासन के अनुकूल आचरण करता है वह निरोगी तथा स्वस्थ होगा ही। चितवृत्ति निरोध यानि अपने चित की व रंगो तथा मन की वश्त्तियों के प्रति जो जाग जाता है वह सदा स्वस्थ एवं सुखी रहता है। यहां निरोध का अर्थ दमन नहीं है दमन तो दवाइयां करती है। यहां निरोध का अर्थ शमन एवं जागरण से है। चित्त वश्त्तियों एवं मन की तंरगों के प्रति सतत जागृति का विज्ञान योग है। ‘‘संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्’’ संयम से विवेक जन्य ज्ञान का उद्धव होता है। जहां विवेक जन्य ज्ञान है वहां आहार विहार विचार एवं व्यवहार के प्रति गलतियां नहीं होती है रोग का स्वत: निराकरण एवं निर्वासन आरोग्य का उद्धव एवं पुनरूद्धव होता है। योगेश्वरश्री कृष्णाका कथन

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।

अनात्मनस्तु: शत्रु त्वे वर्तेवात्मैव शत्रुवत- गीता 616

जो संयमी जितेन्द्रिय यानि अपने आपसे अपने आपको जीत लिया इसके लिए वह स्वंय ही अपना बन्धु है, वह कभी बीमार तथा रोगी नहीं होगा वह सदा स्वं में स्थित स्वस्थ एवं सुखी होगा और जिसने अपने आप को नही जीता है वह असंयम होकर आहारादि में अराजकता एवं गलतियां करेगा बीमार एवं दु:खी होगा। इस प्रकार ऐसे लोग स्वंय अपने से शत्रु जैसा बत्र्ताव करते है। ऐसे अनात्मा की आत्मा ही शत्रुता में शत्रु की तरह वत्र्ताव करता है।

अत: रोग एवं दु:ख के लिए अपने भाग्य एवं भगवान कभी न कोसें संयम एवं अनुशासन धारण करें, सदा रोग से मुक्त होंगे।

6.7 रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस

रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस आदि होते है यह वक्तव्य मात्र मान्यता एवं सिद्धान्त सत्य नही है। आम सिद्धान्त है कि जहां जिन्दगी होगी वहीं पर रोगाणु पनपते है। रोगाणओं को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण होना चाहिए, चाहे वह गन्दगी शरीर के अन्दर हो या शरीर के बाहर हो।

उन रोगाणुओं को मारने वाली सभी दवाइयां रोग प्र्रतिरोधक क्षमता को सम्वर्द्धन एवं संरक्षण करने वाली कोशिकाओं को भी नष्ट करने लग जाती है। यही कारण है मल्टीड्ग्स रेजिस्टेन्ट वाले मेथिसिलिन एवं जिस्टेन्ट स्केफिलोकोकस ऑरियस ;एम. आर. एस. ए.द्ध जैसी खतरनाक सुपर बग बैक्टिरीयाओं का विकास हो गया है। जिन पर किसी प्रकार की दवा का भी प्रभाव नहीं होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग विज्ञान के अनुसार प्रकृति मे जो कुछ भी होता है कार्य (effect) एवं कारण (law of effect and cause), क्रिया प्रतिक्रिया (law of action and reaction), रोग उन्मूलक उमाड़ (law of healing crisis), रचनात्मक सश्जनात्मक एवं विनाशक विध्वंसक (law of creation construction nad destruction)] उपशमक उमाड़ (law of curative crisis), विध्वंसक कारक रोग संकट (law of destructive disease crisis), नियम के अनुसार होता है।

कारण दूर होने पर कार्य स्वत: दूर होने लगता है। रोग, रोग की चिकित्सा एवं आरोग्य की उपलब्धि अचानक नही होती हैं सभी उपर्युक्त नियमों के अनुसार उचित एवं नियत समय पर होती है। जीवन के हर क्षेत्र में बार-बार किये गये भूल एवं गलतियों का परिणाम होता है। आत्मजागरण से भूलो की पुनरावश्त्ति नही होने आरोग्य प्राप्ति में साथ होता है।

लगातार तनाव, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या्द्वेष, अहंकार, लोभ, लालच, भय, कामुकता, घृणा निराशा, क्षोभ आदि दुष्प्रवश्त्तियां रोग पैदा करती है। इन मन: स्थितियों में रक्त में एड्रिनिलिन, कोर्टिसोल, ऐनिन, एन्जियोटेन्सिन एल्डेस्टेरॉन, 5 एच. आइ. ए. ए., कॉक्सोंतल, लेंक्टिक एसिड आदि जैव रसायनों का स्राव एवं सक्रियता बढ जाती है जिससे शरीर की अनेक प्रक्रियाओं विक्षुब्ध हो जाती है। रोग प्रतिरक्षात्मक प्रणाली अस्त व्यस्त हो जाती है। जिससे जुकाम से लेकर ‘दय रोग मधुमेह कैंसर तक बीमारी होने की संभावना बढ़ जाती है।

सारी दुष्ट चित्त वश्त्तियां एक ही परिवार के सदस्य होते है, इनके नाम अनेक है फिर भी ये एक ही है। जिस प्रकार शरीर में संचित विकार विविध रोगों के रूप में कमजोर अंगो से बाहर निकलते है और उन अंगो की विकश्ति के अनुसार रोगों का नामकरण हो जाता है उसी प्रकार मन में एक विकार होने पर अनेक रूपों में प्रकट होकर रोग उत्पन्न होता है। योगीराज भगवान श्री कृष्ण् ने भी कहा है -

ध्याय तो विषयान्पुंस: सस्तेषूप जायते।

संत्सन्जायते काम: कामात्कोधो·भिजायते।। गीता 2- 6211

क्रोधार्वयतिसम्मोह: सम्मोहत्स्मश्ति विभ्राम:।

स्मृधतिभ्रंशाबुद्धि नाश त्प्रणश्यति।। गीता 2- 63 11

जो व्यक्ति जिस विषय ;सोचद्ध का चिन्तन करता है, उसी में उसकी आसक्ति सम्बन्ध पैदा हो जाता है। आसक्ति से कामना पैदा होती है। कामना में बाधा अड़चन पैदा होने से क्रोध पैदा होता है। क्रोध होने पर व्यक्ति बेहोशी मुच्र्छा सम्मोह मूर्खता में फंस जाता है जिससे स्मृ तिभ्रष्ट हो जाती है स्मृपतिभ्रष्ट होने से बुद्धि विवेक, सही गलत, निर्णय लेने की क्षमता खत्म हो जाती है जिससे मनुष्य का पतन प्रारम्भ हो जाता है परिणाम स्वरूप व्यक्ति नाना प्रकार शारीरिक मानसिक रोगों के चंगुल में फंसता चला जाता हैं। विभिन्न विकृत विषयों का चिन्तन भी भोगने से कम नहीं है।

इसका निराकरण भी योगी श्री कृष्णं ने बताया है जो कि प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद का मूल मंत्र है

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2-64 ।।

प्रसादे सर्वदु:खानां हनिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो हासु बुद्धि: पर्यवतिष्ठते।। 2-65।।

यदि होश एवं जागृति के साथ कोई साधक साक्षी भाव से इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सेवन करता है तो वह साक्षी भाव के कारण स्वत: राग द्वेष से रहित अन्त:करण की निर्मलता को प्राप्त हो जाता है। वह वशीभूत अन्त: करण वाला सही कर्मयोगी साधक होता है। अन्त: करण की निर्मलता प्राप्त होने पर साधक से सम्पूर्ण दु:खों का नाश हो जाता है। ऐसे शुद्ध प्रसन्न चित्त वाले साधक की बुद्धि नि:सन्देह बहुत जल्दी परमात्मा में स्थिर हो जाती है। राग बुद्धि होने के कारण ही साधक भोगों का सेवन करते हुए पतनोन्मुख होते है, विषयों में बुद्धि न हो तो शास्त्र विहित भोगों का सेवन करते हुए भी साधक का पतन नही उत्थान ही होता है। ऐसे साधक भोगते हुए भी नहीं भोगता है।

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद मानव जीवन को बोधपूर्ण सम्यक बनाती है। इसके सिद्धान्त सार्वसौम सत्य, शाश्वत एवं सनातन है। हर काल, परिवेश, देश एवं परिस्थिति में अपरिवर्तनीय है।

प्रकृति स्वंय चिकित्सक है। जंगली जानवरों पेड़ पौधों को बाहरी औषधि, कीटनाशी आदि रसायनों की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उनमें प्राकृतिक रूप में जीवनी शक्ति प्रतिरोधक प्रणाली एवं उपचारात्मक विकसित रहती है। जिन प्राणियों पौधों एवं मनुष्यों का रिश्ता प्रकृति से टूट गया उन्हीं के लिए कश्त्रिम संश्लिष्ट रसायनों की दवा की जरूरत होती है। कश्त्रिम रसायन शरीर के कभी अनुकूल

नहीं होते है इसलिए उनके साइड इफेक्ट के कारण अनेक बीमारियां होती है। जिस प्रकार एड्स फैला है उसी प्रकार की एक और नई बीमारी एड्स (adverse effect of drugs) यानि औषधियों के पाश्र्व दुष्प्रभाव अन्य बीमारियां तेजी से फैल रही है। वन्य प्राणियों के लिए कौन दवा, इन्जेक्शन, टीका, ऑपरेशन का प्रयोग करता है। कोई आवश्यकता नहीं होती है, वे नैसर्गिक जीवन जीते है और स्वस्थ रहते है। उन जानवरों के स्वास्थ्य की दुर्गति हो गयी जो मनुष्य के सम्पर्क में आये।

रोग को अंग्रेजी में डिजीज (disease) डिसआर्डर (disorder) आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। dis+ ease या dis + order यानि शरीर की चैन, व्यवस्था लय ताल जब खो जाती है तो भांति-भांति की बीमारियां होती है। गलत आहार मेल, प्रदुषित, परिशोधित, डिब्बा बन्द, प्रोसेस किया हुआ, कृत्रिम रसायन जैसे प्रिजरवेटिव ;सुरक्षाकारकद्ध फ्लेवर्ड, कलरेन्ट आदि मिले हुए आहार, तले हुए नमकीनादि कॉफी शराब, तम्बाकू नारकोटिक ड्रग्स कोलादि सॉफ्टपेय, दर्दनाशक, उत्तेज, गर्भनिरोधक, एण्टीबायोटिक्स आदि दवाइयों का दुरूपयोग, अनेक प्रकार के मानसिक तनाव, अतिश्रम, देर रात तक जागना, अपर्याप्त एवं विक्षुब्ध नींद एवं विश्राम, आत्मनिंदा, परनिंदा व्यायाम तथा श्रम का अभाव उपयोगी विटामिन, यिनरल तथा अन्य बायों एक्टिव माइक्रो न्यूट्रिएन्ट की कमी वाला आहार से शरीर की रोग निवारण जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद का एक ही लक्ष्य है प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगों का उपचार करने के बाद नैसर्गिक जीवन बीमा नैसर्गिक जीवन के अर्न्तनगतदिनचर्चा, रात्रि चर्या तुचर्या द्वारा आहार विहार विचार एवं व्यवहार को कुदरत के कानून का पालन करते हुए disease-dis=ease या disorder-dis=order आदि को उद्घाटित या प्रकट करना है। dis लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है पृथकता (sepration, removal, negativeness) पैदा करना उपरोक्त गलत जीवन शैली आरोग्य से अलग कर बीमारी disease पैदा करती है।

स्वास्थ्य जैसा शब्द किसी भी भाषा के शब्द कोष में नहीं है। स्वास्थ्य का अर्थ ही होता है स्वास्मिन तिष्ठति स्वस्थ: अर्थात जो अपने अन्दर प्रवेश कर 'स्व' में स्थित हो गया है "that one who has reached himself वही स्वस्थ है। जब बाहर एवं अन्दर का लय ताल, संगीत, हार्मोनी, रिद्म एवं नृत्य के मध्य संतुलन पैदा होता है तो सही में व्यक्ति चैन अमन शान्ति एवं स्वास्थ्य के अहसास से भर जाता है। स्वास्थ्य को अंग्रजी में हेल्थ कहते है जो हील (heal) शब्द से बना है जिसका अर्थ सुरक्षित, सुव्यवस्थित सुस्थित (safe and sound) होता हैं। चित, मन, तन, परिवार समाज के मध्य संतुलन का नाम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की अनेक परिभाषाएं है किन्तु ये बेमानी हो जाती है क्योंकि स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं बल्कि अहसास एवं अनुभूति होती है। स्वास्थ्य अव्याख्य है। रोग एवं बीमारियों की व्याख्या एवं परिभाषाएं होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद में रोग की नहीं रोगी के पुरे शरीर की चिकित्सा होती है। not treat the disease, only treat the patient । अन्य चिकित्सा पद्धति में जिन्हें रोग कहा जाता है और उनकी लाक्षणिक चिकित्सा दी जाती है, सिर्फ लक्षणों को दबाव दिया जाता है। जब कि प्राकृतिक योग एवं आयुर्वेद में जो रोग लक्षण एवं चिन्ह परिलक्षित होते हैं वे सिर्फ संचित दमित विकृत दुषित दोष एवं विकार है जिन्हें शरीर की जीवनी शक्ति निकाल बाहर कर स्वत: स्वस्थ होने का प्रयास कर रही है। रोगी की उम्र, उसकी जीवनी शक्ति, संचित विकार की मात्रा, धैर्य, विश्वा,

समय, रोग की स्थिति, आत्मनियंत्रण एवं संयम की क्षमता, आनुवांशिकता, संस्कार आदि पर रोगी की चिकित्सा एवं आरोग्यता निर्भर करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के साथ शत्रुवत नहीं मित्रवत व्यवहार किया जाता है। खास करके तीव्र रोग सर्दी जुकाम, खांसी बुखार, दर्द, दस्त आदि सिर्फ ये सूचना देते है कि शरीर में संचित विकार शरीर के बरदाश्त करने की सहनीय क्षमता (threshold power) से अधिक हो गया। यह खतरे की घंटी (red signal) है। आहार, विहार एवं विचार के प्रति जाग जाओ। उसमें सुधार करों। दो हजार वर्ष पूर्व तीव्र रोगों का सम्राट "ज्वर एवं बुखार" के लिए हिप्पोक्रेटस का वक्तव्य "Give me the power to create a fever and i shall cure any disease" मनन करने योग्य है। यदि तीव्र रोगों को प्रकृति के पंच महाभूत चिकित्सा आहार उपवासादि द्वारा शरीर के विकार को निकाल दिया जाता है तो भविष्य में जीर्ण एवं मारक घातक रोग होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

स्वास्थ्य यानि स्व में स्थित वहीं हो सकता है जो शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक एवं आत्मिक दृष्टि से सशक्त समृद्ध शक्तिशाली एवं संतुलित हो। प्रसिद्ध विश्व कोष वेबस्टर कॉलिजियेट डिक्शनरी में स्वास्थ्य हैल्थ की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है।

"The state of being hale and sound in body mind or sow especially from physical disease or pain" यानि शरीर मन या आत्मा के मध्य समन्वय, सशक्त, शक्तिशाली सुव्यवस्थित स्थिति ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की स्थिति में किसी प्रकार शारीरिक रोग एवं पीडा नहीं होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार "state of complete physical, mental, social well being and not merely the absence of disease or infirnity" अर्थात सिर्फ बीमारी, शारीरिक एवं मानसिक निर्बलता से मुक्ति ही स्वास्थ्य नही है। बल्कि व्यक्ति की शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर शक्तिशाली जीवन यापन एवं संतुलन ही स्वास्थ्य है।

आयुर्वेद के अनुसार सम दोष: सम अग्निश्च: सम धातु मलक्रिप:। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यामि धीयत।। अर्थात शरीर में सभी दोष, 13 अग्नि, सप्त धातु, 3 प्रकार के मल आदि समयानि उदासीन एवं संतुलन में होते है सभी इन्द्रियां मन चित्र एवं आत्मा साम्यावस्था में रहकर प्रसन्न एवं अपने-अपने कार्य करते है आनन्दित रहते है। शरीर की इस स्थिति को स्वास्थ्य कहते है। धर्मार्थ काम मोक्षणामारोग्यं मूल मूत्तमम यानि स्वस्थ होने पर ही जीवन के चार अनिवार्य कर्म धर्म अर्थ काम और मोक्ष सफलता से सम्पादित होते है। और इसके लिए आयुर्वेद आयु का ज्ञान कराता है तदायुर्वेद तीत्यायुर्वेद: हमारी आयु कैसी होनी चाहिए इसे भी चरक ने वर्णन किया है - हिताहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम

हितकारी अहित कारी, सुखमय आयु दु:ख मय आयु के लिए किस प्रकार आहार विहार विचार एवं व्यवहार यानि पथ्य होना चाहिए। इन सबका ज्ञान देने वाला एवं पथ प्रशस्त करने वाला प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद ही है।

अत: प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद आरोग्य का शाश्वत स्वंय सिद्ध सनातन अनादि एवं अनन्त विज्ञान है इनका अर्न्तुसम्बन्ध भी अनादि और सनातन शाश्वत है इनके सत्य प्रभाव से व्यक्ति

रोगमुक्त होकर अपने सही स्वभाव स्वास्थ्य में स्थित हो जाता है। गलत मान्यता और दुश्चिन्ताओं से मुक्त होकर आरोग्य के नित्यभाव में लीन रहते हुए अपने सही स्वभाव को प्राप्त होता है।

सोय·मायुर्वेद: शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात।

स्वभावसंसिहलक्षणत्वात भावस्वभावनित्यत्वाच्च।।

प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद जीवनोंपयोगी वनौषधियों जैसे आंवला, धश्तकुमारी, अश्वगंधा, अर्जुन, अशोक, हरड़, हल्दी, चिरायत, कुटकी आदि का प्रयोग किया जाता है किन्तु कुचलाख् धतूरा, भांगादि विषैले, नशे वाले औषधियों का प्रयोग उचित नहीं है। रसरसायन एवं धात्विक भस्मादि चिकित्सा का प्रयोग वर्णित है। आयुर्वेद का मूल सिद्धान्त् दोष प्रशमनं पर प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य करती हैं। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद पंचकर्म एवं योग के षट्कर्म का अच्छा समन्वय है। प्राकृतिक चिकित्सा में पंचभूतात्मक मिट्टी पानी धूप आकाश हवा आहार एवं प्रकृति मित्र (nature friendly) निरापद औषधि प्राकृतिक चिकित्सा को समग्र रूप से सक्षम एवं सशक्त बनाती है।

सारांश

प्रस्तुत इकाई में योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म, रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना, रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस आदि का स्वास्थ्य की दृष्टि से संक्षेप में वर्णन किया गया है।

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य - आचार्य बाल कृष्णsम दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मंदिट्रस्ट पतंजलियोग पीठ, हरिद्वार
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज मां सीता स्मृ तिप्रकाश न माला 3 3 /153 मानसरोवर जयपुर
- रोगों की सही चिकित्सा - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज डॉ मंजु नीरज जयपुर बुक हाउस, जयपुर
- आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान - वैद्य हरीदास श्री धर कस्तुरे श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - सम्पादक डॉ राकेश निन्दक डॉ गंगा प्रसाद गौड "नाहर" आरोग्य सेवा प्रकाशन उमेश पार्क मोडीस
- मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य I, II & III भाग - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज पापुलर बुक डिपो, जयपुर
- change your brain change your body- daniel G. A. men m.d. three rivers press.com

- गीता प्रबोधनी - स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस गोरखपुर
- आर्य योग प्रदीपिका ;पतन्जल योग दर्शनद्ध - स्वामी ब्रह्ममूनि परिवाजक सत्यधर्म प्रकाशन, रोहतक लेखक - डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

6.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा, षट्कर्म एवं पंचकर्म का रोगहरण में कैसे प्रयोग किया जाता है?
4. चिकित्सा में आत्मानुशासन की कितनी आवश्यकता है? प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा के सन्दर्भ में समझाइये।
5. स्वस्थ एवं सुखी जीवन जीने के लिए चिकित्सा का महत्व समझाइये।

इकाई - 7

विजातीय द्रव्य का सिद्धांत एवं रोग के कारण

इकाई की संरचना

7.1 उद्देश्य

7.2 विजातीय द्रव्य का अर्थ व सिद्धान्त

7.3 विजातीय द्रव्य से बचाव के बिन्दु

7.4 रोग के कारण

7.5 रोग का वर्गीकरण

7.6 रोग की चिकित्सा हेतु मुख्य बिन्दु

7.7 बोधात्मक प्रश्नावली

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 उद्देश्य

विजातीय द्रव्य शरीर में जाना सांसारिक गतिविधियों की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया दिन प्रतिदिन के खानपान, रहन-सहन, कार्य क्षेत्र का वातावरण, अपने व परिवार-रिश्तेदारों के संबंधों का नकारात्मक प्रभाव तथा मुख्य रूप से हम कह सकते हैं कि जीवन शैली के बदलाव के अप्राकृतिक पहलु के द्वारा शरीर में कुछ अनावश्यक व अहितकारी द्रव्यों का जन्म देती हैं, जिनको हम विजातीय द्रव्य के नाम से जानते हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था का जो भी रूप नाम हैं वही विजातीय द्रव्य है। इसी अध्ययन को विस्तार से समझाने, विजातीय द्रव्य कब रोग के रूप में अर्थात् लक्षण बन कर सामने आते हैं।

ये लक्षण शरीर के किस अंग विशेष में आते हैं। इसी अवलोकन के आधार पर दूसरी पद्धतियां रोग का नामकरण करती हैं। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में ''एक ही रोग एक ही कारण तथा एक ही उपचार'' का सिद्धान्त पर सब कुछ आधारित है। इस कारण रोग के मूल विजातीय द्रव्य का यहां अध्ययन करना आवश्यक है। यह विजातीय द्रव्य - मल - मूत्र -पसीना, ईर्ष्याद्वेश, जुदाई, लोभ, हिंसा के रूप में शरीर में आकार रोग उत्पन्न करते हैं। रोग के शरीर में आने के कारण क्या हैं? रोगों के शरीर में प्रवेश करने के साधन अथवा प्रकार कितने हैं? इस जानकारी का अध्ययन करके हम समझ पाएगे कि विजातीय द्रव्य तथा रोगों के कारणों से किस प्रकार दूर रह सकते हैं। इस प्रकार अच्छे स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होने के लिए हमें रोगों के प्रकार समझ कर उनकी अनुपस्थिति की स्थिति कैसे बन सकती हैं अर्थात् स्वास्थ्य का आधार ही रोगों के उन्मूलन से प्रारम्भ होता है। आइये इसका पूर्ण अध्ययन हेतु आगे विवेचन को समझने का प्रयास करें।

7.2 विजातीय द्रव्य का अर्थ व सिद्धान्त

मानव शरीर में खान-पान रहन-सहन वातावरण इत्यादि का प्रभाव सर्वथा आता जाता रहता है। उसी के फल स्वरूप में खान-पान के द्वारा एवं श्वाकसलेने की प्रक्रिया में किसी प्रकार की भी त्रुटि पाई जाती है तो वही बुद्धि हमारे शरीर में प्रविष्टा होके विजातीय द्रव्य के रूप में शरीर के किसी भी भाग को प्रभावित कर देती है। यह अवांछित द्रव्य शरीर के अन्य द्रव्यों से मल नहीं खाता, इस कारण शरीर के विभिन्न भागों में रोग आने के लक्षण दिखाई देने लगते है। जिससे हमें रोग का आने का संकेत भी प्राप्त होता है। यही विजातीय द्रव्य दिन प्रतिदिन की क्रियाओं में स्वाभाविक रूप से शरीर में जमा होते रहते है। और शरीर के विभिन्न संस्थान उनको मल, मूत्र, पसीना एवं श्वा स निष्का ीसद्वारा शरीर से बाहर निकालते रहते हैं जब इसके निकालने के सभी मार्ग अवरूद्ध हो जाते है। तभी रोगों की उपस्थिति बन जाती है। अर्थात् यही विजातीय द्रव्य शरीर में जमा होकर हरकत में आ जाते है और उपद्रव शुरू कर देते है। विजातीय द्रव्य का शरीर में जिस भी अवयव पर प्रभाव पड़ता है। उसी अवयव (अंग) के नाम से रोग का नाम दिया जाता है। उपरोक्त जानकारी से पता चलता है कि केवल गलत खान पान से ही विजातीय द्रव्य शरीर में नहीं जाते है। अपितु अन्य मार्ग से भी ये शरीर में प्रविष्ट करते है जिनमें से अप्राकृतिक जीवन शैली, प्रदूषण या गन्दे स्थान पर श्वा स लेने से अथवा किसी जहरीले कीटाणु के काट लेने से या फिर अत्यधिक अनियमित दवाओं के सेवन से मानसिक कुविचार अनियमित भोग विलास, आराम दायक या आलस्य पूर्ण दिनचर्या इत्यादि से भी विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होते रहते है। इन्ही विजातीय द्रव्य को आयुर्वेद में दोष कहा जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति विजातीय द्रव्य की ही सर्वोत्तम चिकित्सा है।

प्राय: यह माना जाता है कि विजातीय द्रव्य कमजोर व्यक्ति में जल्दी पनपते है। किन्तु यह कमजोर व्यक्ति शरीर में कमजोर ना होकर उसकी जीवनी शक्ति का कमजोर होना पाया जाता है। जब शरीर में जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है उस अवस्था में शरीर से विजातीय द्रव्य का निष्कानसन्प्रभावित होता है। अर्थात् शक्ति हीन शरीर में जमा हुये कचरें को बाहर निकालकर शरीर को निर्मल न हो बना सकता। अत: विजातीय द्रव्यों के कारण शारीरिक सौन्द्रर्य एवं आकर्षण व बनावट प्रभावित होती है, स्वभाव चिड़चिडा हो जाता है बात बात पर क्रोध उमड़ता है भूख मर जाती है शरीर थुल थुल हो जाता है। अत: उसकी नीद हराम हो जाती है। इन सबके पीछे रात्रि में जागना, चिंताओं से घिरे रहना, किसी अति प्रिय को भूल न पाना, रात की शिफ्ट में नौकरी करना, शारीरिक क्षमता बैठाने के लिये औषधियों का प्रयोग करना, श्रमव्हीन जीवन चर्या व्याधियां। वाग भट ने भी कहा है - ''दोष ऐवहि सर्वेषाम रोगाणाम कर्ण में अर्थात सभी रोगों का कारण एक ही है जिसे दोष या विजातीय द्रव्य कहा जाता है। विजातीय द्रव्य तो एक ही है लेकिन उससे पैदा होने वाले लक्षण एवं रोग अनेकों पैदा हो जाते है। अर्थात् रोग एक होते हुये भी उसके रूप भिन्न - भिन्न पाये जाते है यह एक बहुत बड़ा तथ्य सामने आता है कि विभिन्न रोगों को उत्पति में कीटाणु नहीं होते अपितु विजातीय द्रव्य शरीर में भरे होने से उनमें रोग के कीटाणु पनपते है अथार्थ बाहरी वातावरण के कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्टब होने से तब तक रोग नहीं पाते जब तक शरीर में उनको पनपते के लिए गन्दगी नहीं मिल जाती। यदि शरीर में गन्दगी नही है तो शरीर की जीवनी शक्ति कुछ कीटाणुओं के शरीर में आने का प्रभाव नष्ट कर सकती है अत: हम कह सकते है कि बाहरी कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट होने से तब तक रोग नही आते जब तक शरीर में उनको पनपने के लिए गन्दगी नहीं मिल जाती। यदि शरीर में गन्दगी नहीं

हैं तो शरीर में आने का प्रभाव नष्ट कर सकती है। अत: हम कह सकते है कि बाहरी कीटाणु शरीर में प्रविष्ट होकर भी शरीर में रोग पैदा नहीं कर सकते। जब तक जीवनी शक्ति प्रबल है। यही जीवनी शक्ति प्रत्येक शरीर में अलग अलग पायी जा रही है। अर्थात् किसी भी जीवनी शक्ति बहुत अच्छी होती है किसी की कम होती है इसी कारण हमारे शरीर के चारों ओर कीटाणु होने से कुछ को रोग होते है तथा अन्य को नहीं क्योंकि जिनकी जीवनी शक्ति प्रबल है वो कीटाणुओं के शरीर में आते ही वे असर कर देती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य ही रोगों का प्रमुख कारण है तथा तीव्र रोगों का जन्मदाता है। इसी के कारण आज विश्व में एक प्राकृतिक जीवन शैली का प्रभाव चारों और छाया हुआ है केन्सर, हृदय, रोग, उच्च रक्त चाप, मधुमेह, जोड़ों के दर्द व एड्स जैसी दुखद एवं जानलेवा बीमारियों का समाना करना पड़ रहा है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त व नियम आज भी अचूक सिद्ध होते जा रहे है क्योंकि मानव शरीर छित, जल, पावक, गगन, समीरा रूपी महाभूत की देने है। इन्हीं को उपयोगी व गुणवान मानते हुए प्राकृतिक चिकित्सा का अस्तित्व सशक्त है तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियां मनुष्य कशित होने के कारण कुछ चीजों का छोड़ के शेष रोगों में मिथक बनती जा रही है। निष्कर्ष के तौर पर जीवन शैली एवं प्राकृतिक चिकित्सा के नियम व सिद्धान्त ही विजातीय द्रव्य से बचाकर स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है अन्यथा रोगी से पीड़ित रहना निश्चित होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य को शरीर में पैदा होने से रोकना है तो अहितकर भोजन जो निम्न प्रकार है।

7.3 विजातीय द्रव्य से बचाव के बिन्दु

1 संयुक्त भोजन - जब एक ही समय पर विभिन्न खाद्य द्रव्यों का समावेश करके अर्थात् रोटी, दाल, चावल के साथ खीर दूध अचार घी इत्यादि का सेवन संयुक्त रूप से नहीं करना चाहिए।

2 मासाहारी भोजन

3 मिर्च मसाले व तला भुना भोजन

7 वासी व सड़ा गला भोजन

5 मृतभोजन - इस श्रेणी में चाय, केक, बिस्किट सफेद, चीनी, मिठाइयां नशीली व उत्तेजक खाद्य वस्तुऐं म्रत या निश्प्राण भोजन के अन्तर्गत आती है। इससे लाभ की अपेक्षा विजातीय द्रव्य पैदा होते है।

6 वेमेल भोजन - वे मेल अर्थात् विपरीत द्रव्यों को मिश्रित करके ग्रहण करने से वह भोजन नहीं विष बन जाता है। उदाहरण के लिए दाल-भात के साथ मांस का सेवन अथवा घी व शहद का बराबर बराबर मात्रा में खाने से मृत्युङ्िक हो सकती है।

इन सभी वे मेल द्रव्यों के सेवन से शरीर में विजातीय द्रव्य पनपते है संक्षेप में हम कह सकते हैं विजातीय द्र्रव्य रूपी रोग के स्वरूप को दूर रखना चाहते है तो उपरोक्त का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

रोग का तात्पर्य है शरीर की तथा मन की विकार युक्त अवस्था रोग कोई बाहरी तत्व नहीं है जो शरीर पर आक्रमण करके विकार युक्त बनने के लिए बाध्य करे रोग शरीर के आंत्रिक भाग में विजातीय द्रव्यों की उपस्थिति का नाम है। शरीर के कष्ट पूर्ण लक्षणों का अथवा पीड़ा युक्त लक्षणों को दबाते रहने को डॉ. एलेक्सिस ने (कश्त्रिम स्वास्थ्य) का नाम दिया है ऐसे लक्षणों को दबाकर रहने वाला व्यक्ति पीडामय से सदा भयभीत रहता है इसी लिए वह कभी भी रोग मुक्त नहीं हो पाता अर्थात् भय से रहित व्यक्ति ही स्वस्थ हो सकता है।

डॉ. जैसमीमसर गेहमन के अनुसार स्वास्थ्य परिवर्तित अवस्था को ही रोग कहते है शारीरिक धर्म अथवा स्वास्थ्य के विरूद्ध आचरण करना अनिश्कारी मनोवश्तियों का असंगत प्रयोग अहितकर चिन्तन इत्यादि ही रोग का कारण होते हैं। प्रकृति एवं प्राकृतिक नियमों का पालन न करना हा रोगों को जन्म देता है।

रोग शरीर में कही भी किसी न किसी अवस्था में छिपा रहता है उस अवस्था में उसका कोई आकार या सकल नहीं पहचानी जा सकती लेकिन जब वह विकराल रूप धारण कर निकलने के लिए अपना रूप बदलता है त बवह आकार या नाम के रूप में पहचाना जा सकता है इन्ही नामों में से कुछ नाम जैसे चेचेक, बुखार, दस्त, फोड़े, उल्टी, कमर दर्द, सिर दर्द इत्यादि के रूप में देखने को मिलते है अर्थात् शरीर में संचित मल कभी ना कभी इन रूपों की दो अवस्थाएं अथवा रूप में जो जो रोगों के विभिन्न लक्षणों के आने से पहले की अवस्था है दूसरा साकार रूप जो रोगों के विभिन्न नामों से जाने जाते हैं अर्थात विभिन्न अंगों तथा विभिन्न रूप के रूप् से जाने जाते हैं अर्थात् विभिन्न अंगों तथा विभिन्न रूप के रूप् में देखे जात सकते हैं किसी का भी शरीर देखने से स्वस्थ दिखाई पड़ सकता है। लेकिन यह आवश्यक नही कि वह व्यक्ति वास्तव में भी स्वस्थ क्योंकि रोग के शुरू होने अर्थात् विजातीय द्रव्य का एकत्र होने उसके पनपने और उसके बाद उसके निकलने में काफी समय लग जाता है जब तक वह शरीर के अन्दर निराकार रूप में पनप रहा था तब तक बाहर से व्यक्ति स्वस्थ दिखाई देता है। परन्तु अन्दर रोग बढता जा रहा होता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि रोग अपना सामने आने में कई बार बहुत समय लग जाता है लेकिन ऐसी अवस्था बहुत भयानक व प्राण घातक सिद्ध होती है।

वर्शों के अनियमित खान-पान, रहन-सहन, प्रतिकूल जलवायु इत्यादि के कारण शरीर में विजातीय द्रव्य रूपी जहर बूंद बूंद करके बढ़ता रहता है बाद में यही बूद बीज का काम करके एक विषाल पेड रूपी रोग को जन्म देती है। कभी कभी कुछ बूंदों के जमा होते ही तीव्र रोग आ जाते है जिससे विजातीय द्रव्य की वह बूंद जो जहर रूपी बीज बनने जा रही थी वह तीव्र रोग के द्वारा बाहर निकालती है। इस प्रकार यदि हम ये कहें कि तीव्र रोग हमें स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए आते है तो बड़ा अटपटा सा लगता है कि रोग से स्वास्थ्य कैसे मिल सकता है परन्तु यह बात पूर्णत: सत प्रतिशत ठीक है क्योंकि विजातीय द्रव्य के श्रीर में बडा रोग आने से बचा जा सकता है। अब बात यह उठती है कि वह विजातीय द्रव्य रूपी जहर शरीर में क्यों आया। जब भी हम प्रकृति से दूर होकर नियमों की परवा न करके नियम विरूद्ध आहार - विहार लेते है वही इस जहर के लिए जिम्मेदार होता है स्वास्थ्य सिद्धान्तों को अनदेखी करना और अपने विचारों को संयमित न करना इसका मुख्य कारण है अग्रेज कवि मिल्टन के अनुसार म नही मनुष्य के रोगों का कारण है क्योंकि रोग सबसे मन में ही पैदा होते है फिर शरीर पर लक्षण दिखाई पड़ते है।

7.4 रोग के कारण

रोग का मुख्य कारण तो प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र के नियमों का उल्लघंन है पूरी दुनिया में रोग जीवन शैली गलत होने के कारण व्यापक रूप ले रहे है जेकिन इसका अभिप्राय: ये नहीं है कि सभी को बीमार पड़ना अनिवार्य है यदि निम्न बातों को अथवा स्वास्थ्य नाशक आदतों को ध्यान में रखें तो हम रोगों से बच सकते है ऐसी ही रोग कारक आदतें निम्न प्रकार है -

1 रोगों का भय - महामारी, हेजा, प्लेग, डेगूं इत्यादि रोगों से उतनी ज्यादा मौते नही होती जितनी की रोगी उस रोग के भय से मन में भय पैदा कर लेता है और मृत्युतको प्राप्त होता है चरक के अनुसार भी काल बडी इन्द्रीय विषयम आदि के मिथ्या, योग, अयोग, और अतियोग होना भी शारीरिक मानसिक व्याधियों का कारण है।

2 अप्राकृतिक जीवन यापन - डॉ. ए. जुस्ट ने कहा है कि बहुत लोग सोचते है कि अकाल मृत्यु तथा रोग भगवान की देन है किन्तु ऐसा बिलकुल नहीं है इसका मुख्य कारण तो हमारी जीवन शैली के मुख्य घटक ही है जो इस प्रकार है -

1 बिना चबाये भोजन करना

2 बिना भूख के भोजन करना

3 दिन में बार-बार बिना समय खाते रहना

4 एक बार के भोजन में ठूस कर खा लेना

5 संयोग विरूद्ध आहार का सेवन करना

6 खाद्यय पदार्थों को तेल घी में गलत ढंग से पकाना

7 छोटी - छोटी श्वासें लेना

8 व्यायाम व शारीरिक श्रम का अभाव होना

9 वे ढंग से टाइट तंग व मोटे कपड़ों को पहनना।

10 अत्यधिक सौन्दर्य प्रसाधनों को शरीर पर लगाना

11 चलने बैठने व काम करने के ढंग में शारीरिक स्थिति का गलत प्रयोग करना

12 लालच व अत्यधिक क्रोध व ईर्ष्याजैसी मानसिक स्वास्थ्य खराब करने वाली प्रवश्त्तियों से ग्रस्त होना।

13 परिवार व समाज के प्रति तनाव पूर्ण रिश्ते से दैनिक कार्यों में समस्याऐं बढ़ा लेना या रूचि न लेना।

3 प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास - शरीर में दिन प्रतिदिन के धूल व गलत आहार-विहार से जो विजातीय द्रव्य शरीर में आते है उनको बाहर करने का काकम जीवनी शक्ति ही करती है जिसको प्रतिरोधक क्षमता भी कहा जा है यही जीवनी शक्ति5 यदि कमजोर हो जाती है तो वह विजातीय द्रव्य को बाहर निकलने में असमर्थ हो जाती है जिसके कारण स्वभव चिडचिडा होना भूख न लगना,

ठहक से नींद न आना, चेहरा निस्तेज होना इत्यादि लक्षणों के फलस्वरूप रोगों का आना जाना बना रहता है इसलिए अत्यधिक औषधियों का सेवन रात में कम करना या जागना तनाव इत्यादि से घिरे रहना शक्ति से अधिक कार्य करने से बचना बहुत जरूरी है क्योंकि ये सभी चीजें प्रतिरोधक क्षमता को घटाती है।

4 पैत्रिक परम्परा - वंश के अनुसार माता पिता के खून के प्रभाव से अथवा गर्भाधान के समय रज और वीर्य माता पिता के दोष सन्तान में आना स्वभाविक है अत: ऐसे परम्परा एवं संस्कारों से प्रभावित व्यक्ति को प्रारम्भ से ही अपने शरीर में विजातीय द्रव्य पैदा होने से पहले ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बाहार करते रहने का प्रयास करना चाहिए।

5गलत उपचार - विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त के अनुसार शरीर में संचित अनावश्यक मल जमा होना ही रोगों का मुख्य कारण है इसलिए इस मल का उल्टी दस्त के मुख्य कारण है इसलिए उसे रोकने के लिए दबा रूपी विष का प्रयोग करना गलत उपचार की श्रेणी में आता है क्योंकि दुशित मल बाहर निकालने की जीवन शक्ति का प्रयास निष्फल करना वह भी औषधयों के द्वारा गलत है इससे जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है तथा वह आगे आने वाले समय के लिए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में असफल हो जाती है।

6बाहरी दुर्घटना - किसी भी चोट या दुर्घटना के कारण अचानक शल्य चिकित्सा करनी पडे अथवा हड्डी टूट जाने के कारण रोग की अवस्था बन जाना इसके अन्तर्गत आता है।

7 कीटाणुओं के कारण रोग - प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार रोग उत्पति में कीटाणु कभी भी प्रारंभिक कारण नहीं बनते अपितु शरीर में जमा मल में कीटाणु पनपते है अर्थात रोग का प्राथमिक कारण प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार विजातीय द्रव्य ही है उसके बाद कीटाणु रोग को बढ़ाने में सहायक बन सकते है क्योंकि जीवाणु मल को खाकर मल को सड़ाने का काम करते है और उसी सडन से अपनी संख्या में वृद्धि करते है। इसी कारण महामारी के दौरान रोग फैलने की गति बहुत तेज हो जाती है क्योंकि अधिकतर लोगों के शरीर में मल संचित रहता है जिसमें बाहिरी कीटाणु प्रवेश करके जल्दी पनपने लगते है।

7.5 रोग का वर्गीकरण

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार व्यक्ति आध्यात्मिक मानसिक सामाजिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ न होने की स्थिति में रोगी कहलाता है। अर्थात ऊपर बताई गयी चार अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में भी स्वस्थ न होना रोगी बना देता है। अत: रोग को उनके वर्गीकरण अनुसार समझने के लिए भारतीय शास्त्रों के अनुसार औधिदैविक, आधि दैहिक और आधि भौतिक ये तीन प्रकार के वर्गीकरणों की व्याख्या है जिसमें कुछ व्याधियां दैविक प्रकोप अथवा भाग्य से उत्पन्न होती है तो कुछ हमारे गलत खान-पान से होती है और तीसरे प्रकार की व्याधि सांप या किसी जानकवर अथवा भूत प्रेत की पीडाओं से होती है उपरोक्त विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार रोगों के चार भाग का अध्ययन हम निम्न प्रकार से कह रहे है -

1आध्यात्मिक रोग - जिस प्रकार आत्मा व शरीर दो अलग अलग जीचें है इस कारण किसी एक में भी रोग आने से उसका प्रभाव दूसरे पर आना स्वाभाविक है शरीर, मन और आत्मा तीनों किसी न किसी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए है लेकिन उन तीनों के अनुसार अलग अलग है उदाहरण के लिए

त्यार किसी शरीर से नहीं किया जा उसकी आत्मा अर्थात् उसके अच्छे व्यवहार अच्छी आदतों को ही पसन्द किया जाता है न कि उसके शरीर के आकर्शक को किसी व्यक्ति के शरीर को अच्छे बुरे के संज्ञा उसकी आत्मा द्वारा किये गये अच्छे कार्यों पर आधारित होती है उसी प्रकार प्रभु ने अविश्वास करना एक आध्यात्मिक रोग का स्वरूप माना जाता है ऐसे रोगों की चिकित्सा के लिए महात्मा गांधी जी ने पांच तत्व की चिकित्सा के साथ साथ छटा तत्व रामनाम आवश्यक बताया है चिकित्सा में राम नाम तत्व को हटाकर पंच महा भूत चिकित्सा द्वारा रोगों को ठीक करना असम्भव है अत: हम कह सकते है आध्यात्मिकता का अभाव रोग उत्पति का कारक बनता है।

2मानसिक रोग - मानसिक रोग इतनी छोटी छोटी बातों से उत्पन्न हो जाते है जिनकी हम दिन प्रतिदिन को गतिविधियों में अनदेखी करते रहते है। यदि थोडा सा भी ध्यान और विवके रखा जाय तो उनसे बचना जितना आसान हो जाता है उतना ही इनमें लापरवाही करना भयानक एवं अनिश्ठकारी बन जाता है मानसिक रोग शारीरिक रोगों से ज्यादा खतरनाक होते है इस तरह की व्याधियों में निराशा, अहंकार, लोभ, चिन्ता, ईर्ष्या;घ्रृणा, द्वेश अहिंसा, भय, अज्ञान स्वार्थ अविश्वास बहम पागलपन आदि रोग आते है लुई कुने के अनुसार विजातीय द्रव्य की मात्रा बढकर पीठ में होते हुए रीड की हड्डी को प्रभावित करते हुए दियांग की नाजुक ज्ञान इन्द्रियों जकड लेता है क्योंकि इसका मुख्य प्रभाव सुषुम्नाक्नाडी पर अधिक आता है यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों में अधिक आता है क्योंकि पुरूष शराब, सिगरेट इत्यादि संयम नहीं कर पाते है साथ ही साथ बचपन से ही आर्थिक अभाव उदास घर का वातावरण वेमेल विवाह अर्मानों का पूरा न होना लम्बी बीमारी अथवा बार बार बीमार होना अत्यधिक काम करना बच्चों का माता-पिता के प्रति अथवा माता पिता का बच्चों के प्रति लगाव कम होने से भी बच्चे आने वाले समय में चोर, अपराधी, बतमीज, क्रोधी और झूठे आसानी से बन जाते है। मानसिक रोगों को शरीर के स्नायु के मार्गों में बादा बनते हुए शरीर के तन्तुओं को नष्ट कर देते है। जिससे शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कमजोर हो जाती है और शरीर से मल रूपी विजातीय द्रव्य पूरी तरह से नहीं निकाल पाते विदेशी मनोवैज्ञानिकों ने लक्वा रक्त की कमी टीबी जैसे जान लेवा रोगों में 9 0 प्रतिशत भाग मनोविकार से शुरू होता है एक उदाहरण से मन में भय होने से कैसे रोग आते है यह आसानी से समझा जा सकता है एक बार रेडियों पर शेर के गर्जने की आवाज सुनकर एक बच्चा बेहाश होकर जमीन पर गिर गया दो घण्टे बाद जब उस बच्चे को होश आया तो देखा कि उसे दस्त व उल्टियां शुरू हो गयी इससे स्पष्ट हो जाता है कि मन में भय आने से किस प्रकार विभिन्न बीमारियां आसानी से आ जाती है ऐसे बहुत से उदाहरण जैसे भूत प्रेत का भय तथा रस्सी को सांप समझ लेने का भय व्यक्ति को वर्शो तक बीमार बनाये रखता है इसी प्रकार चिन्ता आज का प्रमुख मानसिक रोग है जो भय से उत्पन्न होती है चिंता के द्वारा खून में रासायनिक परिर्वतन होने शुरू हो जाते है जिससे रक्त में विकार आ करके रक्त सूखना शुरू हो जाता है और शरीर कमजोर पकडकर क्रान्तिहीन हो जाता है और यह अवस्था गहरी व लम्बी हो जाय तो मनुष्य चिन्ता से चिता तक पहुंच जाता है ऐसे रोगियों के मूह गाल पिचक करके रात को बार बार नीद टूट जाती है, और उसका पाचन खराब हो जाता है यह वह कीडा है जो शरीर रूपी पेड को जड़ से खोखला कर देता है जो शरीर रूपी पेड को जड से खोखला कर देता है एक शोध के अनुसार मानसिक असन्तुलन से विशेषकर ईर्ष्या ो सेखून में जहर बन जाता है जो बात या वायु रोग में परिवर्तित हो जाता है इससे स्नायु प्रणाली सिकुड जाती है जोड जकड जाते है।

जिससे खून का प्रवाह धीमा होकर विभिन्न अंगों को सुन कर देता है ठीक इसी तरह से मोह और वासना जिसको हम गलती से प्रेम कहते है से चिडचिडा पन हीन भावना इत्यादि रोग शरीर को धुन की तरह लग जाते है इसलिए उग्रता लाना उत्तेजित होना हर बात में बहस करना दूसरे को डरा धमका कर अपनी बात ऊपर रखना तथा अपनी इच्छा की पूर्ति करना दूसरों पर अधिकार जमाना इत्यादि से दूर रहना ही मानसिक रोगों को बचाव है मन चंचल होने पर एक गिलास ठंडा पानी पीने अथवा रामनाम का जाप कर ले या अपने को वहां से हटाकर दूसरी जगह ले जायें।

3 शारीरिक रोग - शारीरिक रोगों में दो प्रकार के रोग माने जाते हैं एक तीव्र रोग जो प्रकट होने के साथ साथ भी उग्र रूप धारण कर लेते हैं उदाहरण के लिए हैजा, जुकाम, दस्त, उल्टी, सिस दर्द, आदि इसके अन्तर्गत आते है डॉ. लिण्डल्हार के अनुसार इसकी पांच अवस्थायें बताई गयी है पहली अवस्था में शरीर के किसी भाग में भर जाने से उत्तेजना के द्वारा धीरे धीरे या कभी कभी जल्दी एक वि शेश रूप धारण कर लेते है दूसरी अवस्था में रोग का वह रूप बढ कर कष्ट कारक हो जाता है रोगी सूजन बुखार इत्यादि से कमजोरी महसूस करता है तीसरी अवस्था में रोग का रूप बढ कर कष्टअ कारक हो जाता है रोगी सूजन बुखार इत्यादि से कमजोरी महसूस करता है तीसरी अवस्था में रोग से प्रभावित स्थान के कण नष्ट होने से घाव बन जाता है मवाद पड जाती है तथा रक्त बहना शुरू हो जाता है रोग की यही जोखिम की दशा होती है इस घडी को पार करने पर शरीर रोग मुक्त होना प्रारम्भ करता है उसी को चौथी अवस्था भी कहते है जिसमें रोग खत्म होना शुरू होता है व उसके लक्षण एक एक करके कम होते जाते है पांचवे व अंतिम अवस्था में रोग के मूल कारण विजातीय द्रव्य पूरी तरह से शरीर से बाहर होने शुरू हो जाते है और शरीर पुन: अपने स्वाभाविक रूप में आना शुरू हो जाते है।

2. जीर्ण (पुराने रोग) - विजातीय द्रव्य तीव्र या उग्र होकर के निकलने के बजाय दवाओं से या किसी अन्य कारण से दबे रहेकर शरीर के भीतर भाग में बने रहते है जो लम्बे समय तक हल्का हल्का कष्ट् देते हुए शरीर में बने रहते है जिनको हम जीन रोग के नाम से पुकारते है ये रोग तीव्र रोगों के द्वारा विजातीय द्रव्यों को पूरी तरह निकालने में असमर्थ होने अथवा उनको निकालने में बाधा उत्पन्न होने से पैदा होते है उदाहरण के लिए बार बार बुखार होने पर उसको दवाओं से दवाते रहने से एक्समा रोग (टीवी) हो जाती है तथा बार बार जुकाम होने से एन्टीन बायोटिक्खाकर दबा देने से अस्थमा हो जाता है अर्थात श्वाजसकी बीमारी लग जाती है तीव्र रोगों में पीडा अधिक होती है लेकिन जीर्ण रोगों में पीडा कम हो करके ज्यादा अवधि तक बनी रहती है जिससे पूरा जीवन असहनीय व दुर्लभ हो जाता है और रोगी धैर्य खोकर के निराश हो जाता है ऐसे रोगों को दूर करने के लिए रोगी को चिकित्सक पर पूरा विश्वास करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार लेना चाहिए जिसके अन्तर्गत विभिन्न उपचारों के माध्यम से उसकी जीवनी शक्ति को मजबूत बनाना होता है तथा उसके बाद जीर्ण रोगों को उभाइ लाकर तीव्र रोग की स्थिति पैदा करते हुए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर रोग को ही नहीं उसकी मूल अवस्था को भी दूर कर दिया जाता है। लेकिन इसमें स्थिति भयानक होकर के खतरा पैदा कर सकती है। इस लिए ऐसे रोगों की चिकित्सा में थोड़ा टाइम अधिक लग जाता है परन्तु रोग जड़ से चला जाता है।

7.6 रोग की चिकित्सा हेतु मुख्य बिन्दु

1 **रामनाम -** इस चिकित्सा पद्धति में उपचार के साथ साथ रोग को दूर करने की इच्छा नियमों का पालन और पंच तत्व चिकित्सा के साथ साथ मन में ठीक होने का दृढ विश्वास ही चिकित्सा का रोग रहित प्रभाव मिल सकता है अर्थात रामनाम रूपी श्रद्धा व्यक्ति के अन्दर बसने वाली शक्ति में उत्पन्न होनी आव श्यक है यही शक्ति आरोग्य प्रदान करती है जिसको कोई जीवनी शक्ति कहता है कोई परमात्मा कोई अन्तर आत्मा कोई उपासना अथवा प्रार्थना कहता है।

2 **मन की सोच -** यह बात बिल्कुल सत्य है कि रोग की अवस्था में मन में जैसे विचार होगे उसी के अनुसार रोग का घटना या बढ़ना आधारित होता है इसलिए आवश्यक हैं रोगी ऐसे वातावरण में रहे जहां उसके मन में रोग के ठीक होने की अनुभूति अथवा क्रोध भय, चिन्ता इत्यादि वेग उत्पन्न ना होने दे सुधार के लक्षणों का अवलोकन करते हुए अपने विचारों को सकारात्मक रूप प्रदान करें।

3 **संयम -** जैसा कि कहा गया है कि अकेला परहेज सौ रोगों की एक मात्र दवा है साथ ही सर्वप्रथम उपचार भी है। जिसका दूसरा नाम संयम है इसके बिना बढिया से बढिया उपचार भी उतना अच्छा परिणाम नहीं दे सकता जितना संयम के परिणाम आते है महात्मा गांधी जी ने संयम ही जीवन को बिना नीम का घर बताया संयम ही सभी प्रकार के शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक रोगों की सबसे अच्छी औषधि अथवा उपचार है।

4 **सम्पूर्ण आराम (विश्राम) -** रोग की अवस्था में शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि शरीर में अनावश्यक ऐसे कार्यों में न लगाये जिससे जीवन शक्ति का कार्य वांछित हो क्योंकि उस समय जीवनी शक्ति का कार्य वाछित हो क्योंकि उस समय जीवनी शक्ति को एक मात्र काम विजातीय द्रव्य बाहर करना जरूरी होता है इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि रोगी पूरी तरह से आराम करें।

5 **मन प्रसन्न रखना -** जब तक भी हम प्रसन्न होते है तब हमारे शरीर में सिरेटोनिन का स्त्राव् बढ जाता है जिसके कारण शरीर का विद्युत प्रभा बढ़ जाता है इसी के द्वारा शरीर में ऊर्जा बढती है और सकारात्मक विचार आने प्रारम्भ हो जाते है।

6 **गहरी निद्रा -** प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार माना जाता है कि रोगी की आवश्यकता आहार से अधिक नीद की होती है रोगी को कम से कम 8 से 10 घण्टे गहरी नींद सोना आवश्यक है नीद के द्वारा उसका स्नायु मण्डल तनाव रहित होकर पूरे शरीर को तनाव मुक्त कर देता है।

7 **मनोरंजन -** रोग की अवस्था से निकलने के लिए सदा प्रसन्न होना आवश्यक है तथा बार बार रोग के बारे में सोचने से बचना आवश्यक हे जिसके लिए रोगी को मनोरंजन जैसे कुछ गतिविधियों से जुड़े रहने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य ही सभी रोगों की जननी है इसलिए इनको समझना उतना ही आवश्यक है जितना रोगों के आने के बाद उनका उपचार करना रोग न आने देना उतना कठिन काम नहीं है जितना कठिन काम रोग आने के बाद उनको ठीक करना है इसलिए समय समय पर विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने हेतु पंच महाभूत चिकित्सा की सहायता लेनी चाहिए यही एक मात्र ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो रोगों के बिना भी की जा सकती है अर्थात रोगो के बिना भी कि जा सकती है अर्थात रोग आये ही नही ऐसा केवल इसी पद्धति में संभव है। यद्यपि रोग आ भी जाये तो उसके कारणों व लक्षणों को समझते हुए रोग को दबाये बिना ठीक किया जा सकता है अर्थात जीवन शैली में बदलाव लाकर रोग के द्वारा आने से भी रोका जा सकता है। इसी चिकित्सा पद्धति के माध्यम से और जीवन शैली के परिवर्तन से शारीरिक - मानसिक आध्यात्मिक आदि सभी रो दूर किये जा सकते है।

7.7 बोधात्मक प्रश्नावली

1 विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त से आप क्या समझते है? विजातीय द्रव्य का रोग से क्या संबंध है।

2 रोग का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करते हुए विभिन्न रोगों का वर्गीकरण समझाइए?

3 रोग के कारण व लक्षण का वर्णन कीजिए?

4 रोग की चिकित्सा हेतु आवश्यक बिन्दुओं की व्याख्या करें?

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्राकृतिक आयुविर्ज्ञान - राकेश जिन्दल
- प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र - आचार्य शेशाद्रि स्वामिनाथन
- वृहद प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

इकाई - 8

रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के सूत्र एवं उपाय

इकाई संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ

8.3 प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्र एवं उपाय

8.4 चक्रों द्वारा प्रतिरक्षा बढाने के सूत्र

8.5 सारांश बोधात्मक प्रश्न

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

शरीर के भीतर एक ऐसा चिकित्सक बैठा होता है जो आने वाली रोगों की प्रारम्भिक चिकित्सा की लडाई अकेले लडता है। जिसको हम प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति के नाम से जानते है। यह सिस्टम पूरी तरह से स्वचालित है जो रोगों के शरीर मे प्रारम्भिक लक्षणों से अपना कार्य प्रारम्भ करते हुए शरीर मे विद्यमान खरबों कोशिकाओं को दिशा निर्देश दे कर रोग से लडने हेतु खड़े कर देती है। यह प्रणाली जितनी भी अधिक स्वस्थ होगी उतना ही हमारे शरीर और शरीर के अंग स्वस्थ होगें। इसलिए स्वास्थ्य के पहली आवश्यकता इस प्रतिरक्षा प्रणाली को जिसे हम स्वयं की हीलिंग पद्धति स्वयं का काम करने वाली मरम्मत प्रणाली इत्यादि के नाम से पुकारते है। यही मानव शरीर में क्षति पहुंचाने वाले बाहरी तत्वों से निपटने के लिए कुछ प्रक्रियाओं निरन्तर चलती रहती है इन्हीं प्रक्रियाओं के संचालन का कार्य जो शक्ति करती है उसी को प्रतिरोधात्मक अथवा जीवनी शक्ति कहते है जब शरीर की कोशिकायें किसी विशेष सूक्ष्म जीव के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेती है तो उसे बहुत समय तक भूलती नहीं है तो उसकी पहिचान तुरन्त कर लेने के पश्चात अपनी पहिचान की हुई कोशिकाओं के द्वारा उस बाहरी सूक्ष्म जीव से बचाव का कार्य प्रारम्भ कर देती है इस अध्याय में वर्णित प्रतिरोधात्मक क्षमता प्रतिक्रियाओं पर प्रभावकारी होने में समय अवश्य लग सकता है किन्तु आसानी से रोगकारी सूक्ष्म जीव से निपट लेती है इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते है कि यह मानव शरीर हर समय वातावरण में व्याप्त विभिन्न रोग उत्पन्न करने वाले घटकों से रक्षा करने हेतु तैयार रहता है यही सामान्यत: व्यक्ति के स्वास्थ्य से संबंधित सुरक्षा प्रणाली बन कर सदैव आने वाले रोगों से बचाव करने का कार्य करती है उसको हम एक उदाहरण के द्वारा भली भांति समझ सकते है जैसे- वातावरण में रोगों के कीटाणु सदा ही विद्यमान रहते है और वो शरीर में किसी न किसी रूप में प्रवेश भी करते है परन्तु रोग कुछ लोगों में आते है सब नहीं यही अन्तर प्रतिरोधक क्षमता के कम या अधिक होने का है।

आइये हम इस इकाई में प्रतिरोधक क्षमता को सुदश्ढ बनाने के उपायों की चर्चा करें।

8.1 उद्देश्य

- प्रतिरोधक क्षमता की शरीर में आवश्यकता का अध्ययन करना।
- प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्रों व उपायों का अध्ययन करना।
- चक्रों द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्र।

प्रतिरोधक क्षमता की स्वस्थ जीवन के लिए क्या आवश्यकता है व किस प्रकार भोजन, जल, वायु, प्राणायाम, ध्यान, व्यायाम, आसन, ब्रह्मचर्य, उपवास, विजातीय द्रव्य, सूर्य ऊर्जा, उत्तेजक, पदार्थों का निषेध आदि द्वारा प्रतिरोधक क्षमता को बढाया जा सकता है। इसका विस्तार से अध्ययन करने हेतु आगे चलते है।

8.2 प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ

शरीर के सारे अंग संक्रिय होकर के अपने सभी कार्य सुचारू रूप से करते रहें इसके लिए दो महत्वपूर्ण बिन्दु मिलते है

1. प्राण शक्ति
2. प्रतिरोधक क्षमता

प्राण शक्ति हमें जन्म से ही ईश्वर पद्वति होती है जो न भौतिक है न रासायनिक है यथार्थ न हम देख सकते है न हम माप सकते है यह शरीर के भीतर विद्यमान रहती है इसके बिना कोई भी शारीरिक क्रिया नहीं चलती है प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करने के लिए मानव की स्वंय की यम नियम की समझ आहार-विहार एवं जीवन शैली से जुडी विभिन्न क्रियाओं को समझते हुए इसे बढाया जा सकता है ये क्रियाऐं दिन प्रति दिन चलते रहने से जो शक्ति प्राप्त होती है उसको जीवनी शक्ति के नाम से जाना जाता है उदाहरण :- व्यक्ति प्रात: सोकर उठने के पश्चात एक विशेष प्रकार की शक्ति एवं ऊर्जा अपने शरीर में पाता है उसी ऊर्जा से वह अपने दिन भर के कार्यों को करते हुए रात होने पर कुछ थका हुआ शक्ति हीन महसूस करता है और सो जाता है सोते समय शारीरिक अंगों के काम कम करने से यह ऊर्जा दुबारा प्राप्त हो जाती है और सभी अंगों को आराम मिल जाता है प्राकृतिक चिकित्सा का आधार ही रोग प्रतिरोधक क्षमता ही बढाना है जो विभिन्न व्यक्तियों में अलग-2पाई जाती है। इसी कारण कुछ लोग 16 घण्टे काम करने के बाद भी ऊर्जावान दिखते है तो कुछ लोग 4 - 6 घण्टे के काम के बाद ही थक कर बैठ जाते है। इसी अन्तर को देखते हुए अपनी प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के लिए निम्न बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे जिससे हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली सुदृढ होकर के स्वास्थ्य प्रदान कर सके।

8.3 प्रतिरोधक क्षमता बढाने के सूत्र एवं उपाय

1. भोजन या खानपान

रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के हेतु भोजन का विशेष महत्व है रोग प्रतिरोधक क्षमता के बारे में यह एक खास बात है कि इसका निर्माण शरीर स्वयं ही कर लेता हैं। ऐसा नहीं होता की कोई चीज खाते ही सीधे प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो गया। इसलिए पौष्टिक व सन्तुलित भोजन की मदद से शरीर में भरपूर ऊर्जा शक्ति के विकास को तथा उसके द्वारा ही प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। यह तुरन्त का परिणाम नहीं बल्कि लम्बे समय से आहार के नियमों का पालन करने पर प्राप्त होती है।

यदि खान पान सही है तो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने के लिए किसी दवा या अतिरिक्त कोशिश करने की जरूरत नहीं है। आर्युवेद भी यही मानता है कि जो खाना आपके ओज में वृद्धि करता है रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने मे मददगार है। ओज तब बनता है जब खाना शरीर द्वारा भलि भांति पचाया जाता है। और इसी के द्वारा किसी भी व्यक्ति की अच्छी सेहत और रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास सम्भव हो पाता है। इसके विपरीत जो खाना पचने में मुश्किल तथा आम का निर्माण करता है वह शरीर मे विजातीय द्रव्यों को उत्पन्न कर शरीर को रोगी बनाता है। तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को घटाता है।

आहार सम्बन्धी विषय पर विचार करते समय यह ध्यान रहे कि इसका चयन प्रकृति के खिलाफ न हो। अर्थात सदैव देश, काल, वातावरण आदि का विचार करते हुए ही भोजन करना चाहिए। जैसे सर्दियों में बर्फ, आइस्क्रीम, आदि ठण्डी चीजों का परहेज करना चाहिए। इसके साथ-2कुछ आहार सम्बन्धित नियमों का भी पालन करना चाहिए। जैसे भोजन सदैव भूख से कम तथा हल्का व सुपाच्य ही होना चाहिए। भोजन के समय बात नहीं करनी चाहिए। प्रकृति से जिस रूप में हमें खाद्य पदार्थ प्राप्त हो उसी वास्तविक रूप में ही हमें इसका प्रयोग करना चाहिए। खाने में मिर्च मसालों का अत्यधिक प्रयोग करना, उन्हें बहुत अधिक पकाना या तलना, भोजन के साथ सलाद न लेना तथा समय पर भोजन न करना, जंक तथा फास्ट फूड अधिक खाना साथ ही शरीर में खनिज लवणों की पूर्ति हेतु अप्राकृतिक, दवाओं अर्थात फुड सप्लिमेंटस का प्रयोग करना आदि सभी धीरे-2हमारी प्रतिरोधी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। सभी खनिज लवण तथा पोषक तत्व हमें प्राकृतिक आहार से ही प्राप्त हो जाते है इनके लिए दवाओं की आवश्यकता नहीं होती।

सदैव ताजे फल, सब्जियां तथा खाद्य पदार्थो का ही सेवन करना चाहिए ऐसी चीजें जिनमें प्रिजरवेटिव्स मिले हो उन्हें सेवन नहीं करना चाहिए।

सदैव गलत मेल के खानपान से बचना चाहिए। जैसे मछली के साथ दूध न लें तथा दही के साथ खट्टाई न ले आदि तथा दाल, दूध, दही, सब्जियों व फलों का भरपूर मात्रा में सेवन करना चाहिए। अथवा अनाज को अंकुरित करके सेवन करते है। तो और भी अधिक प्राण शक्ति का संचार होने लगता है। इन सभी बातों का ध्यान रख कर सही खान पान तथा उसके नियमों का पालन करने पर कोई भी व्यक्ति रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर सकता है।

2वायु :- मनुष्य पंच तत्वों का एक जीता जागता पुतला है। वह भोजन के बिना तो कुछ दिनों जीवित रह सकता है। परन्तु वायु के बिना जीवन कुछ समय के लिए भी सम्भव नहीं है। वायु को मानव

जीवन का प्रमाण कहा गया है। वायु को ग्रहण कर मनुष्य, आक्सीजन प्राप्त कर रक्तशुद्ध करते है। तथा रक्त की गन्दगी को बाहर निकालने के बाद अर्थात निश्वा,स: के दौरान कार्बन डाई आक्साइड के बाहर निकालने पर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढाने का कार्य सुचारू रूप से चला आ रहा है।

जो लोग ज्यादा देर तक बंद कमरे और बंद जगहों पर नहीं रहते तथा खुली जगहों और खुला वातावरण में रहना पसन्द करते है इनकी प्रतिरोधी क्षमता उन लोगों की तुलना में श्रेष्ठ होती है। जो ज्यादा कमरे और बंद जगहों पर रहते है। इससे शुद्ध वायु का अभाव होने पर रक्त अशुद्ध होने लगता है। जो लोग अपने शरीर को जूते-जुराब-टाई-पैन्ट-कोट, इत्यादि से पूरी तरह बन्द रखते है। तथा कपडे बहुत ही टाईट होता है। इससे वायु शरीर से वंचित रखकर प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करता है।

3 जल :- प्रतिरोधक क्षमता को बढाने तथा बनाए रखने में जल का विशेष स्थान है जल का ठीक ढंग से सेवन करने पर यदि प्रतिरोधक क्षमता को बढाया जा सकता है। तो इसके विपरीत जल का ठीक उपयोंग न करने पर प्रतिरोधक क्षमता को घटा भी सकते हे। जल का पर्याप्त सेवन करना चाहिए, पानी सदैव स्वच्छ लेने चाहिए दिन में कम से कम 8 -10 गिलास पानी (रोगी की आवश्यकतानुसार) पीना चाहिए। खाना खाने से पहले व बाद में तथा खाने के बीच में पानी नहीं पीना चाहिए। खाने से आधा घण्टा पहले तथा बाद में ही पानी लेना चाहिए। जल शरीर की बाह्य सफाई के साथ-2आन्तरिक सफाई का भी कार्य करता है। जल के द्वारा भीतर जमा विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकाल दिए जाते है। ठण्डे जल के बाह्य प्रयोग से रक्त वाहिनियों के सिकुडने और फैलने की क्रिया तीव्र होती है। रक्त का संचालन शरीर में बढ जाता है। इस कारण शरीर के प्रत्येक विभाग ठीक ढंग से क्रिया करते है।

4 बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता :- किसी भी व्यक्ति की प्रतिरोधक क्षमता की नीव तो गर्भावस्था में ही पड जाती है। इसलिए माताओं को बच्चे के बेहतर विकास और इम्युनिटी के लिए तैयारी गर्भधारण के वक्त से ही शुरू कर देनी चाहिए। इस अवस्था में माताओं को पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए प्रसन्नचीत, रहते हुए दैनिक कार्यों को करना चाहिए। तनाव मुक्त रहना चाहिए, संगीत चाहिए। माता-पिता के अस्वस्थ अथवा गलत खान-पान रहन-सहन के कारण अनियमितताएं बहुत बढ जाती है। जिसके फलस्वरूप बच्चे के जन्म के समय से ही कुछ कम प्रतिरोधक क्षमता लेकर से जीवन आगे बढाते है यदि बच्चों को शुरू से ही स्वास्थ्य नियमों का पालन सिखाया जाए तो जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है।

5 निद्रा :- निद्रा का हमारे जीवन में बहुत महत्व हैं। शरीर के थकने पर जब ऊर्जा का ह्यस होता है। तथा शरीर के खरबों कोशिकाओं के दल थक चुके होते है। तो उस समय निद्रा के द्वारा ही पुन: ऊर्जा प्राप्त कर शरीर में स्फुर्ति तथा शक्ति को जगाया जा सकता है। शरीर के अधिक कार्य करने अर्थात शारीरिक या मानसिक श्रम करने के उपरान्त नींद लेकर पुन: कार्य करने की क्षमता को तथा ऊर्जा को प्राप्त किया जा सकता है। नींद का अच्छा होना ही अच्छे स्वास्थ्य या अच्छी प्रतिरोधक क्षमता का प्रतीक है जब हम जागते है और कार्य करते है तो जीवनशक्ति का ह्यस होता है तथा सोते समय इसके अनुपात में बहुत ही कम जीवनी शक्ति का ह्यस होता है। नींद लेने से प्रतिरोधक क्षमता की बचत होती है। नींद अपने आप में ही बहुत बडी औषधि है यदि व्यक्ति सोते समय या नींद सही ढंग से ले तो उसमें जीवनी शक्ति प्रबल होने लगती है निद्रा सही ढंग से सम्बन्धित कुछ नियम इस प्रकार है जैसे दोपहर को न सोकर रात्रि के 2-3 पहर में सोना चाहिए। खाना खाने के तुरन्त बाद में सोना नहीं

चाहिए सोने से पहले पैरों को ठण्डे पानी से धो लेना चाहिए सोते समय सूती व ढीले वस्त्र ही पहनने चाहिए क्योंकि इससे नींद अच्छी आती है तथा रक्त संचार में कोई रूकावट नहीं होती। जहां सोना हो वहां कम व नीली रोशनी का प्रकाश होना चाहिए।

नींद स्वयं में एक महत्वपूर्ण औषधि है। आप जानते है कि बच्चा जन्म के बाद 20 -22घन्टे सोते है जिससे वह अधिकाधिक प्रतिरोधक क्षमता को संचित करता रहता हैै। जिससे वह अधिकाधिक प्रतिरोधक क्षमता को संचित करता है। इसी प्रकार व्यस्क को 6-7 घण्टे की गाढी नींद लेनी चाहिए इससे शरीर में स्फुर्ति चुस्ती, मन में प्रसन्नता तथा मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होकर शरीर में प्रतिरोधक क्षमता का विकास होने लगता है। यह एक स्वभाविक क्रिया है। अत: इसका सेवन भी प्राकृतिक रूप में ही होना चाहिए। आजकल तनाव के कारण अनिद्रा जैसी समस्याओं ने कई रोगों को जन्म दे दिया है। अत: दवा खा कर सोने से नींद से होने वाले लाभ भी स्वभाविक निद्रा की तुलना में बहुत ही कम है।

6 आराम :- जीवनी शक्ति बढाने में आराम का बहुत महत्व है। आराम करने से शरीर की थकी हुई मांसपेशियों का तनाव कम होता है। तथा जटिल मानवीय कोशिका भी स्वस्थ रहेगी। शरीर के कार्य करने की दशा में उत्पन्न होने वाले थकान को केवल शरीर के आराम द्वारा ही दूर कर सकते है। इससे शरीर की प्रत्येक कोशिका में ऊर्जा का पुन: वास होने लगता है। तथा व्यक्ति फिर पहले की भांति ऊर्जावान हो जाता है तथा इससे उसके शरीर में निहीत प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास होता है। अत्यधिक श्रम व शरीर की क्षमता से अधिक कार्य करने से जीवनीशक्ति का ह्यस होता है इसके लिए जरूरी है कि सदैव शारीरिक व मानसिक तनाव होने पर आराम करना स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम है।

7 शरीर में विजातीय द्रव्यों का अभाव :- जीवनी शक्ति को प्रभावित करने वाला यह महत्वपूर्ण कारक है। शरीर में विजातीय द्रव्यों का अतिरिक्त भाग शरीर के तंत्रो को प्रभावित करने लगता है जिससे शरीर की जीवनी शक्ति कमजोर होने लगती है जब शरीर में किन्हीं कारणों जैसे गलत खान पान की आदतों तथा इसके अतिरिक्त खाद्य पेय पदार्थों में त्याज्य अंश को बढाने वाले प्रोटीन, श्वेतसार और चिकनाई अधिक हो तथा उसको निष्कासन धनात्मक खनिज लवणों की कमी रहे तो परिणामस्वरूप ये त्याज्य एवं दुषित पदार्थ शरीर में संचित होगे तथा ऐसे रोगजनक पदार्थ उत्तकों में विघ्न डालते रहेंगे। ऐसी त्याज्य तथा विजातीय द्रव्य शरीर मे विभिन्न प्रकार के रोग होने लगते है। इस से उत्पन्न होने वाले रोग के कीटाणुओ को नष्ट करने तथा शरीर से बाहर करने में अत्यधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिससे अनावश्यक रूप में शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता का ह्यस होने लगता है। इसलिए स्वास्थ्य प्रचुर मात्रा में जीवनीशक्ति की पूर्ति, निर्बाध सामान्य जीवनदायी द्रवों का परिभ्रमण पर्याप्त आपूर्ति तथा त्याज्य पदार्थों के पूर्ण निष्कासन पर निर्भर है।

8 मानसिक और भावनात्मक प्रभाव :- जीवनी शक्ति का शरीर मे प्रवाह तथा वितरण से हमारी मानसिक एवं भावनात्मक स्थितियां भी अत्यधिक प्रभावित होती है। भय, क्लेश, चिंता तथा सादश्श मनोभाव आदि मानसिक क्रियाएं शरीर को भी प्रभावित करती है। भय की स्थिती में व्यक्ति के मन में जो परिवर्तन आते है उसका प्रभाव शरीर पर भी दिखता है भय के कारण उसका शरीर कांपने लगता है गला सुखने लगता है शरीर से पसीना टपकने लगता है शरीर की गति रूक जाती है आदि के विनाशकारी कंपन, उत्तकों को प्रभावित कर देते है और जीवन के सूक्ष्म स्त्रोतों (कोशिकाओं) को संकुचित कर जीवनी शक्ति को क्षीण कर देते है। अधीरता, क्रोध, चिडचिडापन, तीव्र, आवेग, अति

विचार आदि शरीर में अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न करते है जिससे कोशिकाओं का नाश होने लगता है। यही मानसिक और भावनात्मक प्रभाव व्यक्ति की प्रतिरोधात्मक क्षमता को प्रभावित करती है। इसलिए प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के लिए विश्वास, आशा, प्रसन्नता, सुख, प्रेम, परोपकार के मनोभाव शरीर के ऊतकां पर तनावमुक्ति, समरसता एवं जीवनदायक प्रभाव डालते है।

9 विचार :- विचार आदत अथवा स्वभाव शरीर को प्रभावित करते है। जैसे ईर्ष्या् , द्वेष, मोह, लोभ इत्यादि। यह सभी विचार हमारे भीतर नकारात्मक ऊर्जा को जन्म देते है। तथा शरीर के भीतर की सकारात्मक ऊर्जा का नाश करते है। हमे अपने अन्दर किसी भी प्रकार से कोई भी नकारात्मक विचार को नहीं आने देना चाहिए तथा ऐसी आदतो को भी त्याग करना उचित ही है। नकारात्मक स्थिती उत्पन्न होने पर सदा सकारात्मक विचारों को ही अपनाना चाहिए। इससे साइको सोमेटिक उपचार प्रक्रिया स्वत: काम करती रहती है।

10 ब्रह्मचर्य :- प्रतिरोधक क्षमता बढाने में ब्रह्मचर्य का पालन करता एक महत्वपूर्ण उपाय है। इससे शरीर की ऊर्जा का क्षय होने से रोक कर उस ऊर्जा को शरीर के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। इन जीवनदायी शक्तियों अर्थात प्रतिरोधक शक्ति को हम शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि तथा काल्पनिक और सृजनात्मक क्षमताओं को बढाने के लिए सुरक्षित रखते है। परन्तु निश्चित रूप से मानव सभी धरातलों पर अपनी काम शक्ति पर निर्भर रहता है। अत्यधिक वीर्य का निरर्थक व्यय एवं काम जीवन सभी ओर के विकास और वृद्धि रोक देता है। यह शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता का ह्यस कर देता है। इस शरीर और आत्मा को हीन बनाने वाली क्रिया का त्याग करना अति आवश्यक है इसका प्रयोग तथा इस विषय की जानकारी को बढाने के लिए शिक्षकों, माता-पिताओं और चिकित्सकों को इस नाजुक मसले का उचित ढंग से समाधान करना सीखना चाहिए तथा बालकों को इसका ज्ञान देना चाहिए सभी प्रकार का मैथुन शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आज की तेज आधुनिक जीवन शैली में सम्भोग तथा यौन क्रियाएं सामान्य होती जा रही है। जिनके अति उपभोग करने से शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक व्याधियां बढने लगती है। तथा इससे अति ऊर्जा का विनाश भी होता है। अत: यह क्रियाएं केवल वंश वृद्धि करने तथा उचित समय पर आवश्यकतानुसार ही करना उचित है, ऐसा करके प्रतिरोधक क्षमता का विकास करने में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है।

11व्यायाम :- व्यायाम स्वस्थ जीवन जीने की एक सीढी है। इसके द्वारा मानव प्रतिरोधी शक्ति में वृद्धि कर सकता है व्यायाम का अर्थ है वह शारीरिक परिश्रम जिससे उत्पन्न होने वाली थकान के बाद सुख की प्राप्ति होती है। व्यायाम का सीधा प्रभाव हमारे शरीर पर पडता है। इसमें होने वाली शरीर की विभिन्न स्थितियां शरीर के भिन्न-2अवयवों व तंत्रो पर प्रभाव डालती है। तथा रक्त के संचार को उत्तम बनाकर शरीर में जमे हुए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालती है। तथा रोग के कारणों को दूर कर शरीर को पूर्ण रूप सडौल, कान्तिमय, बलिष्ट तथा सुन्दर बनाता है। शरीर में हल्कापन तथा स्थिरता को बढाता है। व्यायाम रोगों से दूर करता है तथा ऊर्जा का निर्माण करता है। अत: यह प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

12आवश्यक वचन :- आवश्यक वचन का अर्थ है आवश्कता के अनुरूप ही भाषण देना अथवा बोलना। जितनी आवश्यकता हो उतना ही बोलना चाहिए क्योंकि अत्यधिक बोलने से भी ऊर्जा की

अपव्यय होता है। इस ऊर्जा को बचाने के लिए जरूरी तथा आवश्यक भाषण करना प्रतिरोधक क्षमता को बचाने का उपाय है।

13 प्राणायाम :- प्राणायाम दो शब्दों योग अर्थात प्राण+आयाम से मिल कर बना है। प्राण का अर्थ है प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति और आयाम का अर्थ है विकास अथवा नियंत्रण इस प्रकार प्राणायाम को अर्थ प्रतिरोधक क्षमता का विकास करना है।

प्राणायाम की श्वसन-क्रिया फेंफडों को शक्तिशाली बनाकर उनके लचीलेपन को बढाती है जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर में प्राणवायु का अधिकाधिक संचरण होता है। जिससे सम्पूर्ण शरीर के अंग प्रत्यंग को पुष्ट तथा निरोगी बनाया जा सकता है प्राणायाम से रक्त-परिभ्रमण की गति में तेजी आती है। इससे मस्तिष्क तरोताजा होकर अधिक क्रियाशील बन जाता है। प्राणायाम तन्त्रिकातन्त्र पर नियन्त्रण स्थापित कर स्नायुओं को सबल बनाता है जिससे अनेकों रोगों को दूर कर शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाता है तथा शरीर को स्वस्थ शरीर बनाए रखा जा सकता है तथा ऊर्जा को भी बडी मात्रा में संचित किया जा सकता है।

14 उत्तेजक पदार्थों का निषेध :- उत्तेजक पदार्थों का भी प्रभाव हमारे शरीर, स्वास्थ्य तथा प्रतिरोधक क्षमता पर पडता है। उत्तेजक पदार्थों का सेवन हमारे स्नायु संस्थान को शिथिल तथा चेतन शून्य करता है। इसलिए जब भी इस तरह के पदार्थो जैसे-कैफीन, एल्कोहल या अन्य का सेवन करने पर तनाव, थकान तथा निद्रा को दूर करने के लिए किया जाता है। यह हमारे शरीर के लिए हानिकारक होते है इसका सीधा प्रभाव हमारे शरीर तथा मस्तिष्क पर होता है। जिससे व्यक्ति की कार्यक्षमता क्षीण होने लगती है। इससे प्रतिरोधक क्षमता का ह्यस भयंकर रूप से होता है। तथा इसके सेवन से बचकर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करके प्रतिरोधक क्षमता में सफलता पूर्वक वृद्धि की जा सकती है।

15 आसन :- आसन योग का तीसरा अंग है। यह शरीर पर प्रतिबल प्रभाव डालते है। तथा इसके द्वारा प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। आसनों का नियमित अभ्यास करने से शरीर लचीला बनता है तथा शरीर में रक्त संचार सुचारू हो जाता है आसनों का प्रयोग रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। क्योंकि आसनों के प्रभाव से शरीर के विजातीय द्रव्यों तथा मलों के साथ-2विष का भी नाश किया जा सकता है। आसनों के द्वारा कार्यों को निर्मल बनाकर स्वस्थ बनाया जा सकता है। अत: इसके द्वारा भी प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत किया जा सकता है।

16 ध्यान :- वर्तमान मे तनाव एवं दबाव से ग्रस्ति जीवनी शक्ति को जगाने और उसे शक्ति प्रदाद करने हेतु डा. रॉबर्ट ने एक शोध द्वारा यह निष्कर्ष निकाला रोग के जीवाणुओं से लडने के लिए ध्यान श्वेत रक्त कोशिकाओं में तेजी से वृद्धि करता है। अष्टांग योग के द्वारा केवल ध्यान नही नहीं अपितु शेष सभी अंगों के द्वारा जहां एक तरफ रोग मुक्त स्वस्थ जीवन बनता है। वही दूसरी ओर हमारे शरीर के विभिन्न अंगो का ध्यान द्वारा शिथिलीकरण कर उनको तनाव मुक्त लचीला पन प्रदान करता है। इसी ध्यान की कडी में विपश्ना एक मील के पत्थर के तरह सिद्ध हुआ है। जिससे सिद्ध होता है कि मौन व्रत के साथ लम्बे समय तक शरीर को स्थिर रख कर चित्त को स्थिर बनाए रखकर ऊर्जा के संचयन मे मदद करता है जिससे शरीर के प्रतिरोधी तंत्र में भी ऊर्जा का निर्माण होने लगता है। ध्यान का पूर्णत: प्रभाव प्राप्त करने हेतु गायत्री मूत्र, ओम ध्वनी एवं प्राणायामक का अभ्यास भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

17 उपवास :- उपवास के इतिहास के परिचित व्यक्ति इस तथ्यों को भलिभांति जानते है कि उपवास की परम्परा बहुत पुरानी है। पहलें धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में उपवास का सहारा लिया करते थे। किन्तु उपवास का वैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षाकश्त नयी वस्तु है उपवास के द्वारा शरीर में निहित मलों का बाहर कर रोग मुक्त शुद्ध शरीर को प्राप्त किया जा सकता है। उपवास में जब आहार का त्याग किया जाता है तो उस आहार को पचाने वाली ऊर्जा को बचा कर अन्य दिशाओं में मोड दिया जाता है। और विष तथा मलों को शरीर से निकालकर शरीर को स्वच्छ करने का काम प्रारम्भ हो जाता है। भोजन को पचाने में उसे और उपयोगी रस बनाने में तथा बेकार पदार्थ को बाहर निकालने में जो ऊर्जा खर्च होती है उसे रोग की स्थिती में उपवास द्वारा बचा कर सही दिशा में लगाकर रोग मुक्त हो सकते है।

एक रिपोर्ट मे कहा गया है कि सीनेटर और म्यूलरने सेटी और ब्रेथाप्ट के रक्त का परीक्षण किया और दोनों में लाल रक्त कोषाणुओं में वृद्धि पायी गई। उपवास के कई प्रकार के प्रभाव शरीर से देखने को मिलते है उपवास के प्रारम्भ में लाल रक्त कोषाणुओं की संख्या में कमी हुई किन्तु बाद मे इनमें वृद्धि होते देखा गया। जैसे-2उपवास बढता है वैसे-2श्वेतरक्त कोषाणुओं में कमी होती जाती है। साथ ही मोनो न्यूक्लिर कोषाणुओं की संख्या में भी कमी के साथ ही लाल रक्त कण और बहुनाभिकीय कोषाणुओं मे वृद्धि होने लगती है। रक्त की क्षरता से कमी होने लगती है हिमरवर्ड कैरिंगटनने जीवनी-शक्ति उपवास और नामक अपनी पुस्तक में रोगियों के उपवास काल में उनके शरीर का ताप सामान्य से कम रहता है। किन्तु इसका कोई दुष्प्रभाव नही पडता। उपवास से रोगी का स्वर स्वच्छ होने लगता है। चर्बी घटने लगती है। आंते साफ हो जाती है। यकश्त और मूत्राशय की भी सफाई हो जाती है। उपवास रक्त शुद्ध हो जाता है तथा उसमें नई जीवनी शक्ति का संचार होने लगता है। उपवास द्वारा शरीर और मन दोनों प्रभावित होते है।

18 धूप/सूर्य :- सूर्य ऊर्जा का एक बडा स्त्रोत है। संसार के प्रत्येक प्राणी को ऊर्जा सूर्य से ही प्राप्त होती है। सूर्य की ऊर्जा के द्वारा ही पृथ्वीत्पर जीवन सम्भव हो पाया है अर्थात सूर्य के अभाव में जीवन की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। एक पौधे को जिसके जीवन का आधार सूर्य है यदि पौधे को धूप को हटाकर उसे अंधेरे में रख देते ही मुरझा जाता हैं यही शक्ति जो पौधो को जीवन देती है। वही मनुष्य के शरीर में निहित रक्त को लाली भी प्रदान करती है मनुष्य जो भोजन ग्रहण करता है उस भोजन के द्वारा सूर्य की ऊर्जा को ही ग्रहण कर जीवित रहने योग्य बनता है। कार्य करने की शक्ति तथा ऊर्जा मनुष्य को भी सूर्य तथा भोजन द्वारा ही प्राप्त होती है। जो बन्द व अंधेरे भरे धरे में अप्राकृतिक प्रकाश में तथा प्रकृति से दूर रहकर जीवन यापन करते है उनकी जीवनी शक्ति व धूप अथवा खेत में काम करने वाले किसानों की जीवनी शक्ति में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। शहरीकरण के कारण वहां का जीवन जीने से उस क्षेत्र के लोगों का इम्यून सिस्टम कमजोर होने लगता है जबकि ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का इम्यून सिस्टम शक्तिशाली होता है। वह जल्दी से किसी बीमारी अथवा मौसम परिवर्तन होने सामान्यता होने वाली बीमारियों का शिकार उनकी तुलना में कम होते है इसका कारण ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों का प्रकृति से जुडा रहना है। प्रतिरोधक क्षमता बढाने हेतु प्रकृति प्रदत्त सूर्य ऊर्जा का सेवन अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

च्यवनप्राश :- आयुर्वेद में रसायन रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाने में बेहद मददगार होते है। ऐसा पदार्थ जो एटिआक्सिडेंट प्रतिरोधक क्षमता बढाने वाला हो और स्ट्रेस को कम करता हो तो वह रसायन

कहलाता है। इसलिए त्रिफला ब्रह्मारसायन यदि रसायन कहलाता है। च्यवनप्राश को सबसे बेहतर रसायन माना जाता है। इसमें 4 0 के आसपास जडी बूटियां डाली जाती है। च्यवनप्राश का नियमित सेवन करने से आईजीई का लेवल कम होता है। तथा प्राकृतिक फिलर सेल्स शरीर में पहले से ही मौजूद होते है जिनका काम शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता से बढोतरी करना होता है। च्यवनप्राश इन कोशिकाओं के काम करने की क्षमता को बढा देता है। इसे सुबह-शाम दूध के साथ हर मौसम में लिया जा सकता है।

अश्वगंधा :- अश्वगंधा को प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास कर शरीर को कमजोर करने वाले रोगों को दूर किया जा सकता है।

आंवला :- आंवला त्रिदोषनाशक है। आयुर्वेद में इसे बुढापे और रोगों को दूर रखने वाला रसायन माना गया है। इसे ताजा रस या मुरब्बा किसी भी रूप में ग्रहण किया जा सकता है। यह रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढाने का अचूक नुस्खा है।

शिलाजीत :- यह भी रोगप्रतिरोधक क्षमता के विकास में सहायक है। सर्दियों में दूध के साथ शिलाजीत का सेवन करने से हड्डियां, लीवर और प्रजनन संबंधी रोग दूर हो जाते है।

गिलोय :- नीम के पेड मे पान जैसे पत्तों वाली लिपटी लता की गिलोय के नाम से जाना जाता है। इससे शरीर की रोग प्रतिरोधकता क्षमता को बढाया जा सकता है। बुखार, मधुमेह, लिवर आदि से संबंधित तकलीफो से बचाव होता है।

कुछ अन्य चीजें

(क) ग्रीन टी :- ग्रीन टी में एंटिआक्सिडेंट होते है जो कई तरह के रोगों से बचाव करते है इसके द्वारा छोटी आंत में पैदा होने वाले गंदे बैक्टीरियां को पनपने से रोका जा सकता है। विषेषज्ञों का मानना है कि एक दिन मे दो से तीन बार ग्रीन टी लेकर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बेहतर बनाया जा सकता है।

(ख) चिलीज :- चिलीज का सेवन मेटाबालिज्म को बेहतर करता है। ये नेचरल ब्लड थिनर की तरह काम करती है। और एंडार्फिस का स्त्राव करती है। इसमें बीटा कैराटीन भी होता है जो विटामिन ए में बदल कर इंफेक्शन से लडने मे मदद करता है।

(ग) दालचीनी :- इसमे भी एंटिआक्सिडेंट होता है। इससे रक्त का थक्का बनाने तथा बैक्टीरिया की वृद्धि को कम करने मे मदद मिलती है।

(घ) शकरकंद :- इसका प्रयोग अल्जाइमर, पार्किसन और दिल के रोगों को रोकने में किया जाता है। इसमें प्रतिरोधक तंत्र को सशक्त बनाने की क्षमता होती है।

(ड़) अंजीर :- इसके अन्दर पौटेशियम, मैग्नीज, और एंटि-आक्सिडेंट्स होते है। यह शरीर में पी एच के स्तर को बनाए रखते है। इसमे फाइबर होता है। तथा यह ब्लड शुगर लेवल को कम करने में मदद करता है।

(च) मशरूम :- यह रक्त में w.b.c. का विकास करता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता की बढाता है।

(छ) लहसुन :- लहसुन हमारे इम्युन सिस्टम के लिए बेहद महत्वपूर्ण दो सेल्स को मजबूत करता है। कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस और दूसरे दुर्लभ खनिज तत्वों का भण्डार लहसुन शरीर और दिमाग दोनों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढाता है। यह सर्दी, जुकाम, दर्द, सूजन और त्वचा सबंधित बीमारियां को नहीं होने देता।

(ज) मुलट्टठी :- मुलट्ठी का चूर्ण एंटिबायांटिक है। यह नियमित रूप से सेवन करने पर शरीर में प्रतिरोधी तंत्र का विकास होता है। इससे खांसी, न्यूमोनिया, कफ संबंधी विकार, श्वसन संबंधी विकार भी दूर हो जाते है।

(झ) तुलसी :- तुलसी से बहुत ही शक्ति होती है। खांसी, जुकाम, बुखार, और सांस से सम्बन्धित रोगों से लड़ने के लिए इसका प्रयोग करके रोग प्रतिरोधक क्षमता का बढाया जा सकता है।

उपरोक्त पदार्थो के सेवन द्वारा भी प्रतिरोधक क्षमता को बढाया जा सकता है।

8.4 चक्रों द्वारा प्रतिरक्षा प्रणाली बढाने के पश्चात

यहां हम शरीर में विद्यमान चक्रों द्वारा शरीर के संचारण को नियन्त्रत करके उनकों सन्तुलित करते हुए शरीर को प्रतिरोधक क्षमता को शुद्ध बनाने मे प्रयोग करते है योग विज्ञान में भी अनेक चक्रों का वर्णन आया है। जिनको पढने के बाद स्वस्थ शरीर की कामना की जा सकती हैं। इन चक्रों मे पांच प्राण, पंच महाभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय।

समस्त वर्ण, एवं स्वर व विभिन्न प्रकार के प्रकाश देखने को मिलते है। इन्हीं चक्रों के खोलने तथा शुषुम्ना नाडी को जाग्रत करने से सभी चक्रों का एक दूसरे से जुडना ही शरीर का सन्तुलन बनाता हैं। आईए इन चक्रों अध्ययन करके प्रतिरोधक क्षमता को बढाने के सूत्रों का अध्ययन करते है।

चक्र :- चक्र का शाब्दिक अर्थ समझते तो गोल पट्टियां या वश्त्त के रूप में माना जाता है लेकिन योग की दृष्टि से चक्र अतिन्द्रिय शक्ति केन्द्र की ऐसी तरंगे है जो वश्त्ताकार रूप से चलायमान होती है। हर चक्र की अपनी अलग तरह की तरंगे होती है। अलग तरह की गतियां होती है तथा अलग ही रंग होते है जिनको हमारे योगियों ने कमल पंखुडियों के बीच में ही देखकर उनका अध्ययन किया इसलिए इन चक्रों को शरीर का कमल पुष्प कहा जाता है। इनकी उपमा माला के सूत्र में पिरोए कमल पुष्पों से कि जाती है। जिनका विस्तश्त वर्णन इस प्रकार है:-

1. **मूलाधार चक्र :-** जैसा की नाम से ही स्पष्ट है। मूल का अर्थ है जड अर्थात हमारे मेरूदण्ड की जड में स्थित है। आधार का अर्थ है स्थान, जहां से मेरूदण्ड में ऊर्जा का प्रवाह आरम्भ होता है इस स्थान को योगी कुंडलिनी शक्ति का स्थान भी मानते है। यह चक्र गुदा मूल से दो उंगल ऊपर और मूत्रन्द्रिय से दो उंगल नीचे स्थित होता है इसका रंग लाल होंता है यह चक्र आरोग्या आनन्द व खुशी बढाते हुए हमारी पाश्विक प्रवृतियों का विनाश करता है। जिससे एक ओर प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। दूसरी ओर उसका कमजोर करने के पहलुओं को नष्ट करता है।

2. **स्वाधिष्ठान चक्र :-** मूलाधार चक्र से दो उंगल पेडु के पास इसका स्थान माना गया है जिसका शाब्दिक अर्थ स्वयं का स्थान से होता है जब इस चक्र में चेतना और ऊर्जा बढने लगती है तब स्वयं और अहमं की चेतना जाग्रत होने लगती है मूल रूप से जननांगों से

सम्बन्धित ग्रन्थियों को प्रभावित भी करता है। इसका रंग सतरी होता है। इससे हमारी बुद्धि प्रबल होती है। जिव्हा में सरस्वती के वास का उदय होता है। और हमारे शरीर में नवनिर्माण की शक्ति का संचार होता है।

3. **मणिपुर चक्र :-** नाभि मूल में त्रिकोणाकार मोतियों के नगर के रूप में इसका शाब्दिक अर्थ समझा जाता है। इसे मणियों की माला भी कहा जाता है। इस चक्र सम्बन्ध आत्मीकरण, प्राण ऊर्जा और भोजन के पाचन से है। इस चक्र का रंग अरूण आभा युक्त होता है। त्रिकोणाकार चक्र रक्तवर्ण अग्नि का मुख्य स्थान है इससे वृत्तियां उभरने लगती है। जैसे लज्जा, ईर्ष्यार, विषाद, कणाद, तृष्णा, मोह, घृणा और भय है। शरीर पर इसके प्रभाव स्वरूप कान्ति बढती है।

4. **अनाहत चक्र :-** अनाहत चक्र मणिपूर चक्र से तथा चौथे चक्र के रूप में शरीर में हृदय के स्थान पर स्थित होता है अनाहत का शाब्दिक अर्थ होता है "चोट का अभाव" इस चक्र का रंग धूसर युक्त होता है इस चक्र से कुछ वश्त्तियां उत्पन्न होती है जैसे - आशा, चिन्ता, चेष्टा, ममता, पम्भ, विफलता, विवेक, अहंकार, कपटता, वितर्क और अनुपात, वायुतत्व इसके द्वारा वाकपतित्व, कवित्व, शक्ति का लाभ व जितेन्द्रियता आदि इसके लाभ बताते है। इस चक्र का ध्यान करने वाले को कभी हृदय रोग नहीं हो सकता है तथा दिव्य प्रेम, करूणा, सेवा व सहानुभुति आदि दिव्य गुणों का विकास होता है।

5. **विशुद्धि चक्र :-** इस चक्र का स्थान कण्ठ है। विशुद्धि का शाब्दिक अर्थ विशेष शुद्धि से लिया जाता हैं इस चक्र के द्वारा शरीर में विष को फैलने से रोका जा सकता है। इस चक्र का रंग गहरा नीला होता है। इस चक्र पर ध्यान करने व इसके जागृत होने पर व्यक्ति कवि, महाज्ञानी, शान्तचित, निरोग, शोकहीन और दीर्घजीवी हो जाता है। इस चक्र से थायराइड ग्रन्थि के रोग नही होते साथ ही गले के रोग जैसे टांसिल, चुल्लिका, उपचुल्लिका ग्रन्थियों पर भी पडता है। इसके प्रभाव से साधक ज्ञानवान, तेजस्वी, शान्तिचित और दीर्घजीवी हो जाता है।

6. **आज्ञा चक्र :-** यह चक्र दोनों भ्रुवों के मध्य भ्रकुटि के भीतर है। यह चक्र हमारे मेरूदण्ड के ऊपरी छोर पर स्थित होता हैं इस चक्र का सम्बन्ध दो महत्वपूर्ण ग्रन्थियों से होता है। पीयूष और पीनियल ग्रन्थि। इस चक्र के सक्रिय होने पर दोनों ही ग्रन्थियों की कार्य क्षमता पर पडता है। जिससे व्यक्ति अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि हो जाता है। मूलाधार चक्र से इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना पृथक-2ऊर्ध्वतप्रवाहित होकर इस स्थान पर संगम को प्राप्त करती है। इस स्थान को त्रिवेणी कहते है।

7. **सहसार चक्र :-** यह चक्र सबसे अन्तिम तथा सबसे ऊपर का चक्र है। इसका स्थान ब्रह्मताल या ब्रहमर्ध के उपर मस्तिष्क मे है। विभिन्न प्रकार के रंगो के प्रकाश से युक्त हजार दलों वाले कमल के समान इसकी आकृति है। इस स्थान को शिव और शक्ति का मिलन स्थान भी कहते है। इस चक्र के जाग्रत होने पर शक्ति परम शिव के साथ लीन होने के साथ ही विभिन्न चक्रों की शक्तियों अहंकार चित्त बुद्धि तथा मन के साथ सम्पूर्ण रूप से परमात्मा मे विलीन हो जाती है। इसके जाग्रत होने पर आत्मज्ञान का प्रकाश चित्त पर पडता है। इसमें

हृदय गति रूकने से शरीर के सभी कार्य बन्द हो जाते है तथा आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है।

8.5 सारांश

आपने उपरोक्त इकाई में शरीर की एक ऐसी शक्ति के विषय में पडा जो हमारे शरीर का एक ऐसा डॉक्टर है जो सदैव रोगों से लडने के लिए तैयार रहता है। वह किसी भी कारण से कोशिकाओं के चोटिल होने की आवस्थाओं में उसकी मरम्मत ही नहीं उसे प्रभाव शाली भी बनाता है इसी डॉक्टर की शक्ति को बढाने के लिए हम किस प्रकार की जीवन शैली, दिन चर्या, खान-पान, रहन-सहन, अच्छा वातावरण अपनाकर बहुत बढा सहयोग कर सकते है जिसके लिए क्या खायें कितना खायें कब खायें और कैसा खायें इत्यादि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। इसी प्रतिरोधक क्षमता हेतु योग की कितनी आवश्यकता है उसके महत्व को भी समझने का प्रयास किया। जिसमें मानव शरीर में विद्यमान सात चक्रों को संन्तुलित करते हुए प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदश्ढ बनाने का अध्ययन भी किया मुख्य रूप से एक बात समझ में आई कि केवल जीवन शैली अपना लेने अथवा सन्तुलित या सातविक आहार ग्र्रहण करने या साफ सफाई रखने मात्र से काम पूरा नहीं हो जाता है अपितु इस शरीर से कितना काम लेना चाहिए। कितना सोना या व्यायाम करना चाहिए तथा कितने अन्तराल पर हमें उपवास प्राणायाम, ध्यान, स्वाध्याय इत्यादि का सहारा लेना भी उतना ही आवश्यक है क्योंकि हमारे शरीर के विभिन्न अंगों अथवा कोशिकाओं को जब तक आराम नहीं मिलता है तब तक उनमें शक्ति का संचार नहीं पनपता है उपरोक्त के द्वारा हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली एक नया जीवन प्राप्त कर सकती है।

8.6 बोधात्मक प्रश्न

1- प्रतिरोधक क्षमता के अर्थ व महत्व की व्याख्या करें।

2- योग द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढाने के लिए सात चक्रों की भूमिका का वर्णन करें।

3 - जीवन शैली द्वारा प्रतिरोधक क्षमता कैसे विकिसत की जा सकती है?

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

- मानव के समग्र विकास मे पंचकोश साधना - अर्जुन सिंह
- योग द्वारा स्वास्थ्य - डा. राकेश प्रकाश निगम
- आदि ऊर्जा प्राण - अमश्ता भारती
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग - डा. नागेन्द्र कुमार नीरज
- जीवनी शक्ति कैसे जगाएं - डा. चन्द्रदीप सिंह
- प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवं व्यवहार - डा. हेनरी लिंडलार
- प्राण शक्ति उपचार - प्राचीन विज्ञान व कला

इकाई - 9

रोग निदान (आकृति - मल - मूत्र- पसीना एवं जिव्हा)

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 निदान के अर्थ एवं परिभाषा

9.4 आकृति निदान, चेहरे द्वारा निदान

9.5 हड्डियों के द्वारा निदान, आँखों के द्वारा निदान

9.6 बालों के द्वारा निदान, अंगुलियों द्वारा निदान

9.7 नाखूनों द्वारा निदान, त्वचा द्वारा निदान

9.9 श्लेष्मा (थूक) द्वारा निदान, जीभ द्वारा निदान

9.10 मल द्वारा निदान, पसीने द्वारा निदान

9.11 मूत्र द्वारा निदान

9.5 सारांश

9.6 बोधात्मक प्रश्न

9.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जिसको एक सामान्य साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ समता है। तथा थोड़ी सी जानकारी से भी स्वत: उपचार कर सकता है। इसके बाद इसमें किसी प्रकार के रोग के लक्षणों के अनुसार उपचार नहीं दिया जाता अपितु शरीर में एकत्र विजातीय द्रव्यों को बाहर करने हेतु पंच महाभूत का सहारा लिया जाता है। पंच महाभूत द्वारा शरीर का शोधन कर उसे निरोगी बनाया जाता है। इसमें रोग का उपचार किया जाता है। न कि रोग के लक्षणों का दूसरी ओर अन्य चिकित्सा पद्धतियों में (आयुर्वेद को छोड़कर) रोग के लक्षणों का उपचार किया जाता है। रोग के लक्षण जिस भी अंग में पनपते है। उसी अंग के नाम से रोग का नामकरण कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए सिर दर्द Headach होने को कमर दर्द Backach को आदि नामों से पुकारा जाता है।

आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षित मानव बिना निदान के कोई भी उपचार देने को लोक सम्मत नहीं मानते इसलिए निदान को प्राकृतिक चिकित्सा में भी स्वीकारा है। परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान

में निदान प्रक्रिया मल, मूत्र, रक्त की जांच रसायनों द्वारा की जाती है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में मल, मूत्र, आकृति, नाखून आंखे, जीभ को देख कर किया जाता है। जो स्वयं चिकित्सक ही करता है। परन्तु रसायन द्वारा जांच का कार्य रसायन विशेषज्ञ द्वारा ही किया जाता है तथा उसकी रिपोर्ट पर डॉक्टर या चिकित्सक दवा देता है। इन्हीं मुख्य बिन्दुओं के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में निदान निर्धारण करना हम इस इकाई में करेगें।

9.2 उद्देश्य

- आकृति द्वारा निदान का अध्ययन
- चेहरे द्वारा निदान
- हड्डियों द्वारा निदान
- आंखों द्वारा निदान
- बालों का निदान
- अंगुलियों द्वारा निदान
- नाखून द्वारा निदान
- त्वचा द्वारा निदान
- श्लेश्मा (थूक) द्वारा निदान
- जीभ द्वारा निदान
- मल द्वारा निदान
- पसीने द्वारा निदान
- मूत्र द्वारा निदान

9.3 निदान के अर्थ एवं परिभाषा

रोग की प्रारम्भिक अवस्था ही तीव्र रोग के रूप में आती है जो शरीर की जीवनीय शक्ति द्वारा जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने की प्रक्रिया शुरू होती है इस प्रारम्भिक अवस्था में लगभग निदान स्पष्ट नजर आता है जो बुखार, जुकाम, खांसी, दस्त, निमोनिया एवं टायफाइड आदि के रूप में पनपता है यदि इस अवस्था को हमद दबा दे तो कालान्तर में मार्क रोग अथवा जीर्ण रोग के नाम से जाने जाते है। पंचमहाभूत का शरीर में अधिक या कम होना पाया जाता है प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का आकार स्वभाव खानपान की आदतें खाद्य पदार्थों के खाद इत्यादि भी एक दूसरे से अलग होना इन्हीं पंचमहाभूत के कारण नियमित रूप से विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालने में असमर्थ हो जाती है तो विजातीय द्रव्य एकत्र होकर रोग का रूप धारण कर देते है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा किये जाने वाले निदान प्रक्रिया में एक्सरे अल्ट्रासाउण्ड जैसी कुछ ऐसी प्रक्रियायें है जो बार बार करने से शरीर को नुकसान भी करती है। प्राकृतिक चिकित्सा में मूलभूत सिद्धान्त है कि ''निदान की कोई आवश्यकता ही नहीं है'' आधुनिक चिकित्सा पद्धति में रक्त के नमूने द्वारा की जाने वाली जांच उस के नमूने के अनुसार ही होती है और उसी के आधार पर निदार कर उपचार शुरू कर दिया जाता

है। परन्तु रक्त के नमूने लेने के बाद जांच होने से लेकर चिकित्सक तक पहुंचने के बीच के समय में रक्त के अन्दर अन्दर कीटाणुओं की मात्रा एवं अन्य जटिलताऐं बढ़कर शरीर के किसी दूसरे भाग में भी कुछ लक्षण बढ़ा देती है।

ऐसी स्थिति में जांच के आधार पर किया गया उपचार अधूरा रह जाता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा की निदान प्रक्रिया रोगी के सामने रहने के कारण क्षण प्रतिक्षण चलती रहती है साथ ही इसमें रोग का मूल कारण एकमात्र विजातीय द्रव्य को ही माना जाता है। और उस का उपचार भी विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया ही है।

साधारणतया किसी समस्या के भारी। लक्षणों का अध्ययन कर उसके मूल कारकों में समझ लेना ही निदान कहलात है दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कष्ट दायक लक्षणों का उभाड़ आने के कारण उत्पन्न हुई विकृति को समझना निदान कहलाता है प्राकृतिक चिकित्सा विधि में जो निदान किया जाता है नि:सन्देह उसे मौलिक कारण भी स्पष्ट हो जाता है। इसे रोगी के तत्कालीन स्वास्थ्य पर उसके खान पान रहन सहन अथवा उसकी विभिन्न प्रकार की आदतों का विश्लेशण भी साथ में किया जाता है। जो रोग मुक्ति के लिए सबसे बड़े निदान का कार्य करता है। क्योंकि इस पद्धति में जीवन शैली से जुड़ी सभी आदतों में बदलाव लाना उपचार की पहली आवश्यकता है। इसमें सुधार के पश्चात विजातीय द्रव्य को आगे बड़ने से रोकने की प्रक्रिया शुरू होती है। विजातीय द्रव्यों को शरीर में बढ़ने से रोककर शरीर में पहले से जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर करने हेतु नियमित रूप से जीवनी शक्ति करती रहती है, ओर जब जीवनी शक्ति पूर्ण रूप से जमा होने की प्रक्रिया रोक नहीं पाती उस समय प्राकृतिक चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। जो मल मूत्र पसीने, बलगम (थूक) एवं कार्बन-डाई-ऑक्साइड के रूप में श्वा स द्वारा शरीर शुद्धिकरण करते हुए स्वास्थ्य प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती है। वास्तव मे रोग के निदान का अर्थ है कि रोगी को अपनी पीडा के कारणों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। इसके अभाव में रोगी का मन पूर्ण रूप से न तो रोग के लिए गंभीर हो पाता है और न ही चिकित्सक के प्रति उसका विश्वास दृढ़ हो पाता है। जिसे रोगी पर दिया जाने वाला उपचार का प्रभाव भी कम ही हो पाता है। जैसा कि गांधीजी ने लिखा है कि पंचमहाभूत चिकित्सा तब तक कारगर साबित नहीं हो सकती। जब तक पंचमहाभूत चिकित्सा के अतिरिक्त रामनाम (महत्व) तत्व का सम्मिलित होना अति आवश्यक है। जिसके प्रभाव से रोगी का विश्वास चिकित्सक में पूर्ण रूप से आ जाता है। तथा उसमें ठीक होने की आशा के रूप में सकारात्मक विचार उत्पन्न होकर के रोगों को ठीक करने में एक विशेष भूमिका प्रदान करते है।

विजातीय द्रव्य बाहर होने से शरीर पर शुद्धि प्रक्रिया पूर्ण होने पर जो निदान प्रकृति अपनाई गई थी उसको समझने के बाद रोगी स्वयं प्रशिक्षित हो जाता है जिसे मानसिक तौर पर समझने के पश्चात उसी जीवन शैली को अपनाकर अपने को स्वस्थ रख सकता है। आइये हम विभिन्न प्रकार के निदानों के विषय में अध्ययन करेंगे -

9.4 आकृति निदान

किसी के शरीर को देखकर ही रोग का निदान किया जा सकता है चीन में भी चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत रोग निदान के लिए रंगों को शरीर के अंगों का प्रतिनिधि माना गया है। उनके अनुसार

1काला रंग - यह रंग गुर्दे, मूत्राशय ग्रंथियों तथा काम वासना के असन्तुलन को प्रदर्शित करता है।

2लाल रंग - लाल रंग हृदय मस्तिष्क और रक्त वाहिकाओं को दर्शाता है।

3 सफेद रंग - सफेद रंग फेफडे, त्वचा और श्वास प्रणाली को प्रदर्शित करता है।

4 पीला रंग - पीला रंग पलीहा, अग्नाशय, पेट और लिम्फेटिक प्रणाली को प्रदर्शित करता है।

5 हरा रंग - हरा रंग यकश्त और नाडी संस्थान को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त रंगों के अनुसार अंग विशेष में रोग के विषय में पता लगाया जाता है इससे अनुभव की आवश्यकता है धीरे धीरे विभिन्न प्रकार के रोगियों को प्रतिदिन देखने व परीक्षण से यह दक्षता हासिल की जा सकती है।

चेहरे द्वारा निदान

1	चहरे पर हीनता होना, पलकों का झुका झुका तथा आंखों का धंसा होना	क्षय रोग और तपेदिक रोग के लक्षण
2	प्राकृतिक रूप से चेहरे का हीन लगना	छाती के रोग और जोडो के दर्द होना।
3	चेहरे पर झेप और शर्मिलापन होना	शरीर में उर्जा की कमी होना
4	चेहरे पर थकान दिखना	कब्ज तथा तनाव होना
5	होठो का नीला पड़ना	हैजा रोग तथा यकृत के विकार होना
6	गर्भवती स्त्री के चेहरे का मुरझाना	गर्भ का गिरना तथा गर्भ स्राव अवस्था का होना
7	चेहरे का सूना सूना होना	शरीर में भयंकर रोग होने की सम्भावना
8	चेहरे का लाल तथा धब्बे वाला होना	खसरा तथा रक्त विकार होना
9	चेहरे का पीला पड़ना	पीलिया रोग तथा रक्त हीनता होना
10	चेहरे व पलको का सूजना	गुर्दों की सूजन होना
11	चेहरे का फीका पड़ना	तपेदिक रोग तथा ज्वर का पाया जाना
12	चेहरे का घबराहट का दिखना	मानसिक तनाव होना
13	मुंह से बार बार सांस लेना	श्वास संबंधित रोगों का होना तथा श्वास प्रणाली में विकार उत्पन्न होना
14	कान में खुजली होना	कान के रोग की सम्भावना
15	आंखों को बार बार खुजलाना	हृदय व यकृत के रोग

9.5 हड्डियों के द्वारा निदान

1	हड्डियों के जोड़ों को देखने से विकृति का अनुभव करना	गठिया रोग की उपस्थिति होना

2	हड्डियों के जोड पर सूजन व दर्द	संधिवात होना
3	हड्डियों का टेढा होना	कैल्शियम की कमी का सूचक है।
4	हड्डियों का सामान्य आकार से बढ जाना	हड्डियों के साथ यूरिक एसिड का जमना

आँखों के द्वारा निदान

1	आँखों का अन्दर धस जाना	श्वेत प्रदर, प्रमेह रोग, दुर्बलता रक्त स्राव का बढ़ना, स्वप्न दोष आदि
2	आँखों की सूजन	यकृत, गुर्दों व हृदय रोग के लक्षण है।
3	आँखों का उभरा हुआ लगना	सिर में रसौली होना
4	आँख की पुतलियों का फैलना	मोतिया बिन्द, मिर्गी तथा साप का काटे जाना
5	आँख की पुतलियों का सिकुड़ना	अफीम का नशा करना
6	आँखों का लाल होना	नजला, जुकाम, उच्च रक्तचाप, तेज बुखार, आंखों मं संक्रमण आदि
7	आँखों की झिल्ली सफेद होना	रक्त हीनता होना
8	आँखों के आगे अन्धेरा छाना	बेहोशी, सिरदर्द, चक्कर आना, रक्त संचार में अवरोध, हृदय धड़कन का बढ़ना आदि
9	आँखों के चारों ओर काले घेरे पड़ना	पेट के रोग होना
10	आँखों में दर्द होना	पित्त बढ़ना, हृदय रोग होना
11	आँखों में खुजली होना	लीवर तथा हृदय से संबंधित रोग
12	आँखों से धुंधला दिखना	खून की अशुद्धि पाई जाना
13	आँखों से एक का दो दिखना	लीवर, गुर्दों तथा पेन्क्रियाल में विकार होना तथा मधुमय रोग में शुगर बढना
14	सोने के बाद बच्चे की आँख का थोड़ा खुला रहना	लीवर में रक्त का स्राव ठीक ढंग से न होना तथा स्पलीन का खून कम बनाना
15	व्यस्क की सोने के बाद आँख खुली रह जाना	लीवर में स्पलीन के रक्त कम बनाने के कारण रक्त का संचार सही ढंग से न होना

9.6 बालों के द्वारा निदान

1	बालों का रूखा तथा शुश्क होना	गुदोर्ं का रोग
2	बालों का सफेद होना	नजला, जुकाम, दमा तथा श्वास संबंधित रोग

3	बल झड़ना	पिट्यूटरी की क्रियाशीलता का कम होना, सिर में रक्त का संचार कम होना
4	बालों का झड़ना तथा कमजोर होना	पाचन संस्थान की गड़बड़

अंगुलियों द्वारा निदान

1	अगुंलियों के जोड़ों में दर्द होना	संधिवात
2	अगुंलियों में विकृति	गठिया
3	अगुंलियों में पीलापन या लाली कम दिखना	रक्त अलापता

9.7 नाखूनों द्वारा निदान

1	बड़े नाखून होना	फेफड़े, हृदय और मस्तिष्क विकार
2	छोटे नाखून होना	आंतों के रोग होना तथा रक्त विकार। पैर व कमर के निचले हिस्से में दर्द आदि
3	पतले नाखून वाले	शरीर का कमजोर, दुर्बल सुस्त तथा हृदय रोग की सम्भावना
4	मुडे हुए नाखून	रीढ की हड्डी में विकार होना
5	नाखून का एक ओर कम और दुसरी और ज्यादा चौडा होना	संधिवात की सम्भावना
6	नाखूनो का झुर झुर तथा टुटना	कैल्शियम की कमी होना
7	नाखून का कांच की तरह टूटना	स्नायुविक रोग
8	नाखून पर पीले धब्बे होना	पीलिया तथा पाण्डु रोग होना
9	नाखून नुकीले तथा चपटे होना	लकवा तथा पक्षाघात
10	नाखून पर उभरी हुई धारिया	यकृत का विकार पाया जाना

त्वचा द्वारा निदान

1	त्वचा का रूखा होना	आंतों में विकार तथा शरीर में जल की कमी होना
2	त्वचा का गर्म होना	बुखार होना और शरीर में विजातीय द्रव्य का प्रकोप होना
3	त्वचा पर खुजली होना	छोटी तथा बड़ी आंत में खुश्की होना
4	त्वचा पर दाने तथा मुहासे होना	रक्त अशुद्धता तथा हामोर्नस का असन्तुलित होना

5	त्वचा पर काले धब्बे पड़ना	रक्त विकार तथा यकृत विकार होना
6	त्वचा पर पसीना ज्यादा आना	टी.बी. की बीमारी होना

9.9 श्लेष्मा(थूक) द्वारा निदान

1	थूक का पतला होना	शरीर में पानी की अधिकता तथा सर्दी के कारण
2	थूक का बदबूदार होना	मुंह के तथा दांतों के रोग होना। इसके अतिरिक्त पाचन संस्थान में गडबड होना
3	थूक का पीपयुक्त होना	फेफड़ों में सूजन तथा फोडा होना
4	थूक का गाढा अधिक होना	पेट, गुर्दों तथा स्पलीन की कमजोरी
5	थूक चिकना होना	अपच तथा प्लीहा का विकार होना
6	थूक का हरा दिखना	पीलिया रोग या यकृत दारापित्त अधिक बनाना।
7	थूक का रंग नारंगी तथा मटमैला होना	श्लेश्मिक सन्निपात
8	थूक में झाग-झाग आना	वात विकार होना
9	थूक के साथ रक्त के कंठ आना	टी.बी. या फेफडो के रोग
10	थूक का चिपचिपा होना	ब्रोकाइटस

जीभ द्वारा निदान

1	जीभ का लाल रंग होना	शरीर में गर्मी बढ़ना तथा मूत्र विकार होना
2	जीभ का काला होना	टाइफाइड रोग का होना
3	जीभ की लाली कम होना	खून की कमी होना
4	जीभ का रंग सीसे जैसा होना	फेफडे तथा पक्वाश्य के रोग तथा हैजा होना आदि
5	जीभ का खुश्क होना	पानी की कमी होना
6	जीभ पर छाले होना	पाचन विकार होना तथा मूत्र में गर्मी और कब्ज होना
7	जीभ की जड़ में सफेदी का होना	आंतों के रोग तथा पाचन संस्थान में कमजोरी होना
8	जीभ का नीला होना	हृदय रोग तथा हृदय में विकार होना
9	जीभ पर दांतों के निशान होना	लीवर में विकार होना
10	जीभ का तीखा व नुकीला होना	मस्तिष्क विकार तथा स्नायुविक तंत्र का कमजोर होना
11	जीभ का टेढा या घुम जाना	पक्षाघात के कारण
12	जीभ का लम्बा होना	मस्तिष्क रोग

13	जीभ पर काली तहका जमना	चेचक रोग तथा यकृत रोग के कारण मृत्यु की सूचना
14	जीभ का सीसे जैसा होना तथा उस पर छाले पड़ जाना	मृत्यु होने की सम्भावना होना
15	जीभ का कांपना तथा लडखडाना	शारीरिक कमजोरी होना
16	जीभ सुन्न होना	स्नायु विकार होना

9.10 मल द्वारा निदान

मल की सही सही परिभाषा की बात की जाए तो कह सकते है कि जब एक निश्चित समय पर परवान जाते ही मल रस्सी की तरह बंध हुआ तथा साफ रंग का होता है तो वह स्वस्थ पुरूष के लक्षण है। परन्तु अनियंत्रित तथा आधुनिक जीवन शैली के चलते मल का सही रूप में शरीर से बाहर न आना कई रोगों का सूचक है।

मल का पतला, झागदार, श्लेष्मा युक्त, काला, पीला, लाल सख्त होना निश्चित रूप से बीमारियों का शरीर में होना माना जाता है। जैसे पीलिया, बावासीर, कब्ज, पेचिश, आव, अल्सर अथवा आंतों से संबंधित रोग होना।

पसीने द्वारा निदान -

शरीर की त्वचा पर असंख्य रोमछिद्र होते है। जिनके द्वारा शरीर के भीतर का विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है तथा हमारे शरीर में विजातीय द्रव्यों का निष्कायसन स्रोत भी है। किसी व्यक्ति को पसीना कम आता है या ज्यादा अर्थात् कितना आता है, सर्दी में भी पसीना आता है अथवा गर्मी में भी नहीं आता या बिल्कुल कम आता है, बहुत अधिक मात्रा में आता है, पसीना कपड़े पर दाग छोड़ता है, पसीना बदबुदार तो नहीं है पसीने से त्वचा पर विकार तो उत्पन्न नहीं होते खुजली तो नहीं होती इत्यादि विभिन्न रोगों के सूचक है। शरीर में पसीना ज्यादा आना । शरीर की अत्यधिक उर्जा का हास होना है तथा शरीर में विजातीय द्रव्य जैसे यूरिक एसिड आदि का अधिक मात्रा में होना भी हो सकता है।

9.11 मूत्र द्वारा निदान

किसी भी व्यक्ति द्वारा जल की जो मात्रा ली जाती है उसके अनुसार पेशाब के रूप में उसका शरीर से निकल जाना स्वास्थ्य लक्षणों का संकेत है तथा इसी के आधार पर ही हम यह जान सकते है कि उसे कौन से रोग हो सकते है अथवा किस रोग के आने के संकेत मिल रहे है।

पेशाब की मात्रा, उसका रंग, वेग, उसका गाढ़ापन, मिश्रण, गन्ध आदि द्वारा विभिन्न रोगों की जानकारी का सरलता से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जैसे पैशाब का पीला होने पर लीवर रोग अथवा पीलिया रोग की संभावना होना माना जाता है। पेशाब में जलन या दर्द होना पथरी अथवा मूत्रमार्ग में संक्रमण होना पाया जाता है। पेशाब में एल्ब्यूयिन आना, पेशाब पर चीटी आ जाना, मधुमेह जैसे रोग के लक्षण हे। इसके अतिरिक्त मूत्र द्वारा रोग निदान के लिए मूत्र की जांच रासायनिक प्रयोगशालाओं में विशेषज्ञों द्वारा भी कराई जाती है। जिससे रोग का ज्ञान प्राप्त कर उसका सही सही उपचार किया जा सके।

9.12 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि शरीर के विभिन्न अंगों पर उभरने वाले प्रभावों एवं लक्षणों को देखकर रोग का निदान कर सकते है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में किसी निदान हेतु पैसा व समय दोनों ही लगते है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया गया निदान स्वयं चिकित्सक द्वारा तथा बिना समय और धन के ही किया जा सकता है। निदान की जानकारी रोगी के ही देने से उसकी मानसिक संतुष्टि भी हो जाती है। लक्षणों का सामान्य ज्ञान इतना सरल है कि कोई भी व्यक्ति बिना किसी विशेष योग्यता के भी घर में स्वयं निदान जान कर तुरन्त चिकित्सा सहायता के लिए चिकित्सक के पास पहुंच जाता है। आधुनिक जीवन शैली से उत्पन्न होने वाले रोग ओर समय के अभाव के कारण आज जांच का समय निकालना भी कठिन हो गया है। ऐसे में इस सरल निदान का महत्व ओर अधिक बढ़ जाता है।

9.13 बोधात्मक प्रश्न

1 निदान का अर्थ एवं महत्व को समझाते हुए मल मूत्र एवं पसीने द्वारा निदान कैसे किए जाता है।

2 आकृति निदान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

3 जिव्हा एवं नाखून द्वारा निदान के विभिन्न बिन्दुओं का विवेचन कीजिए।

9.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आकृति से रोग की पहचान - डॉ. लुई कुने
- प्राकृतिक आर्युविज्ञान - राकेश जिन्दल

इकाई - 10

स्वास्थ्य एवं रोग का अर्थ एवं परिभाषा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा

10.2 मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु

10.3 स्वास्थ्य की मौलिक आवश्यकताएं

10.4 रोग की अवधारणा

10.5 रोग की परिभाषा एवं अर्थ

10.6 रोग के कारण

10.7 रोगी शरीर की पहचान

10.8 रोग के प्रकार

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.0 उद्देश्य

स्वास्थ्य किसे कहा जाता है? स्वास्थ्य रोग विहीन शरीर को माना जा सकता है? स्वास्थ्य के विषय में डब्ल्यू.एच.ओ. की संशोधित परिभाषा क्या कहती है? स्वास्थ्य शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक, आध्यात्मिक व सामाजिक स्वास्थ्य से भी परिपूर्ण होना आवश्यक है। स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाने हेतु किन बिन्दुओं को समझते हुए उनकी मौलिक आवश्यकताएं क्या हो सकती है? जिनसे हम चारों प्रकार के स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सके। साथ ही हम जान पाएगें कि स्वास्थ्य की अनुपस्थिति ही रोग की जन्मदात्री है। अर्थात् रोग क्या है? उसका अर्थ एवं परिभाषा तथा उसके कारण जिनमें रोग आते है और रोगी शरीर को हम किस प्रकार पहचान कर सकते हैं। रोग कितने प्रकार से हमारे शरीर को प्रभावित करते हैं। उनके मुख्य स्रोत क्या हो सकते हैं।

10.1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा

शरीर, मन तथा शरीर के विभिन्न अंगों का आपस में तालमेल बनाते हुए एकरूपता में व्यवस्थित तौर पर कार्य करना ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य उन तत्वों एवं शक्तियों का पूर्णरूपेण कार्य करना होता है जो मानव अस्तित्व को निर्माण करने वाले भौतिक, मानसिक एवं नैतिक स्तरों पर व्यक्तियों के अस्तित्व के लिए आवश्यक प्रकृति के निर्माणकारी सिद्धान्त के अनुरूप होते है। स्वास्थ्य स्वस्थ रहना और स्वास्थ्य को बनाए रखने की बात सदियों से चलती रही है। समय के बदलते रूप के साथ इसका

स्वरूप भले ही बदले लेकिन इसके प्रति लोगों का आकर्षण सदैव बना रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के तौर तरीके अपनाता है जिसमें औषधि का लिया जाना, अन्य क्रियाकलापों का किया जाना तथा अन्य भी ढेर सारे क्रियाकलाप शामिल होते है। हमारे लिए यह जानना काफी आवश्यक है कि स्वास्थ्य क्या है। सरल शब्दों में रोगों की अनुपस्थिति ही स्वास्थ्य कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार पंच तत्वों का संतुलन ही स्वास्थ्य है। इन तत्वों में असंतुलन ही रोगों के प्रार्दुभाव का मुख्य कारण होता है और इससे हमारे स्वास्थ्य को काफी नुकसान पहुंचता है। लेकिन WHO के अनुसार किसी भी व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक इन सभी दृष्टिकोणों से पूर्ण स्वस्थ्य होने की अवधारणा ही स्वास्थ्य कहलाती है। आज आधुनिक जीवन शैली में स्वास्थ्य को प्राप्त करने तथा अपने आपको रोगमुक्त रखने के लिए चिकित्सा विज्ञान द्वारा काफी प्रयास किए जा रहे है। दिन प्रतिदिन हो रहे अनुसंधानों, चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों, मशीनों निदानों, डॉक्टरों और अस्पतालों की बढ़ती संख्या के बावजूद रोग और रोगियों दोनों की संख्या में काफी वृद्धि हो रही है। इस स्थिति के पीछे का मुख्य कारण यह है कि आज हमारा सारा ध्यान स्वास्थ्य की चिंता करने के बजाए बीमारियों को दूर करने में लगा रहता है। हम स्वास्थ्य को प्राप्त करने के बजाए बीमारी को मिटाने में लगे रहते है। वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों का ध्यान भी स्वास्थ्य को पूर्ण अवधारणा को प्राप्त करने के बजाए रोग पर केन्द्रित होता है। दुर्भाग्यवश आज हम स्वास्थ्य की पूर्ण आवधारणा से अनजान है। वर्तमान पद्धतियों के सहारे हमें रोगों के कारण का पता तो चल जाता है लेकिन हम स्वस्थ्य रहने के महत्वपूर्ण कारणों को नजर अंदाज करते चले जाते है। हमारे अस्वस्थ रहने का मूल कारण यही है।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना अपने आप में शरीर में किसी प्रकार के रोग होने और शरीर रूपी मशीन के सही ढंग से कार्य करने को शामिल करती है। शरीर और इसके अंगों के बीच कार्यात्मक क्षमता का अभाव व अस्वस्थ होने की स्थिति की तरफ इशारा करती है। लेकिन शारीरिक रूप स स्वस्थ होने के साथ साथ हमारा मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ्य होना भी आवश्यक है। मानसिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह होता है कि हमारा शरीर मानसिक रूप से स्वस्थ होता है कि हमारा मानसिक संतुलन ठीक हो और हमारे क्रियाकलापों व आचरण द्वारा किसी भी प्राणी व जीव जंतु को कोई नुकसान न पहुंचे । आधात्मिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह है कि हम उस सर्वशक्तिमान ईश्वर में पूर्ण आस्था रहते हुए अपने आप में आत्मा के मूल गुणों को समाहित करते हुए अपने जीवन में राम नाम की अवधारणा को शामिल करें। सामाजिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह है कि हमारे सभी सामाजिक सरोकार और संबंध ठीक ठाक हो। अपने सामाजिक कर्तव्यों का पूर्णरूपेण निर्वाह करते हुए हम अपने जीवन को सार्थक बना रहे हों। उपरोक्त बातों को अगर हम अपने जीवन में शामिल करते है तो हम पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा को प्राप्त करने में सफल हो सकते है।

डयूबोस को इस संदर्भ में कहना हे कि स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें रोग असुविधा तथा दर्द आदि अत्यन्त न्यून होते है तथा पर्यावरण के साथ सतत सामंजस्य बना रहता है जिसके परिणाम स्वरूप सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएं उच्चतम स्तर पर चलती रहती है।

सामान्यत: अगर हमारे शरीर के किसी भी हिस्से में दर्द सूजन, खिंचाव और इस प्रकार की अन्य कोई परेशानी न हो तो हम अपने आपको स्वस्थ कह सकते है शरीर के सभी अंगों को उचित अनुपात में

विकसित होकर पूर्णरूपेण क्रियाशील होना भी एक महत्वपूर्ण कारक है। इस सबके साथ कुछ अन्य स्थितियां, जैसे सारी इन्द्रियों का अच्छी तरह कार्य करना, स्वच्छ त्वचा, चमकदार आंखे, काले घने बाल, संतुलित श्वास, भूख प्यास का संतुलित होना, गहरी नीद और शौच आदि क्रिया कलापों का ठीक होना भी उत्तम स्वास्थ्य के लिए जवाबदेह होती है।

स्वास्थ्य की परिभाषा

समस्त शारीरिक परेशानियों और कष्टोंए के अभाव में स्थिति वाली शरीर, मन और चेतना की अवस्था को स्वास्थ्य कहते है। इस अवस्था में हम अपने सभी शारीरिक और मानसिक कार्यों को समय पर तथा पूरी क्षमता के साथ पूर्ण कर सकते है। इसमें व्यक्ति की आनुवांशिक और वातावरणीय स्थिति के साथ उसकी दिनचर्या का संतुलन पूर्ण गुणवत्ता के साथ होता है।

इस संदर्भ में पहले बतायी गयी डब्ल्यू.एच.ओ. के द्वारा दिये गए पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है।

10.2 मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु

मानव स्वास्थ्य को मानव शरीरों के अंदर अथवा बाहर के वातावरण में नहीं बल्कि मानव के संपूर्ण वातावरण की पृष्ठभूमि में वैज्ञानिक रूप में आंका जा सकता है। मानव के संपूर्ण वातावरण को आमतौर पर भीतरी वातावरण और बाहरी वातावरण में विभाजित किया जा सकता है। मानव का जीवन इन दोनों वातावरणों का ही परिणाम है।

भीतरी वातावरण : यह मानव शरीर के अंदर वाला वातावरण है। इसमें शरीर की सामान्य संरचनाएं और कार्यप्रणाली तथा रोग के दौरान शरीर में जो परिवर्तन होते हैं वे सब सम्मिलित हैं। किसी रोग के ठीक हो जाने के उपरांत भी मानव की अच्छे स्तर वाली कार्यक्षमता के विकास और उसे बनाए रखने के लिए उसका ध्यान दिया जाना काफी आव श्यक होता है। सकारात्मक अथवा वांछित स्वास्थ्य की आधुनिक संकल्पना यही है।

बाहरी वातावरण - इसमें उन सारे पहलुओं को शामिल किया जा सकता हैं जो मानव शरीर के बाहर हैं और अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए इनका भी उतना ही महत्व है। जितना भीतरी वातावरण का। इसमें शंका की कोई गुंजाइश हीं होती है कि मानव के चारों और का वातावरण ही हमेशा आंतरिक वातावरण को प्रभावित करने के लिए कार्यरत रहता है। बाहरी वातावरण को भौतिक, जैविक तथा सामाजिक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

वैसे तो वातावारण का दायरा काफी व्यापक है लेकिन कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक है जिन पर नियंत्रण रखा जाना काफी आवश्यक है और इन्हीं चीजों का ख्याल रखते हुए कोई भी समाज स्वास्थ्य के इष्टकतमस्तर रोग के निम्नतम स्तर और आयु की अधिकतम पराकाष्ठाणतक पहुंचा सकता है।

भौतिक वातावरण - हवा, पानी और भौतिक वातावरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है। जीवधारी प्राणियों का अस्तित्व हवा के अभाव में तत्क्षण खतरे में पड़ सकता है। शरीर का लगभग 7 0 प्रतिशत अश पानी का होता है और शेष तत्वों की आपूर्ति भोजन द्वारा की जाती है। ये तीन अनिवार्य अवयव मानव के जीवन के लिए अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य के मानव इन तीन

आधारभूत अवयवों की गुणवत्ताकऔर मात्रा पर ही निर्भर करते हैं। इसी तरह व्यक्तियों, परिवारों अथवा समुदायों में रोग का स्तर भी इन महत्वपूर्ण पदार्थों के उतार - चढ़ाव पर ही निर्भर करता है।

हमारी आधुनिक जीवन शैली के कारण उत्पन्न हुए भयावह स्थितियों जैसे अत्यधिक प्रदूषण, शोर-शराबा, भागमभाग और इस प्रकार के अन्य भी कई कारकों ने उपरोक्त बताए गए तीनों अवयवों को काफी हद तक प्रदूषित कर लेने के लिए बाध्य है और यह रोगों की उत्पति का एक मूल कारण है। हम सबको पता है कि स्वास्थ्य का स्तर अथवा जीवन की अवधि, उसके लिए ली जाने वाली हवा, पिए जाने वाले पानी, खाए जाने वाले भोजन और उस स्वच्छ वातावरण पर निर्भर करती है। जिसमें मानव जीवनयापन कर रहा है।

सामाजिक वातावरण - समाज, संस्कश्ति, शिक्षा, सभ्यता, सामुदायिक संगठन, आर्थिक परिस्थितियों आदि ही मानव के सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है। आज रोगों की प्रवश्त्ति में सामाजिक वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रहन-सहन, शिक्षा व विकास काक स्तर और सामुदायिक स्वास्थ्य एजेन्सियों आदि के संगठन के रूप में स्वास्थ्य और रोग के स्तर सामाजिक पंरपरा से संगतता रखते हैं। स्वास्थ्य से जुड़े कई पहलू तकनीकी और वैज्ञानिक होने की अपेक्षा अधिकांशतया समाज शास्त्रीय व प्रशासन संबंधी है।

जैविक वातावरण : मनुष्य के चारों और जीवधारियों का संसार ही उसका जैविक वातावरण है। स्वास्थ्य की दृष्टि से इस वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण कारक सूक्ष्मजीव अथवा रोगाणु होता है। सभी संक्रामक रोग रोगाणुओं द्वारा ही जनित होते है। विकास क्रमों के परिणामस्वरूप ये रोगाणु मानव के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और अपने अस्तित्व के संघर्ष में परजीवी के रूप में वृद्धि करते हैं। रोग की प्रघटना को मानव ने मानव जाति और इन सूक्ष्म जीवों के बीच उत्तर जीविता के संघर्ष की प्रघटना कहा है।

शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ होना ही प्राकृतिक स्वास्थ्य है। इसकी पहचान हम निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए कर सकते हैं -

1 मानव शरीर के अंदर सभी क्रियाकलाप सामान्य हों।

2 अपने आपको सदा ऊर्जावान और सक्रिय महसूस करते हों।

3 वाणी में मिठास हों।

4 रचनात्मक और सामाजिक कार्यों को करने में अभिरूचि हो।

5 चेहरे पर हर हमेशा कान्ति का भाव हो।

6 आंखों मेंचमक एवं सत्यता और निर्भीकता का भाव हो।

7 मन हर हमेशा प्रसन्न एवं हृदय सदैव स्वर्गीय आनंद से ओतप्रोत रहता हो।

8 पर्याप्त मीठी और गहरी नींद आती हो।

9 नियत समय पर भोजन लेने की इच्छा हो।

10 पूरे दिन कार्य करने के दौरान उत्साह का अनुभव करते हो।

11 पेट छाती से कभी भी बड़ा ना हो।

12 मादक और उत्तेजक पदार्थों को लेने की बिल्कुल इच्छा न हो।

13 बिना थके लगातार कार्य करने की क्षमता हो।

14 हर अवस्था में चेहरे पर मुस्कान का भाव हो।

15 जीवन के प्रति पर्याप्त सकारात्मक दृष्टिकोण हो।

16 शौच खुलकर और नियमित रूप से आता हो।

17 प्रात: जगने पर तन-मन स्फूर्ति और उत्साह से भरा हो।

18 अपने को एक सच्चा मानव बनाने का प्रयास करते हुए अन्य सभी मानवों के प्रति आत्मवत व्यवहार हो।

19 जीवन में राम नाम की अवधारणा का समावेश किया हो।

20 भगवान द्वारा उपहार के रूप में दिए गए इस मानव जीवन को सफल बना रहे हो।

उपरोक्त बिन्दुओं को सुनिश्चित करने के लिए हमारे द्वारा स्वास्थ्य संबंधी निम्नलिखित प्रमुख कारकों की उपस्थिति अनिवार्य है।

सही जल आपूर्ति : पीने के लिए प्रयोग किए जाने वाले जल को सभी हानिकाकर अशुद्धियों से मुक्त होना चाहिए। क्योंकि जल में सबसे खतरनाक रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणु होते है। नदियों, कुएं आदि से प्राप्त होने वाले जल को पहले छानकर फिर क्लोरोनीकश्त करते हुए प्रयोग किया जाना चाहिए। पीने वाले पानी को हर हमेशा ढककर रखना चाहिए जो इसे संदूषित होने से बचाता है।

उचित भोजन पर्याप्त मात्रा में - हमें भोजन को हर हमेशा संयत मात्रा में लेना चाहिए और भोजन इस प्रकार का हो जिससे आवश्यक ऊर्जा प्राप्त हो, शरीर की वृद्धि हो, ऊतकों की मरम्मत हो तथा रोगों से प्रतिरक्षा हो। भोजन हर हमेशा प्रदूषण से मुक्त होना चाहिए।

विष्ठात और अन्य मल पदार्थों का स्वास्थ्यकर निपटान : मल पदार्थ से पानी, भोजन और भूमि का बिल्कुल ही संदूषित न होने देना निपटान का सबसे अच्छा तरीका है। इसका सबसे अच्छा उपाय संप्रवाहन या जल वाह प्रणाली का प्रबंध है। आर्थिक कारणों से ऐसा हर जगह किया जाना संभव नहीं है। लेकिन सस्ते और सेवा - निरपेक्ष प्रकार के स्वच्छ शौचालय तो बनाए ही जा सकते हैं।

इसी प्रकार स्वास्थ्योपयोगी वातावरण बनाने के लिए अन्य मल पदार्थों, कचरे, बेकार पानी आदि का स्वास्थ्यकर निपटान भी अत्यन्त आवश्यक है।

अच्छा आवास : यह अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति और रोगों से बचाव दोनों के लिए आवश्यक है। अच्छे घर में संवातन की सुचारू व्यवस्था होनी चाहिए और पूरे मकान में प्राकृतिक प्रकाश के यथेष्टं रूप से आने का प्रबंध हो। इसी तरह रसोई घर और स्नानघर अलग अलग और शौचालय स्वच्छ होने चाहिए।

अंत में यह कहना ज्यादती नहीं होगी कि हवा, पानी, भोजन, और मल पदार्थों के निपटान को दृष्टि में रखते हुए रोगों से बचा व दीर्घ जीवन तथा उत्तम स्वास्थ्य और शारीरिक क्षमता के लिए वातावरण

का स्वच्छता का उच्च स्तर नितांत आवश्यक है। उपरोक्त सभी स्थितियों का अभाव ही रोगों के प्रार्दुभाव का कारण होती है।

स्वास्थ्य की मौलिक आवश्यकताएं

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती है -

1 वायु

2 जल

3 आहार

4 सूर्य का प्रकाश

5 शारीरिक श्रम, (अवश्यकतानुसार शारीरिक व्यायाम)

6 चार प्रकार के आराम

1शारीरिक

2मानसिक

3 ऐन्द्रिम

4 आंतरिक

7 गहरी नींद

8 प्रसन्नता (उपयुक्त मानसिक स्थिति)

9 सामान्य आंतरिक गमहित का एक समान होना

10 आशावाद

11 मनोदृढता

उपरोक्त मौलिक आवश्यकताओं से जीवन शक्ति में वृद्धि होती है तथा सभी कार्य शारीरिक तथा मानसिक बाह्य या आंतरिक, ऐच्छिक या अनैच्छिक, स्वास्थ्यवर्द्धक या स्वास्थ्य नाशक सुचारू रूप से सकारात्मक बन जाते है।

रोग की आवधारणा -

प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों में रोगों के बाहरी कारणों को ढूंढा जाता है। जब हमारे शरीर के अंदर कार्य करने वाली प्रणाली शरीर में इक्ट्ठा होने वाले द्रव के निष्कातसर्नमें असमर्थ होती है तो रोग की स्थिति उत्पन्न हाती है। अनुचित अप्राकृतिक जीवन शैली तथा भोगवादी आहार के कारण हमारे शरीर में विषाक्त द्रव्य की मात्रा अधिक हो जाती है। इसी विषाक्त द्रव्य को शरीर को मुक्त करने के लिए शरीर द्वारा जो अतिरिक्त प्रयास किया जाता है यह स्थिति भी रोग को उत्पन्न करती है। रोग शरीर के कल्याण के लिए प्रकृति द्वारा चलायी जाने वाली एक विशेष प्रक्रिया का ही नाम है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बिना हमारे द्वारा बिना दबाए हुए शरीर की इस अवस्था में मदद करनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के अलावा अन्य सभी चिकित्सा प्रणालियों द्वारा रोगों का अस्तित्व माना जाता है। अन्य सभी विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों में बिमारियों के कुछ लक्षणों को देखते हुए बीमारियों का नाम दिया जाता है। उपचार प्रक्रिया के दौरान आकस्मिक लक्षण दिखने पर रोग का नाम भी बदल जाता है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रोगों को नाम दिया जाना न तो महत्वपूर्ण है और न ही यह उसका निदान है क्योंकि हम लक्षणों के आधार पर रोगों के मूल कारणों का पता नहीं लगा सकते है। अत: हम कह सकते है कि रोगों का उपचार बिना उसके मूल कारणों को जाने बिना अत्यधिक फायदेमंद नहीं है।

वर्तमान में उपयोग की जाने वाली तमाम निदान परीक्षणों की विधियाँ जैसे एण्डोस्कोपी, एक्स रे, अल्ट्रासाउण्ड, एम.आर.आई द्वारा निदान किए जाने पर कभी कभी रोगों का पूर्ण निदान नहीं होता है बल्कि इस दौरान प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न तंरगों के प्रभाव द्वारा शरीर में अन्य बीमारियों के होने की भी आशंका बनी रहती है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में इस प्रकार के किसी भी परीक्षण किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। बल्कि रोगी के द्वारा व्यक्तिगत रूप से खान-पान, रहन-सहन की आदतें तथा शारीरिक प्राण शक्ति एवं अवस्था के बारे में जानना जरूरी होता है। रोगी की जीवन शैली, दिनचर्या इत्यादि द्वारा स्वास्थ्य स्तर की जांच करना ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया जाने वाला वास्तविक निदान है। इस प्रक्रिया के माध्यम से रोगी को महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के स्वास्थ्य को पुन: प्राप्त कर सकता है। इस चिकित्सा प्रणाली के माध्यम से व्यक्तियों को निदान प्रदान करने के साथ उन्हें शिक्षित करने का भी कार्य किया जाता है।

रोग की परिभाषा और अर्थ -

पूर्ण स्वास्थ्य की अनुपस्थिति ही रोग है।

शरीर के अंदर एकत्र हुए विजातीय द्रव को प्रकृति द्वारा शरीर से निश्कासित किया जाने वाला प्रयास ही प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग की स्थिति कहलाती है।

अनुचित और अप्राकृतिक ढंग से लिए जाने आहार विहार द्वारा स्वास्थ्य को खोना ही रोग है।

मानव शरीर की पूर्ण कार्य प्रणाली में होने वाला किसी भी प्रकार के असंतुलन की स्थिति रोग कहलाती है।

जल चिकित्सा के महान प्रवर्तक लुई कुने ने अपनी पुस्तक में New Science of Healing रोगों की एकता व उपचार की एकता पर Unity of Diseases Unity of Treatment जोर देकर विश्लेषण किया है। डॉक्टर जोजफ ने लिखा Disease in man for simply the result of decomposition in one form or other मनुष्य में समस्त रोग एक या दूसरे रूप में सीधे तौर पर गंदगी का फल है।

डॉ. डाइओ लेविस एम.डी. ने “Weak Lungs” में लिखा है। Local disease is an impossibility every disease must be systematic before it can assume any local expansion स्थानीय रोग असंभावित हैं। प्रत्येक रोग स्थानीय रूप धारण करने के पूर्व संपूर्ण शरीर से अवश्य ही संबंधित रहेगा। शरीर में रोग उत्पन्न होने का कोई ना कोई कारण अवश्य होता है। रोग शब्द रूप धातु से निशपन्न है, जिसका अर्थ पीड़ा (दु:ख) कष्ट आदि से है। इसका विवरण अथर्ववेद में

मिलता है। शरीर के अंदर विष (विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना) जिसके लिए यक्ष्म शब्द का उल्लेख किया गया है।

''यक्षमाणां सर्वेशां विषं रिवोचमहम्''

बिना संपूर्ण शरीर के रोग ग्रसित हुए रोग का कोई भी लक्षण (स्थानीय रोग) प्रकट नहीं हो सकता जैसा कि डॉ. डरहन डनलयेन ने "Philosophy of the Bath" में कहा है। The Function of no one organ can be impaired without involving the whole system in the conrequence" किसी भी एक अवयव की क्रिया संपूर्ण शरीर के खराब हुए बिना दोषपूर्ण नहीं हो सकती। इससे भी रोग की एकता प्रकट होती है। सभी रोग के लक्षण स्थानीय नहीं संपूर्ण शरीर से संबंधित होते है।

कृमि रोग का मुख्य कारण है जो अन्न या जल के माध्यम से प्रविष्ट होकर शरीर को रोग ग्रस्त करता है। (अर्थर्ववेद 5/29 /6-6)

रोग का तीसरा कारण है - त्रिदोष (वात, पित्त, और कफ) जब तक शरीर स्वस्थ रहता है इसकी विषमता से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। (ऋग्वेद 1/3 4 /6)

यदि रोग की परिभाषा पर ध्यान देते हैं तो वह एक ऐसी दशा है जो जीवन को शक्ति, अवधि तथा आनंद इन सभी दष्टियोंसे सीमित कर देती है। रोग स्वास्थ्य की दशा से स्खलन है। व्यक्तियों का पारिस्थितिक अथवा प्राकृतिक संतुलन से वंचित होना रोगी दु:खी बनाता है। कई बार ऐसा होता है कि संतुलन की स्थिरता बहुत कम होती है। और निदान करने के साधन या उक्त परिवर्तन को लक्ष्य करने के जो साधन उपलब्ध होते हैं वे इतने अपर्याप्त होते हैं कि स्वास्थ्य में कमी को किसी रोग विशेष संज्ञा दे पाना असंभव होता है। विशिष्ट रोगों का निदान आमतौर से तभी हो पाता है जब वे मनुष्य के आंतरिक वातावरण में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न करते हैं जिनमें पीड़ा, ज्वर, दुर्बलता इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। ऐसी दशा में स्वास्थ्य का स्खलन बहुत व्यापक होता है और रोग के कारण जो भी हो लेकिन दिलचस्प तथ्य यह है कि बहुत से मामलों में रोग के द्वारा उत्पन्न परिवर्तन लक्षण प्रकट करने के योग्य प्रभावपूर्ण नहीं होते। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि इस प्रकार लक्षणहीन अथवा अतिस्वल्पै रोग का सरलता से निदान नहीं हो पाता। आयुर्विज्ञान और विशेष रूप से निरोधक आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक प्रगतियों के फलस्वरूप किसी प्रकार का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के बहुत पहले ही स्वास्थ्य से स्खलन के रूप में अधिकाधिक रोगों का निदान किया जा सकता है।

'रोग' का शाब्दिक अर्थ है आराम अथवा सुख का अभाव, जिससे यह तथ्य महत्वपूर्ण हो जाता है कि स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण अच्छा महसूस करना अथवा वातावरण के साथ पूर्ण संगति की अनुभूति करना है। यह अनुभूति अविश्वसनीय रूप से शरीर क्रिया तंत्रों के कार्य का परिणाम है। ये तंत्र भीतरी वातावरण का गतिविधि तथा कार्यक्षमता को सुरक्षित रखते हैं। बाहर के तत्व जो कि मूलत: शत्रु होते हैं, उनका सामना प्रभावपूर्ण तरीके से जिन संकुचित सीमाओं में आंतरिक समायोजन करने वाले तंत्र शरीर की सभी प्रणालियों के जरिए काम करते रहते हैं, खास तौर पर केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र तथा अंत: स्त्रावी ग्रंथियों द्वारा नि:स्त्ररवित हार्मोनों के जरिए काम करते हैं। जीव के जीवित रहने के लिए उसके शरीर के तापमान को एक संकुचित परिसर के बीच रहना चाहिए और यदि उसे

अधिकतम शरीर क्रियात्मक क्षमता के साथ अर्थात् पूर्णतम स्वास्थ्य की अवस्था में रहना हो तो उसके शरीर का तापमान और भी संकुचित परिसर के भीतर रहना चाहिए। इसी प्रकार शरीर के द्रव्यों की अम्लता, हृदय का निकास तथा विभिन्न अंगों में रक्त का प्रवाह, ऑक्सीजन की शरीर के भीतर प्रवेश करने वाली मात्रा तथा कार्बन डॉई ऑक्साइड का बाहर निकलना, आंतों क संचालन तथा शरीर के अन्य कार्यों का एक निश्चित परिसर के भीतर होते रहना आवश्यक है।

उपरोक्त तथ्यों से हम यह जान पाए है कि मनुष्य या कोई भी जीव जिस वातावरण में रहता है वह विरोधी वातावरण होता है। बाहरी वातावरण में ऐसे ढेर सारे प्रभाव मौजूद रहते है जो शरीर के आंतरिक नाजुक संतुलन और एकरूपता को नष्ट करने के लिए तैयार रहते हैं और यही रोगों का मूल कारण होता है । अत्यधिक या निम्न तापमान, उचित पोषक तत्वों की कमी और ऊर्जा प्रदान करने वाले ऐसे पदार्थों का अभाव जो शरीर के सामान्य क्रियाकलापों के लिए आवश्यक होते है, भौतिक और रासायनिक घटकों को ऐसा संयोग जो शरीर के लिए हानिकारक है, परजीवी सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म जीवाणुओं का संसार जो जीवित प्राणियों पर आक्रमण करते रहते हैं और अंत में अनिवार्य रूप से घटने वाली वह जैविक घटना जिसके अंतर्गत शरीर में व्ययजनन तथा वयोवृद्धि - ये सभी शरीर के संतुलन को बिगाड़ने के लिए बहुत हद तक उत्तरदायी होते हैं।

रोगी शरीर की पहचान के बिन्दु -

1 शरीर में शारीरिक क्रियाओं का असामान्य होना।

2 मीठी और गहरी नींद का न आना।

3 शौच क्रिया के दौरान मल का पतला या सख्त होना

4 भूख का अभाव

5 सिरदर्द का होना

6 जल्दी क्रोध का आना

7 किसी भी कार्य में अपने मन को स्थिर न कर पाना।

8 हर हमेशा आलस्य के भाव को महसूस करना।

9 किसी भी कार्य के दौरान जल्दी ही थकान को महसूस करना

10 हर हमेशा चिड़चिडेपन के स्वभाव को महसूस करना

11 हर हमेशा मसालेदार और चिकनाईवाले खाने की इच्छा होना

12 भोजन के उपरान्त भारीपन और भांति भांति की तकलीफें होना।

13 पेट का आकार छाती से बडा होना

14 शरीर और त्वचा से दुर्गन्ध आना।

15 सिर में बालों या गंजापन रोगी शरीर का परिचालक है।

16 वर्तमान समय में प्रचलित तरह तरह के मादक और नशीली दवाओं के सेवन का आदि होना।

17 शरीर के विभिन्न जगहों पर सृजन का होना

18 चहरे पर धब्बों, आखों के नीचे काले धब्बे इत्यादि का होना।

19 जीवन में सकारात्मकता का अभाव और नकारात्मक विचारों का प्रबल होना।

20 अन्य मनुष्यों, प्राणियों और प्रकृति के प्रति विध्वसात्मक कार्यों को किए जाने की प्रवृत्ति रखना।

रोग के प्रकार -

1 सहजन्य रोग - माता पिता के शुक्र दोष के द्वारा रोगों की उत्पत्ति पायी जाती है जिसमें मुख्य रूप से बबासीर, प्रमेह अथवा मधुमेह व कुष्ठ रोग इत्यादि पिता के अथवा माता के शुक्र में उत्पन्न हुए दोष के कारण पनपते हैं।

2 गर्भजन्य रोग - रोग के दौरान माता के द्वारा लिया गया मिथ्या आहार इसका मूल कारण होता है जिससे शिशु में कूबडापन या अपंगता के आने की संभावना होती है।

3 जातजन्म रोग - जन्म होने से पहले जब उपचार दिया जाता है उससे प्रभावित होकर पैदा होने वाले रोग को जातजन्य रोग कहते है।

4 पीड़ाजन्य रोग - चोट आदि से पैदा होने वाले रोग अपंगता, हड्डी का टूटना उसके द्वारा उत्पन्न अपंगता, क्रोध, शोक, भय व मानसिक रोग होते है।

5 कालजन्य रोग - इसमें ठंड (सर्दी) आदि के प्रभाव से अथवा अन्य दोष के प्रभाव से शरीर की रक्षा न होने पर उत्पन्न रोग

6 प्रभावजन्य रोग - गुरू या देवता की आज्ञा का उल्लंघन करने से उनके श्राप से उत्पन्न रोग।

7 स्वभावजन्य रोग - इसमें भूख, प्यास, ज्वर इत्यादि रोग स्वभावजन्य रोग होते है।

10.8 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि केवल रोग की अनुपस्थिति को ही स्वास्थ्य जान लेना कभी भी उचित नहीं है। स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु कुछ आचार-विचार नियम, सिद्धान्त व आदतें तथा जीवन शैली का उचित रूप से पालन करते हुए उनकी मौलिक आवश्यकताओं को भी भली भांति जान कर जीवन का अंग बना लेना आवश्यक है। अन्यथा हमें पैत्रिक, दैनिक व भौतिक रूप से आने वाले रोगों को भुगतने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इन रोगों के आने के बाद किस प्रकार के संयम व आदतों को अपना कर इनके आने वाले भयंकर परिणाम शरीर पर भुगतने से बचा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दुओं की भी चर्चा की गई जिनसे हमें ज्ञान हो जाता है कि हम रोग ग्रस्त हो चुके हैं। यह रोगग्रस्त अवस्था किस प्रकार हमारे शरीर में प्रवेश करती है तथा प्रवेश करने के पश्चात् हमारे शरीर को आतंकित कर उसे भयंकर पीडा प्रदान करता है।

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करें।

2 स्वास्थ्य के लक्षण एवं आवश्यक बिन्दुओं की व्याख्या करें।

3 रोग से आपका क्या अभिप्राय है? इसके लक्षणों को समझाइए।

4 स्वास्थ्य एवं रोग का आपस में क्या संबंध है? रोग के कारण का वर्णन करें।

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - राकेश जिन्दल
- प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र- आचार्य शेशाद्रि स्वामिनाथन्
- वृहद प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

इकाई -11

सामान्य योग अभ्यासक्रम (प्रोटोकाल)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस परिचय

11.4 योग विज्ञान का परिचय

11.5 सामान्य योग प्रोटोकाल भाग –I

11.6 सामान्य योग प्रोटोकाल भाग –II

11.7 सारांश

11.8 बोधात्मक प्रश्न

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 प्रस्तावना

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस परिचय

इस इकाई में आज के युगानुसार संदर्भ में ‘‘अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस’’ का भी सक्षिप्त स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णन किया जा रहा है। वास्तव में योग का कोई सीमायें नहीं होती। आज योग द्वारा चिकित्सा 21 जुन 2015 के बाद से को अन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस के साथ विश्व व्यापी बन गयी है। योग चिकित्सान्तर्गत् पंचयमों का पालन कर सम्पूर्ण विश्व में हम शान्ति का भाव उत्पन्न कर सकते है।

27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में 69 वें सत्र में भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्व समुदाय से अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आहान किया। 5 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 193 सदस्यों ने रिकार्ड 177 के समर्थक देशों के साथ 21 जून को ‘‘ अंतरराष्ट्रीय योग दिवस’’ मनाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित कर दिया। 21 जून वर्श का सबसे बड़ा दिन होता है, इसलिये विकास की दृष्टि से इसदिन को ‘‘योग दिवस’’ के रूप में माना है। भारत में प्रत्येक पंचायत स्तर से नीचे 21 जून 2015 को सामूहिक योगाभ्यास निर्धारित प्रोटोकॉल के अनुसार सम्पन्न हुये।

स्वास्थ्य से सम्बन्धी अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुये ‘‘केन्द्रिय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिशद ‘‘एवं भारत सरकार के ‘‘आयुश योग ‘‘ मंत्रालय के द्वारा विश्व में पहली बार 21 जून 2015 को अन्तराश्टीय योग दिवस को 33 मिनट के ‘‘कामन प्रोटोकालष् के तहत पहली बार मनाया गया।

इस सामूहिक योग अभ्यास की सार्वकालिक, सार्वभौमिक ऋग्वेद की प्रार्थना से इसे प्रारम्भ किया गया है। जो कि निम्न प्रकार से है-

ऊ संगच्छध्वं, संवदध्वं , सं वो मंनासि जानताम्।

दवा भागं यथा पूर्वे, सन्जानाना उपासते।। (ऋग्वेद)

अर्थात हम साथ गमन करें साथ -साथ चलें और

हम साथ -साथ एक सुर में बोले,

हम सब अपने मन कों समचित्त बनायें जैसा कि यह पूर्व में था।

आइये, ईष्वरत्व को अपनी अपनी उपासना में झलकनें दें।

षिथली करण के तीन अभ्यास - ग्रीवाचालन, कटि एवं घुटना संचालन

खड़े होकर किये जोन वाले पांच आसन है-

1. ताडासन - शरीर में स्थायित्व एवं लम्बाई बढ़ाने में सहायक
2. वृक्षासन - शरीर संतुलन, पैरों की मांसपेषियां मजबूत होती है।
3. पादहस्तासन - मेरूदण्ड लचीला, कब्ज नाशक, योनि दोष निवारण हेतु
4. अर्धचक्रासन - मेरूदण्ड लचीला, सवाईकल स्पोनोडोइटिस में श्रेष्ठ
5. त्रिकोणासन - पिण्डली, जंघा, कटि की मांसपेषिया सुदृढ़ होती है।

बैटकर किये जाने वाले चार आसन है।

1. भद्रासन - घूटनों का दर्द, मासिक धर्म के समय पेट दर्द से मुक्ति
2. अर्धउश्टासन - कब्ज, पीठ दर्द, मेरूदण्ड लचीला
3. शंषकासन - तनाव क्रोध एवं कब्ज को दूर कर पीठ दर्द से मुक्ति
4. वक्रासन - वक्रासन मधुमेह नाशक, लचीलापन बढ़ता ।

पेट के बल किराये जाने वाले तीन आसन है।

01- भुंजगासन - तनाव, पीठ दर्द, ‘‘वास दमा एवं मोटापा दूर करता है।

02- शलभासन - साइटिका, कमर के नीचे का दर्द दूर करता है।

03- मकरासन - तनाव, चिन्ता पीठ कमर का दर्द दूर करता है।

पीठ के बल किये जाने वाले आसन निम्न है।

01-सेतुबंधासन - अवसाद, चिन्ता, कब्ज आदि दूर होते है।

02- पवनमुक्तासन - कब्ज, अपानवायु ठीक करता है।

03- शवासन - तनाव से मुक्त, मन एवं शरीर को विश्राम

कपालभांतिक्रिया नाडी शोधन या अनुलोभ विलोम एवं भा्रमरी प्राणायाम , शाम्भवी मुद्रा में ध्यान, संकल्प एवं विश्व के कल्याण हेतु शांतिपाठ करना आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस उपयोगिता निम्नानुसार है-

1. योग के स्वास्थ्य
2. सामंजस्य एवं शान्ति के लिये योग करना

3. सम्भावनाओं को सम्भव करने के लिये योग
4. प्रकृति एवं मानव में सामजस्य करने के लिये योग
5. सम्पूर्ण विश्व का कल्याण एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु योग करना।
6. बीमारियों की रोकथाम हेतु योग करना।
7. स्वास्थ्य के संरक्षण हेतु योग।
8. पूर्ण आरोग्यता प्राप्ति के लिये योग
9. पूर्ण स्वतंत्रता हेतु योग
10. पूर्ण स्वाध्याय एवं स्वास्थ्य हेतु योग
11. पूर्ण स्वतंत्रता एवं सांसरिक द्वन्दो में समाजस्थ्य करने हेतु योग
12. स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिये योग
13. योग द्वारा

योग के आधार चार स्तम्भ चार प्रकार के है-

(i) शरीर (कर्मयोग)
(ii) मन (ज्ञानयोग)
(iii) भावना (भक्ति योग)
(iv) उर्जा क्रिया योग
(v) इन चारों स्त्रों पर योग का प्रभाव पडता है।

भारतीय ऋषि मुनियों ने सतत तपस्या रुपी साधना करते हुये जीवन के वास्तविक आनन्द-सुख एवं शांति की प्राप्ति के लिए दीर्घ कालीन सतत अभ्यास के उपरान्त योग का अविष्कार किया हैं। आज के भौतिकवादी यांत्रिक युग में आहार की अनियमितता, शुद्ध प्राण वायु की कमी, शारीरिक व्यायाम की कमी तथा सदैव तनाव एवं चिन्ताग्रस्त प्रदूषित दिनचर्या के कारण नित नवीन रोग पैर पसारते हुये वैशिक जगत में मानव को अशांत एवं रोग ग्रस्त कर रहे हैं। ऐसे में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूपेण पूर्व स्वास्थ्य की प्राप्ति में योग की सम्पूर्ण विश्व में महती आवश्यकता हैं। योग हमारे भारतीय संस्कृति की सम्पूर्ण विश्व को " महान मानवतावादी " अर्थात् " वसुधैव कुटुम्बकम् " की भावना रुपी देन हैं। प्रस्तुत इकाई में " सर्वेभवन्तु सुखिन: " की भावना से " परस्पर सामंजस्य एवं शांति के लिए " अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस जो कि 21 जून को एक

साथ सम्पूर्ण विश्व में मनाया जाता हैं उसके सामान्य योग अभ्यास क्रम (प्रोटोकाल) का आयुष मंत्रालय (भारत सरकार) के अनुसार वर्णन किया जा रहा हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम निम्न विषयों का अध्ययन करेंगे :-

(i) योग परिचय, इतिहास, विकास, एवं आधारभूत तथ्य,

(ii) पारम्परिक योग, सामान्य दिशा - निर्देश, सात्त्विक विचार (आहार)

(iii) योग का वैज्ञानिक आधार

(iv) प्रार्थना एवं शिथिलीकरण अभ्यास

(v) बीस योगासन

(vi) कपाल भाति

(vii) प्राणायाम

(viii) ध्यान, संकल्प एवं शांति पाठ

11.3 अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस परिचय एवं विवेचन

सामान्य योग अभ्यासक्रम (प्रोटोकॉल)

परिचय

27 सितम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा (यू एन जी ए) के 69 वें सत्र को संबोधित करते हुए भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्व समुदाय से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आह्वान किया ।

श्री मोदी ने कहा , " योग प्राचीन भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की अमूल्य देन है । योग अभ्यास शरीर एवं मन; विचार एवं कर्म; आत्मसंयम एवं पूर्णता की एकात्मकता तथा मानव एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करता हैं । यह स्वास्थ्य एवं कल्याण का पूर्णतावादी दृष्टिकोण हैं । योग मात्र

व्यायाम नहीं है, बल्कि स्वयं के साथ एकत्व खोजने का भाव है। योग हमारी जीवन शैली में परिवर्तन लाकर हमारे अन्दर जागरूकता उत्पन करता है तथा प्राकृतिक परिवर्तनों से शरीर में होने वाले बदलावों को सहन करने में सहायक हो सकता है। आइए हम सब मिलकर योग को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में स्वीकार करने की दिशा में कार्य करे। ”

11 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 177 सह-समर्थक देशों के साथ 21 जून को “अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस” मानाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित किया। अपने संकल्प में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया की योग स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पूर्णतावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है। योग विश्व की जनसंख्या के स्वास्थ्य के लिए तथा उनके लाभ के लिए विस्तृत रूप में कार्य करेगा। योग जीवन के सभी पहलुओं में सामंजस्य बैठाता है और इसीलिए बीमारी रोकथाम, स्वास्थ्य संवर्द्धन और जीवन शैली-संबंधी कई विकारों के प्रबंधन के लिए जाना जाता है।

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

आयुष मंत्रालय ने 21 जून , 2015 को राजपथ ,नई दिल्ली में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का सफल आयोजन किया। दो गिनीज विश्व रिकॉर्ड–35,985 प्रतिभगियो के साथ सबसे बड़ा योग सत्र तथा अभ्यास सत्र में सर्वाधिक देशो (84) के नागरिकों की प्रतिभागिता बने। विज्ञान भवन में 21 एवं 22 जून , 2015 को “ सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए योग ” विषय पर दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई जिसमे भारत तथा विदेश से लगभग 1300 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। पहली बार आयोजित इस अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस में भारत और दुनिया के लाखों लाख लोगों ने भागीदारी की।

जनसामान्य के बीच योग के प्रति जागरूकता का प्रसार करने हेतु सामान्य योग शिष्टाचार एवं योग की डीवीडी तैयार की गई।

आयुष मंत्रालय और विभिन्न योग संस्थानों व संगठनों के साथ मिलकर विदेश मंत्रालय द्वारा भारत के बाहर युद्धग्रस्त यमन के अतिरिक्त सभी यूएनजीए सदस्य देशो में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन किया गया।

इस इकाई का उद्देश्य व्यक्ति विशेष और समाज में रहने वाले सभी लोगों के लिए योग और यौगिक क्रियाओं का विस्तृत सारगर्भित ज्ञान प्रस्तुत करना है । सामान्य योग अभ्यासक्रम का यह वर्तमान संस्करण पिछले वर्ष के योग अभ्यासक्रम का ही संवार्धित संस्करण है । यौगिक सूक्ष्म व्यायाम, योगासन और प्रणायाम जेसे कुछ महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रियाओं को इस द्वितीय परिवर्तित संस्करण में जोड़ा गया हैं। प्रमुख योग संस्थानों में संस्थानिक योगाभ्यास के रूप में संकल्प से पूर्व 45 मिनट के सामान्य योग अभ्यासक्रम के अतिरिक्त 15 मिनट के विशेष यौगिक अभ्यास प्राणायाम,योग निंद्रा, ध्यान, सत्संग इत्यादि का प्रावधान किया गया है। इस तरह आईडीवाई में योगभ्यास की कुल समयावधि 1 घंटे की हैं।

11.4 योग विज्ञान का परिचय

(i) योग क्या है ?

सार रूप में कहें तो योग आध्यात्मिक अनुशासन एवं अत्यंत सूक्ष्म विज्ञानं पर आधरित ज्ञान है जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह स्वस्थ जीवन की कला एवं विज्ञान हैं। संस्कृत वाङ्मय के अनुसार योग शब्द युज् धातु मे घञ्प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह तीन अर्थो में प्रयुक्त होता है। (1)- युज् समाधौ = समाधि (2)- युजिर योगे = जोड़ (3)-युज् संयमने = सामंजस्य। यौगिक ग्रंथो के अनुसार , योग अभ्यास व्यक्तिगत चेतनता को सार्वभौमिक चेतनता के साथ एकाकार कर देता है। आधुनिक वैज्ञानि कों के अनुसार ब्रहमांड में जो कुछ भी है वह परमाणु का प्रकटीकरण मात्र है। जिसने योग में इस अस्तित्त्व के एकत्त्व का अनुभव कर लिया है,उसे योगी कहा जाता है, योगी पूर्ण सवतंत्रता प्राप्त कर मुक्तावस्था को प्राप्त करता है। इसे ही मुक्ति ,निर्वाण ,कैवल्य या मोक्ष कहा जाता है।

"योग" का प्रयोग आंतरिक विज्ञान के रूप में भी किया जाता है, जो विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं का सम्मिलन है, जिसके माध्यम से मनुष्य शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य स्थापित कर आत्म साक्षात्कार करता है। योग अभ्यास (साधना) का उद्देश्य सभी त्रिविध प्रकार के दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करना है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता तथा स्वास्थ्य,प्रसन्ता एवं सामंजस्य का अनुभव कर सकें।

(ii) योग का संक्षिप्त इतिहास एवं विकास

योग विद्या का उद्भव हजारों वर्ष प्राचीन है। श्रुति परंपरा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या के प्रथम आदि गुरु ,योगी या आदियोगी है। हजारों-हज़ार वर्ष पूर्व हिमालय में कांति सरोवर झील के किनारे आदियोगी ने योग का गूढ़ ज्ञान पौराणिक सप्त ऋषियों को दिया था। इन सप्त ऋषियों ने इस अत्यंत महत्वपूर्ण योग विद्या को एशिया, मध्यपूर्व, उत्तरी अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका सहित विश्व के अलग-अलग भागो में प्रसारित किया। आधुनिक विद्वान सम्पूर्ण पृथ्वी की प्राचीन संस्कृतियों में एक समानता मिलने पर अचंभित है, यह एक अत्यंत रोचक तथ्य है।वह भारत भूमि ही है,जहां पर योग की विधा पूरी तरह अभिव्यक्त हुई। भारतीय उपमहाद्वीपो में भ्रमण करनेवालेसप्त ऋषियों एवं अगस्त्य मुनि ने इस योग संस्कृति को जीवन के रूप में विश्व के प्रत्येक भाग में प्रसारित किया।

योग का व्यापक स्वरूप तथा उसका परिणाम सिंधु एवं सरस्वती नदी घाटी सभ्यताओं 2700 ई. पू.- की अमर संस्कृति का प्रतिफलन माना जाता है। योग ने मानवता के मूर्त और आध्यात्मिक दोनों रूपों को महत्वपूर्ण बनाकर स्वयं को सिद्ध किया है। सिंधु सरस्वती घाटी सभ्यता में योग साधना करती अनेक आकृतियों के साथ प्राप्त ढ़ेरों मुहरें एवं जीवाश्म अवशेष इस बात के प्रमाण है कि प्राचीन भारत में योग का अस्तित्व था। सरस्वती घाटी सभ्यता में प्राप्त देवी और देवताओ कि मूर्तिया एवं मुहरे तंत्र योग का सन्देश देती है। वेदिक एवं उपनिषद परम्परा, शैव, वैष्णव तथा तांत्रिक

परम्परा, भारतीय दर्शन, रामायण एवं श्रीमद् भगवद्गीता समेत महाभारत जैसे महाकाव्यों, बौद्ध एवं जैन परम्परा के साथ साथ विश्व की लोक विरासत में भी योग मिलता है।योग का अभ्यास पूर्व वेदिक काल में भी किया जाता था। महर्षि पतंजलि में उस समय के प्रचलित प्राचीन योग अभ्या सों को व्यवस्थित व वर्गीकृत किया और उनके निहितार्थ और इससे सम्बंधित ज्ञान को पांतजलयोगसूत्र नमक ग्रन्थ में क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित किया।

पतंजलि के बाद भी अनेक ऋषियों एवं योग आचार्यो ने योग अभ्यासो और यौगिक साहित्य के माध्यम से इस क्षेत्र के संरक्षण और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रतिष्ठित योग आचार्यों की शिक्षाओं के माध्यम से योग प्राचीन काल से लेकर आज सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुआ। आज सभी को योग अभ्यास से व्याधि यों के रोकथाम, अच्छी देखभाल एवं स्वास्थ्य लाभ मिलने का दृढ़ विश्वास है। सम्पूर्ण विश्व में ला खों लोग योग अभ्या सों से लाभान्वित हो रहे हैं। योग दिन-प्रतिदिन विकसित और समृद्ध होता जा रहा है। आज के समय में यौगिक अभ्यास अधिक महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है ।

(iii) योग के आधारभूत तथ्य

व्यक्ति की शारीरिक क्षमता , उसके मन व भावनाएँ तथा उर्जा के स्तर के अनुरूप योग कार्य करता है। इसे व्यापक रूप से चार वर्गों में विभाजित किया गया है: कर्मयोग में हम शरीर का प्रयोग करते है: ज्ञानयोग में हम मन का प्रयोग करते है; भक्तियोग में हम भावना का प्रयोग करते है और क्रियायोग में हम उर्जा का प्रयोग करते है। योग की जिस भी प्रणाली का हम अभ्यास करते है, वह एक दूसरे से आपस में कई स्तरों पर मिली – जुली हुई होती है।

प्रत्येक व्यक्ति इन चारो योग कारकों का एक अद्वितीय संयोग है। केवल एक समर्थ गुरु (अध्यापक) ही योग साधक को उसके आवश्यकतानुसार आधारभूत योग सिद्धांतों का सही संयोजन करा सकता है। "योग की सभी प्राचीन व्याख्याओ में इस विषय पर अधिक बल दिया गया है कि समर्थ गुरु के मार्गदर्शन में अभ्यास करना अत्यंत आवश्यक है।"

(iv) पारंपरिक योग सम्प्रदाय

योग के अलग-अलग सम्प्रदायों , परम्पराओ ,दर्शनों ,धर्मो एवं गुरु-शिष्य परम्पराओ के चलते भिन्न – भिन्न पारंपरिक पाठशालाओ का मार्ग प्रशस्त हुआ। इनमे ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, पातंजलयोग, कुंडलिनीयोग, हठयोग, ध्यानयोग, मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, जैनयोग, बौद्धयोग आदि सम्मिलित है। प्रत्येक सम्प्रदायों के अपने अलग दृष्टिकोण और अभ्यासक्रम है जिसके माध्यम से प्रत्येक योग सम्प्रदायों ने योग के मूल उदेश्योऔर लक्ष्यों तक पहुचने में सफलता प्राप्त की है।

(v) स्वास्थ्य और कल्याण के लिए योगिक अभ्यास

योग साधनाओं में यम, नियम ,आसन , प्राणायाम ,प्रत्याहार , धारणा , ध्यान ,समाधि ,बंध एवं मुद्रा ,षट्कर्म ,युक्ताहार ,मन्त्र – जप ,युक्त्कर्म आदि साधनाओं का अभ्यास सबसे अधिक किया जाता है।

यम प्रतिरोधक एवं नियम अनुपालनीय है। इन्हें योग अभ्यासो के लिए पूर्व अपेक्षित एवं अनिवार्य मन गया है। आसन का अभ्यास शरीर एवं मन में स्थायि   त्तव लेन में सक्षम है, कुर्या त् तदासनम् स्थैर्यम् अर्था त् आसन का अभ्यास महत्त्वपूर्ण समय सीमा तक मनोदैहिक विधि पूर्वक अलग – अलग करने से स्वयं के अस्ति तत्त्व के प्रति दैहिक स्थिति एवं स्थिर जागरूकता बनाये रखने की योग्यता प्रदान करता है।

प्राणायाम श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया का सुव्यवस्ति एवं नियमित अभ्यास है। यह श्वसन प्रक्रिया के प्रति जागरूकता उत्पन करने एवं उसके पश्चात मन के प्रति सजगकता उत्पन करने तथा मन पर नियत्रंण स्थापित करने में सहायता करता है। अभ्यास की प्रारंभिक अवस्था में श्वास –प्रश्वासप्रक्रिया को सजगकता पूर्वक किया जाता है। बाद में यह घटना नियमित रूप से नियंत्रित एवं निर्देशित प्रक्रिया के माध्यम से नियमित हो जाती है। प्राणायाम का अभ्यास नासिका ,मुख एवं शरीर के अन्य छिद्रों तथा शरीर के आंतरिक एवं बाहरी मार्गो तक जागरूकता बढ़ाता है। प्राणायाम अभ्यास के दोरान नियमित ,नियंत्रित और निरीक्षित प्रक्रिया द्वारा श्वास को शरीर के अंदर रोकने की अवस्था कुम्भक तथा नियमित ,नियंत्रित और निरीक्षित प्रक्रिया द्वारा श्वास को शरीर के बाहर छोडना रेचक कहलाता है।

प्रत्याहार के अभ्यास से व्यक्ति अपनी इन्द्रियो के माध्यम से सांसारिक विषय का त्याग कर अपने मन तथा चेतन्य केन्द्र के एकीकरण का प्रयास करता है। धारणा का अभ्यास मनोयोग के व्यापक आधार क्षेत्र के एकीकरण का प्रयास करता हैं, यह एकीकरण बाद में ध्यान में परिवर्तित हो जाता है। इसी ध्यान में चिंतन (शरीर एवं मन के भीतर केंद्रित ध्यान) एवं एकीकरण रहने पर कुछ समय पश्चात यह समाधि की अवस्था में परिवर्तित हो जाता है।

बंद एवं मुद्रा ऐसे योग अभ्यास है, जो प्राणायाम से सम्बंधित है। ये उच्च यौगिक अभ्यास के प्रसिद्ध रूप माने जाते हैं, जो मुख्य रूप से नियंत्रित श्वसन के साथ विशेष शारीरिक बंधो एवं विभिन्न मुद्राओ के द्वारा किये जाते है। यही अभ्यास आगे चलकर मन पर नियंत्रण स्थापित करता है और उच्चतर यौगिक सिद्धियो के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। हालांकि , ध्यान का अभ्यास , जो व्यक्ति को आत्मबोध एवं श्रेष्ठता की ओर ले जाता है, योग साधना पद्धति का सार मन गया है।

षट्कर्म शरीर एवं मन शोधन का सुव्यवस्ति एवं नियमित अभ्यास है जो शरीर में एकत्रित हुए विष को हटाने में सहायता प्रदान करता है। युक्ताहार स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त सुव्यवस्ति एवं नियमित भोजन का समर्थन करता है।

मन्त्र जापः मन्त्रों का चिकित्सकीय पद्धति से उच्चारण ही जाप अथवा देवीय नाम कहलाता है। मन्त्र जाप सकारात्मक मानसिक उर्जा की सृष्टि करता है जो धीरे धीरे तनाव से बाहर आने में सहायता करता है।

युक्त – कर्म स्वास्थ्य जीवन के लिए सम्यक (उचित) कर्म की प्रेरणा देता है।

(vi) योगाभ्यास के लिए सामान्य दिशा निर्देश

योग्यभ्यास करते समय योग के अभ्यासी को नीचे दिए गए दिशा निर्देशों एवं सिद्धांतों का पालन अवश्य करना चाहिए :

(अ) अभ्यास से पूर्व

- शौच - शौच का अर्थ है शोधन , यह योग अभ्यास के लिए एक महत्त्वपूर्ण एवं पूर्व अपेक्षित क्रिया है। इसके अन्तर्गत आसपास का वातावरण , शरीर एवं मन की शुद्धि की जाती है।
- योग अभ्यास शांत वातावरण में आराम के साथ शरीर एवं मन को शिथिल करके किया जाना चाहिए है।
- योग अभ्यास खाली पेट अथवा अल्पाहार लेकर करना चाहिए। यदि अभ्यास के समय कमजोरी महसूस हो तो गुनगुने पानी में थोड़ी सी शहद मिलाकर लेना चाहिए।
- योग अभ्यास मल एवं मूत्र का विसर्जन करने के उपरांत प्रारंभ करना चाहिए।
- अभ्यास करने के लिए चटाई, दरी ,कम्बल अथवा योग मैट का प्रयोग करना चाहिए।
- अभ्यास करते समय शरीर की गतिविधि आसानी से हो, इसके लिए सूती के हल्के और आरामदायक वस्त्र पहनना चाहिए।
- थकावट, बीमारी ,जल्दबाजी एवं तनाव की स्थिति में योग नहीं करना चाहिए।
- यदि पुराने रोग, पीड़ा एवं ह्रदय सम्बन्धी समस्याएं हो तो ऐसी स्थिति में योग अभ्यास शुरू करने के पूर्व चिकित्सक अथवा योग विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।
- गर्भावस्था एवं मासिक धर्म के समय योग करने से पहले योग विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।

(ब) अभ्यास के समय

- अभ्यास सत्र प्रार्थना अथवा स्तुति से प्रारंभ करना चाहिए क्योंकि प्रार्थना अथवा स्तुति मन एवं मस्तिष्क को विश्रांति प्रदान करने के लिए शांत वातावरण निर्मित करते है।
- योग अभ्यास आरामदायक स्थिति में शरीर श्वास-प्रश्वास की सजगकता के साथ धीरे – धीरे प्रारंभ करना चाहिए।
- अभ्यास के समय श्वास – प्रश्वास की गति नहीं रोकनी चाहिए, जब तक कि आपको ऐसा करने के लिए विशेष रूप से कहा न जाये।
- श्वास – प्रश्वास सदैव नासारंध्रो से ही लेना चाहिए, जब तक कि आपको अन्य विधि से श्वास प्रश्वास लेने के लिए न कहा जाए।
- शरीर को सख्त नहीं करे अथवा शरीर को किसी भी प्रकार के झटके से बचाएं।
- अभ्यास के समय शरीर को शिथिल रखे,शरीर को किसी भी प्रकार के झटके से बचाएं।

- अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के अनुसार ही योग अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास के अच्छे परिणाम आने में कुछ समय लगता है, इसीलिए लगातार और नियमित अभ्यास बहुत आवश्यक है।
- प्रत्येक योग अभ्यास के लिए ध्यातव्य निर्देश एवं सावधानियां तथा सीमाएं होती है। ऐसे ध्यातव्य निर्देशों को सदैव अपने मन में रखना चाहिए।
- योग सत्र का समापन सदैव ध्यान एवं गहन मौन तथा शांति पाठ से करना चाहिए।

(स) अभ्यास के बाद

- अभ्यास के 20-30मिनट के बाद स्नान करना चाहिए।
- अभ्यास के 20-30 मिनट बाद ही आहार ग्रहण करना चाहिए, उससे पहले नहीं।

(vii) सात्विक विचार के लिए भोजन

आहार सम्बन्धी दिशा निर्देश – सुनिश्चित क रें कि अभ्यास के लिए शरीर एवं मन ठीक प्रकार से तैयार है। अभ्यास के बाद आमतौर पर शाकाहारी आहार ग्रहण करना श्रेयस्कर मन जाता है। 30 वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्ति के लिए बीमारी या अत्यधिक शरीरिक कार्य अथवा श्रम की स्थिति को छोडकर एक दिन में दो बार भोजन ग्रहण करना पर्याप्त होता है।

(viii) योग किस प्रकार सहायता कर सकता है ?

योग निश्चित रूप से सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति प्रदान करने का साधन है। वर्तमान समय में हुए चिकित्सा शोधों ने योग से होने वाले कई शारीरिक और मानसिक लाभों के रहस्य प्रकट किये है। यही नहीं लाखों योग अभ्यासियो कें अनुभव के आधार पर इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि योग किस प्रकार सहायता करता है।

- योग शारीरिक स्वास्थ्य , स्नायुतंत्र एवं कंकाल तंत्र को सुचारू रूप से कार्य करने और हृदय तथा नाडियों के स्वास्थ्य के लिए हितकर अभ्यास है।
- यह मधुमेह, श्वसन संबंधी विकार, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप और जीवन शैली सम्बन्धी कई विकारों के प्रबंधन में लाभकारी है।
- योग अवसाद, थकान, चिंता संबंधी विकार और तनाव को कम करने में सहायक है।
- योग मासिक धर्म को नियमित बनाता है।
  संक्षेप में यदि यह कहा जाए कि योग शरीर और मन के निर्माण कि ऐसी प्रक्रिया है, जो समृद्ध और परिपूर्ण जीवन की उन्नति का मार्ग है, न कि जीवन के अवरोध का।

11.5 सामान्य योग प्रोटोकाल भाग – I

1. प्रार्थना

योग का अभ्यास प्रार्थना के मनोभाव से शुरू करना चाहिए। ऐसा करने से योग अभ्यासियो को अधिकाधिक लाभ होगा।

ॐ संगच्छध्वं संवद्ध्वम
सं वो म नांसीजानताम्
देवा भागं यथा पूर् वे
सञ्जानाना उपासते ॥ (ऋग्वेद 10.191.2)

ॐ **Samgacchadhvam samvadadhvam**
sam vo manāmsi jānatām
devā bhāgam yathā pūrve
sanjānānā upāsate ॥

हम सभी प्रेम से मिलकर चलें , मिलकर बोलें और सभी ज्ञानी बनें। अपने पूर्वजों कि भांति हम सभी कर्तव्यों का पालन करें।\

1 सदलज / चलन क्रियाएँ / शिथिलीकरण अभ्यास

सदलज / चलन क्रियाएँ / शिथिलीकरण के अभ्यास शरीर में सूक्ष्म संचरण बढाने में सहायता प्रदान करते हैं। इस अभ्यास को खड़े या बैठने कि स्थिति में किया जा सकता है।

(क) ग्रीवा चालन

शारीरिक स्थिति : समस्थिति

अभ्यास विधि

प्रथम चरण : (आगे तथा पीछे की ओर झुकना)

- पेरों के बल आराम से खड़े हो जाए।
- हाथों को शरीर के बगल में सीधा रखे।
- यह अभ्यास समस्थिति है। इसे ताड़ासन भी कहते है।
- अभ्यास के समय हाथों को कमर पर रखें।
- श्वास को बाहर निकालते हुए सिर को धीरे – धीरे आगे की ओर झुकाएं और ठुड्डी को वक्ष पर स्पर्श करने की कोशिश करें।
- श्वास को अंदर लेते हुए सिर को जितना पीछे ले जा सकते हों, पीछे ले जाएँ।
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ। इस विधि को और दो बार दोहराएं।

द्वितीय चरण : (दाई और बाईं ओर झुकना)

- श्वास को बाहर छोड़ते हुए , सिर को धीरे – धीरे दाईं ओर झुकाएं; कान को कंधे के जितना नजदीक लाना संभव हो , लाएं । इस बात का ध्यान र खें कि कंधे ऊपर की ओर अधिक नहीं उठे होने चाहिए ।
- श्वास को अंदर ग्रहण करते हुए , सिर को सामान्य स्थिति में लाएं ।
- इसी प्रकार , श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को बायीं तरफ झुकाएं ।
- श्वास को अंदर खींचे और सिर को सामान्य स्थिति में लाएं ।
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ । इस विधि को और दो बार दोहराएं।

तृतीय चरण (दाएं एवं बाएं घुमाना) :

- सिर को सीधा रखें ।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए ,सिर को आराम से दांई ओर घुमाएं, जिससे ठुड्डी और कंधे एक बराबर में हो जाएँ ।
- श्वास को अंदर लेते हुए, सिर को सामान्य स्थिति में लाएं ।
- इसी प्रकार , श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को बायीं ओर घुमाएं ।
- श्वास को अंदर लेते हुए सिर को सामान्य स्थिति में लाएं ।
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ । इस विधि को और दो बार दोहराएं।

चतुर्थ चरण : ग्रीवा घुमाना

- श्वास छोड़ते हुए सिर को आगे की ओर झुकाएंऔर ठुड्डी को वक्ष पर स्पर्श करने की कोशिश करें ।
- श्वास को अंदर लेते हुए सिर को धीरे – धीरे घड़ी की सुई की दिशा में घुमाएं तथा वापस लाते समय श्वास को बाहर छोड़े।
- इस प्रकार ग्रीवा एक बार पूरी तरह घुमाएं।
- तत्पश्चात ग्रीवा को घड़ी की विपरीत दिशा में घुमाएं।
- श्वास को अंदर लेते हुए ग्रीवा को पीछे ले जाए और श्वास को छोड़ते समय वापस ले आएं ।
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ । इस विधि को और दो बार दोहराएं।

ध्यातव्य :

- ग्रीवा को जितना संभव हो , उतना ही घुमाएं अधिक नही खींचना चाहिए ।
- कंधों को शिथिल और स्थिर रखना चाहिए ।

- ग्रीवा के आसपास खिंचाव महसूस करें और ग्रीवा के जोड़ों व मांसपेशियों को शिथिल करें।
- इसका अभ्यास कुर्सी पर बैठकर भी किया जा सकता है।
- जिन लोगों को ग्रीवा में पीड़ा हो , वे यह अभ्यास धीरे – धीरे करे , खासकर वे सिर को उतना ही पीछे ले जावें , जितना आरामदायक हो ।
- अधिक उम्र के लो गों और सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस तथा उच्च रक्तचाप की व्याधि से ग्रसित व्यक्ति को इस अभ्यास से बचना चाहिए ।

(ख) स्कंध संचालन :-

स्थिति : समस्थिति (सजग स्थिति)

चरण (क) स्कंध खिंचाव

अभ्यास विधि

- पैर परस्पर मिले हुए हो , पैर से सिर तक का हिस्सा सरलता से सीधा रखते हुए खड़े रहें ।
- बगल से अपनी दोनों भुजा ओं को सिर से ऊपर उठायें ,हथेलियों ऊर्ध्व दिशा में हों । इसी क्रिया को नीचे की तरफ दोहराएँ ।
- जब हाथ को सिर से ऊपर ले जाएं तो ध्यान रखें कि वे सिर से स्पर्श न करे , इसी प्रकार जब हाथों को नीचे लेकर आएं तो जांघों को वे स्पर्श न करें ।
- उंगलियों को मिलाते हुए दोनों हथेलियों को पूरी तरह खोलदें ।

चरण (ख) स्कंध चक्र (स्कंध चालन)

- सीधे खड़े हो जाएं ।
- बाएं हाथ की उँगलियों को बाएं कंधे पर रखे और उसी तरह दाएं हाथ की उँगलियों को दाएं कंधे पर रखे ।
- दोनों कोहनियों को पूरी तरह चक्राकार घुमाएं ।
- आगे की ओर कोहनियों को घुमाते हुए वक्ष स्थल के सामने स्पर्श करने की कोशिश करे और जब कोहनियों को विपरीत क्रम में घुमाएं तो उन्हें कानों से स्पर्श कराएँ ।
- विपरीत दिशा में भुजाओं को खींचकर घुमाएं और कोशिश करे कि इस दौरान भुजाएं शरीर को स्पर्श करे ।
- इस क्रिया को दाएं से बाएं (घड़ी कि सुई की दिशा में) पांच बार दोहराएँ ।
- इस क्रिया को बाएं से दाएं (घड़ी कि सुई की विपरीत दिशा में) पांच बार दोहराएँ ।

लाभ :

- इस क्रिया के अभ्यास से हड्डियां , मांसपेशियां और स्कंध क्षेत्र की तंत्रिकाएं स्वस्थ रहती है।
- यह योगासन गर्दन की रीढ़ की हड्डी की अपकर्षक (सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस) बीमारी को दूर करता है और स्कंध संचालन में आने वाली रूकावटो से छुटकारा दिलाता है।

(ग) कटि चालन

कटि चालन (कटिशक्ति विकासक)

स्थिति : समस्थिति (सजग स्थिति)

अभ्यास विधि

- दोनों पेरों के बीच 2 से 3 फीट की दूरी रखें।
- दोनों भुजाओ को वक्ष तक उठायें। इस समय दोनों हथेलियाँ समानांतर स्थिति में एक – दूसरे के आमने – सामने हों।
- श्वास को बाहर छोड़ते समय शरीर को बायीं ओर घुमाएं, जिससे कि दायीं हथेली बाएं कंधे को छुए। श्वास को अन्दर लेते हुए पूर्व स्थिति में आना चाहिए।
- श्वास को बाहर छोड़ते समय शरीर को दायीं ओर घुमाएं , जिससे कि बायीं हथेली दाएं कंधे को छुए। श्वास को अन्दर लेते हुए पूर्व स्थिति में आना चाहिए।
- इस तरह एक चक्र पूर्ण हुआ। इस विधि को और दो बार दोहराएं।
- अभ्यास के बाद समस्थिति में सिथिल हो जाएं।

ध्यातव्य:

- सामान्य गति से श्वास लेते हुए इस आसान का अभ्यास धीरे – धीरे करना चाहिए।
- हृदय रोगियों को यह अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
- गंभीर पीठ दर्द तथा रीढ़ और डिस्क व्याधि से ग्रसित व्यक्तियों व उदर – शल्य क्रिया करने वालो को यह आसन नहीं करना चाहिए। मासिक धर्म के समय इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

(घ) घुटना संचालन

शारीरिक स्थिति : समस्थिति (सजग स्थिति)

अभ्यास विधि :

- श्वास को शरीर के अंदर ग्रहण करते हुए अपनी भुजा ओं को कंधे के स्तर तक लाएं तथा हथेलियों को नीचे की ओर रखें।

- श्वास छोड़ते हुए घुटनों को मोडें और अपने शरीर को बैठने की स्थिति में लाएं।
- अभ्यास की अंतिम स्थिति में दोनों भुजाएं और जांघे जमीन की तरफ समानांतर स्थिति में होनी चाहिए।
- श्वास को शरीर के अन्दर ग्रहण करते हुए शरीर को सीधा रखें।
- हाथों को वापस नीचे लाते समय श्वास को शरीर के बाहर छोडना चाहिए।
- इस विधि को दो बार दोहराएँ।

ध्यातव्य :

- घुटनों और कूल्हों के जोड़ों को सुदृढ़ बनाएं।
- आर्थराइटिस का गंभीर दर्द होने पर इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

3 योगासन

(क) खड़े होकर किये जाने वाले आसान

ताड़ासन (ताड़वृक्ष की स्थिति में)

ताड़ शब्द का अर्थ है पहाड़, ताड़ या खजूर का पेड़।

इस आसान के अभ्यास से स्थायित्व व शारीरिक दृढ़ता प्राप्त होती है । यह खड़े होकर किये जाने वाले सभी आसनों का आधार है।

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पैरों के बल खड़े हो जाएं तथा दोनों पैरों के बीच २ इंच की दूरी रखें।
- दोनों हाथो की अंगुलियों को आपस में एक-दूसरे से मिलाये तथा हथेलियों को बाहर की ओर रखते हुए श्वास को शरीर के अंदर ग्रहण करे। भुजाओं को उपर की ओर करके कन्धों को एक सीध में ले आएं।
- पैर की एडियों को पृथ्वी से उपर उठायें ओर पैर की अँगुलियों पर अपना संतुलन बनाये। इस स्थिति में 10 से 15 सेकंड तक रुके रहें।
- श्वास को शरीर से बाहर छोड़ते हुए एडियों को वापस जमीन पर रखें।
- अब हाथ की अँगुलियों को अलग अलग करते हुए भुजाओं को शरीर के समानांतर लाएं। फिर इसके बाद प्रारम्भिक स्थिति में वापस आ जाएं।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से शरीर सुदृढ़ होता है । यह मेरुदंड से सम्बन्धित नाड़ियो के रक्त संचय को ठीक करने में भी सहायक हैं।
- यह आसन एक निश्चित उम्र तक लम्बाई बढानें में सहायक हैं।

सावधानियां

- उन व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए जिन्हें हृदय सम्बन्धी व वैरीकोज वेंस (veins) संबंधी समस्याएं हैं। चक्कर आने की स्थिति में अंगुलियों पर ऊपर उठने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

वृक्षासन (वृक्ष की स्थिति में)

वृक्ष शब्द का अर्थ हैं पेड़ । इस आसन के अभ्यास की अंतिम अवस्था में शारीरिक स्थिति एक पेड़ के आकार की बनती हैं। इसलिए इस आसन को यह नाम दिया गया हैं।

अभ्यास विधि

- वृक्षासन का अभ्यास करते समय सर्वप्रथम दोनों पैरों को एक दूसरे से २ इंच की दूरी पर रख कर खड़े हो जाएं।
- आँखों के सामने किसी बिंदु पर ध्यान केंद्रित करें।
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए दाएं पैर को मोड़कर उसके पंजे को बाएं पैर की अंदरूनी जांघ पर रखें। अभ्यास करते समय ध्यान रखें कि एडी मूलाधार (पेरिनियम) से मिली होनी चाहियें।
- श्वास को शरीर के अंदर लेते हुए दोनों हाथों को उपर कि ओर ले जाकर दोनों हथेलियों को जोड़ें।
- इस स्थिति में 10 से 30 सेकंड तक रहें। इस दौरान सामान्य रूप से श्वास लेते रहें।
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए हाथो एवं दाएं पैर को मूल अवस्था में वापस लेकर आएं।
- शरीर को शिथिल करते हुए इस आसन का अभ्यास पुनः बाएं पैर से करें।

लाभ

- यह आसन तंत्रिका से सम्बन्धित स्नायुओं के समन्वय को बेहतर बनाता हैं, शरीर को संतुलित बनाता हैं और सहनशीलता एवं जागरूकता बढ़ाता हैं।
- पैरों की मान्सपेशियों को गठीला बनाता हैं और लिगामेंट्स को भी सुदृढ़ करता हैं।

सावधानियां

- कृपया अर्थराइटिस, चक्कर आने और मोटापा होने पर इस आसन का अभ्यास न करें।

(iii) पादहस्तासन

पादहस्तासन का अर्थ है पाद अर्थात पैर, हस्त अर्थात हाथ। इस आसन के अभ्यास में हथेलियों को पैरों की तरफ नीचे ले जाया जाता है । इस आसन के अभ्यास को उत्तानासन भी कहा जाता है

अभ्यास विधि

- पादहस्तासन का अभ्यास करते समय सर्वप्रथम दोनों पेरो के बीच 2 इंच की दूरी रखकर सीधा खड़ा हो जाएं।
- धीरे – धीरे श्वास को शरीर के अंदर खींचते हुएहाथों को ऊपर की ओर ले जाना चाहिए।
- कटिभाग से शरीर को ऊपर की ओर ले जाएं।
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए सामने की ओर झुकें , जब तक कि शरीर पृथ्वी के समानांतर न आ जाएं।
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए इस प्रकार झुकते रहना चाहिए कि हथेलियाँ पृथ्वी का स्पर्श करने लगे।
- इस शारीरिक स्थिति में 10 से 30 सेकंड तक रुकें।
- इस आसन का अभ्यास करते समय अपनी क्षमता के अनुसार झुकना चाहिए।
- श्वास को शरीर के अंदर खींचते हुए धीरे – धीरे हा थों को शरीर के ऊपर तक खींचकर रखना चाहिए।
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए धीरे – धीरे विपरीत क्रम में प्रारम्भिक अवस्था में वापस आ जाएं।
- ताड़ासन में शिथिल अवस्था में रहना चाहिए , और कुछ समय तक आराम करना चाहिए ।

लाभ

- मेरुदंड को लचीला बनाता है , जठराग्नि प्रदीप्त करता है , कब्ज तथा मासिक धर्म से सम्बंधित समस्याओं से बचाता है।

सावधानियां

- हृदय अथवा पीठ से सम्बन्धित समस्याओं , उदर शो थ, हर्निया एवं अल्सर , उच्च मायोपिया , चक्कर सम्बंधित रोगों तथा गर्भावस्था के समय इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- कशेरुका संबंधी तथा डिस्क विकार वाले लोगो को भी यह अभ्यास नही करना चाहिए।

(iv) अर्धचक्रासन

अर्ध का अर्थ है आधा तथा चक्र का अर्थ है पहिया। इस आसन में चूँकि शरीर आधे पहिये की आकृति जैसा बनता है , इसलिए इस आसन को अर्ध चक्रासन कहते हैं।

अभ्यास विधि

- दोनों हाथों की सभी अंगुलियों से कमर को पीछे की ओर से पकड़े। सभी अंगुलियां उर्ध्वमुखी और अधोमुखी स्थिति में हो।
- सिर को पीछे की ओर झुकाते हुए ग्रीवा की मांसपेशियों को खींचना चाहिए।
- श्वास लेते हुए कटिभाग से पीछे की ओर झुकना चाहिए। श्वास को बाहर छोड़ते हुए शिथिल होना चाहिए।
- इस स्थिति में 10 - 30 सेकंड तक रुके तथा सामान्य रूप से श्वास लेते रहे।
- श्वास को अंदर खिंचते हुए धीरे – धीरे प्रारम्भिक अवस्था में वापस लौटे।

लाभ

- अर्ध चक्रासन के अभ्यास से मेरुदंड लचीला बनता है तथा मेरुदंड से सम्बंधित नड़ियाँ मजबूत बनती है।
- ग्रीवा की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है तथा श्वसन क्षमता बढ़ाता है तथा श्वसन क्षमता बढाता है।
- सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस में यह लाभकारी है।

सावधानियां

- यदि आपको चक्कर आते हों तो इस आसन का अभ्यास करने से बचें।
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति अभ्यास करते समय सावधानी से पीछे की ओर झुके।

(v) त्रिकोणासन

त्रिकोणासन का अर्थ त्रि अर्थात तीन कोणों वाला आसन है । चूँकि आसन के अभ्यास से समय शरीर एवं पैरों से बनी आकृति तीन भुजाओं के सदृश्य दिखाई देती है , इसलिए इस अभ्यास को त्रिकोणासन कहते है।

अभ्यास विधि

- त्रिकोणासन के अभ्यास के समय दोनों पैरों को फेलाकर आराम से खड़ा होना चाहिए।
- दोनों हाथो को आकाश के समानान्तर होने तक धीरे – धीरे उठाना चाहिए।
- श्वास को शरीर से बाहर छोड़ते हुए धीरे – धीरे दाईं तरफ झुकना चाहिए। झुकने के बाद दायाँ हाथ दाएं पैर के ठीक पीछे की ओर रखना चाहिए।
- बाएं हाथ को सीधे ऊपर की ओर रखते हुए दाएं हाथ की सीध में लाना चाहिए।
- तत्पश्चात बायीं हथेली को आगे की ओर लाना चाहिए।
- सिर को घुमाते हुए बाएं हाथ की बीच वाली अंगुली को देखना चाहिए।
- सामान्य श्वास लेते हुए इस आसन में १० -३० सेकंड तक रुकना चाहिए।

- श्वास को शरीर के अन्दर लेते हुए प्रारम्भिक अवस्था में वापस आ जाएं।
- इस आसन को दूसरी ओर से भी करना चाहिए।

लाभ

- पैर के तलवों से सम्बंधित विसंगतियों से बचाता है।
- पिण्डिका, जांघों और कटिभाग की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।
- मेरुदंड को लचीला बनाता है तथा फेंफडो की कार्य क्षमता को बढ़ाता है।

सावधानियां

- स्लिप्ड डिस्क , साइटिका एवं उदर में किसी प्रकार की सर्जरी होने के बाद इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- शरीर को कार्य क्षमता तथा सीमा से परे जाकर न करें तथा शरीर को सीमा से अधिक न खींचे।
- अभ्यास करते समय यदि आप जमीन को न छू सके तो घुटनों को छूने का प्रयास करें।

ख बैठकर किये जाने वाले आसन

(1) भद्रासन

भद्र शब्द का अर्थ दृढ़ , सज्जन या सौभाग्यशाली होता है।

शारीरिक स्थिति : बैठी हुई स्थिति (विश्रामासन)

अभ्यास विधि

- दोनों पैरों को सामने की ओर सीधा फेलाकर बैठें।
- दोनों हाथो को नितंब के पास रखें।
  यह स्थिति दंडासन कहलाती है।
- अब दोनों पैरों के तलवों को पास – पास ले आएं।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए पैरों की अंगुलियों को हाथो से पकड़ कर ढ़क दे।
- एडियों को मूलाधार के जितना नजदीक हो सके ले आएं।
- यदि पैरों की एडियां जांघों को नहीं छू पा रही है या पृथ्वी से नही लगी हुई है तो सहारे के लिए घुटनों के नीचे एक मुलायम कुशन रखना चाहिए। यह अभ्यास की अंतिम अवस्था है।
- इस अवस्था में कुछ समय तक रहना चाहिए।

लाभ

- भद्रासन का अभ्यास शरीर की दृढ़ रखता है एवं मस्तिष्क को स्थिरता प्रदान करता है।

- घुटनों एवं नितंब के जोड़ों को स्वस्थ रखता है।
- घुटनों का दर्द कम करने में मदद करता है।
- उदर के अंगों को क्रियाशील करता है और उदर में होने वाली किसी भी तरह की त्रुटि / खिंचाव को सामान्य करता है।
- महिलाओं को मासिक धर्म के समय अक्सर होने वाले पेट दर्द से मुक्ति प्रदान करता है।

सावधानियां

- पुरानी तथा अत्यधिक पीड़ा देने वाले आर्थ्रराइटिस और साइटिका से ग्रसित व्यक्ति को इस अभ्यास से बचना चाहिए।

वज्रासन / वीरासन

इस आसन को ध्यान मुद्रा में किया जाना चाहिए। जब आप ध्यान मुद्रा में इस आसन का अभ्यास करें तब अंतिम अवस्था में आँखे बंद कर लें।

अभ्यास विधि

- दोनों पैरों को फेलाकर बैठ जाएं , हाथ आपके शरीर के बगल में हो और आपकी हथेलियां जमीन पर हो , उँगलियाँ सामने की दिशा की ओर इशारा करती हो।
- दाहिने पैर को घुटनों से मोड़ ले पंजों को नितंब के नीचे दबाकर बैठ जाएं।
- इसी तरह बाएं पैर को भी घुटने से मोड़ते हुए एसे बेठे कि पंजे बाएं नितंब के नीचे हो।
- नितंब एडियों के ऊपर होने चाहिए।
- बाएं हाथ को क्रमशः बाएं और दाएं हाथ को दाहिने घुटने पररखें।
- मेरुदंड को सीधा रखे और सामने की ओर देखते हुए आँखे बंद रखें।
- पूर्ववत स्थिति में आने के लिए दाहिनी ओर थोड़ा सा झुककर अपने बाएं पैर को निकालें और उसे सीधा करे।
- इसी तरह अपने दाहिने पैर को निकालकर उसे सीधा कर ले।

लाभ

- इस आसन से जांघ और पिंडली की मांसपेशियां मजबूत होती है।
- यह् आसन पाचन शक्ति बढाने में सहायक होता है।
- यह मेरुदंड को सु दृढ़ता प्रदान करता है और उसे सीधा रखने में सहायता प्रदान करता है।

सावधानियां

- बवासीर के मरीजो कों इस आसान से परहेज करना चाहिए।

- घुटने दर्द और एडियों के चोट से ग्रसित व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए।

(iii) अर्ध उष्ट्रासन

शारीरिक स्थिति : बैठी हुई स्थिति में (विश्रामासन)

उष्ट्र शब्द का अर्थ ऊंट है।इस आसन के अभ्यास में की अंतिम अवस्था ऊंट के कूबड़ या उभार की स्थिति जेसी बनती हैइस आसन के अभ्यास में केवल प्रथम चरण (अर्ध उष्ट्र की स्थिति) का अभ्यास ही किया जाता है।

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम विश्रामासन में बैठ जाएं।
- पुनः दंडासन की स्थिति में आ जाएं।
- पैरों को मोड़ते हुए एडियों पर बैठ जाएं।
- जांघों को सटाकर रखें एवं अंगूठे एक – दूसरे से सटे हो।
- हाथो को घुटनों पर रखें।
- सिर एवं पीठ को बिना झुकाए सीधा रखें।
- यह स्थिति वज्रासन कहलाती है।
- घुटनों पर खड़े हो जाएं।
- हाथो को कमर पर एस प्रकार रखें कि अंगुलियां जमीन की तरफ हो।
- कोहनियों एवं कंधो को सामानांतर रखें।
- अब सिर को पीछे की तरफ झुकाते हुए ग्रीवा की मांसपेशियों को खींचे एवं धड़ को जितना संभव हो सके झुकाएं।
  श्वास बाहर छोड़ते हुए शिथिल हो जाना चाहिए।
- पुनः जांघों को जमीन से लम्बवत रखें।
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस मुद्रा में 10 - 30 सेकंड तक रुकें।
- श्वास अंदर खींचते हुए सामान्य मुद्रा में वापस लौटते हुए वज्रासन में बैठ जाएं।
- पुनः विश्रामासन में शिथिल हो जाना चाहिए।

लाभ

- इस योगाभ्यास से पीठ और गर्दन की मांसपेशियां मजबूत होती है।
- कब्ज एवं पीठ दर्द से मुक्ति मिलती है।
- सिर एवं हृदय क्षेत्र में रक्त संचार बढ़ता है।

- यह योगाभ्यास हृदय रोगियों के लिए अत्यंत लाभदायक है , किन्तु इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।

सावधानियां

- हर्निया एवं उदर सम्बन्धी गंभीर व्याधि तथा आर्थराइटिस , चक्कर आना ,स्त्रियों के लिए गर्भावस्था के समय में इस आसन का अभ्यास नही करना चाहिए।

(iv) उष्ट्रासन (ऊंट जैसी शारीरिक स्थिति)

इस आसन के अभ्यास की अवस्था में शारीरिक स्थिति ऊंट (उष्ट्र) के समान हो जाती है। इसीलिए इसका नाम उष्ट्र आसन है।

अभ्यास विधि

- घुटनों को जमीन पर टिकाते हुए अपने दोनों पैरों जांघ और पंजो को आपस में मिला लीजिए , पंजो को बाहर की तरफ रखते हुए जमीन पर फैला दीजिए।
- घुटनों एवं पंजो के बीच एक फुट की दूरी रखते हुए घुटनों के बल खड़े हो जाएं।
- श्वास लेते हुए पीछे की ओर झुकें।
- इस बात का ध्यान रखे कि पीछे झुकते समय गर्दन को झटका ना लगे।
- पीछे कि ओर झुकें और धीरे – धीरे दाहिने हाथ से दाहिनी एड़ी और बहिने हाथ से बायीं एडी को पकड़ने का प्रयास करें।
- अंतिम स्थिति में जांघ को जमीन पर उर्ध्वाकार (लम्बवत्) रखते हुए सिर को हल्का सा पीछे की ओर खींचकर रखें।
- यथासंभव पूरे शरीर का भर अपनी भुजाओं और पैरों पर होना चाहिए।
- इसका अभ्यास सर्वांगासन के बाद करना चाहिए। इस मुद्रा में उचित लाभ होता है।

लाभ

- उष्ट्रासन दृष्टिदोष में अत्यंत लाभदायक है।
- यह पीठ और गले के दर्द में आराम दिलाता है।
- यह उदर और नितंब की चर्बी को कम करने में सहायक है।
- पाचन क्रिया सम्बन्धी समस्याओं के लिए अत्यंत लाभदायक है।

सावधानियां

- उच्च्च रक्तचाप , हृदय रोगी , हर्निया के मरीजों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

(v) शशांकासन

शशांक शब्द का अर्थ है खरगोश। चूँकि इस आसन के अभ्यास में शरीर की आकृति खरगोश जैसी बनती है इसलिए इसे शशांकासन कहते है।

शारीरिक स्थिति : वज्रासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम वज्रासन में बैठना चाहिए।
- दोनों पैरों के घुटनों को एक – दूसरे से दूर फैलाएं।
- इस प्रकार बैठें कि पैरों के अंगुठे एक – दूसरे से मिले हों। दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर रखें।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए दोनों हथेलियों को सामने कि ओर स्वयं से दूर ले जाएं।
- आगे कि ओर झुकते हुए ठुड्डी को जमीन पर रखें।
- दोनों भुजाओं को समानांतर रखें।
- सामने की ओर देंखे और इस स्थिति को बनाएँ रखें।
- श्वास को अंदर खींचते हुए पीछे की ओर आ जाएं।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए वज्रासन में वापस लौट आएं।
- पैरों को पीछे खींचकर विश्रामासन में वापस आ जाएं।

लाभ

- शशांकासन का अभ्यास तनाव, क्रोध आदि को कम करने में सहायक है।
- यह जनन अंग सम्बन्धी व्याधि एवं कब्ज से मुक्ति दिलाता है एवं पाचन क्रिया संबंधी व्याधि व पीठ दर्द से छुटकारा दिलाता है।

सावधानियां

- अधिक पीठ दर्द में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- घुटनों से सम्बंधित ओस्टियोआर्थराईटिस से पीड़ित व्यक्तियों को इस अभ्यास को सावधानीपूर्वक करना चाहिए अथवा वज्रासन से बचना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए।

(vii) उत्तानमंडूकासन (ऊर्ध्व दिशा में मेंढ़क जैसा)

उत्तान का अर्थ ऊर्ध्व और मंडूक का अर्थ मेंढ़क है। इस आसन में मेंढ़क जैसी स्थिति में उर्ध्वमुखी हुआ जाता है। इसी कारन इस आसन का नाम उत्तानमंडूकासन पड़ा। उत्तानमंडूकासन में कोहनियों के सहारे सिर को थामा जाता है।

अभ्यास विधि

- वज्रासन मुद्रा में बैठे।
- अंगुठो को सटाते हुए दोनों घुटनों को जितना अधिक हो सके फैलाएं।
- अपमी दाईं हथेली को उठायें , उसे मोडें और उसे पीछे की ओर ले जाकर दाहिने कंधे के ऊपर उठायें। इसके बाद हथेली को बायीं तरफ के कंधे के नीचे लाएं।
- इसी क्रिया को बायीं हथेली का उपयोग करते हुए दोहराएँ और अपनी हथेली को ऊपर ले जाकर बाएँ कंधे के नीचे ले आएं।
- कुछ देर तक इसी मुद्रा में रुकें। उसके बाद धीरे – धीरे बाएं कंधे और फिर दाएं कंधे को वापस ले आएं। अपने घुटनों को मिलाकर पूर्ववत स्थिति में आ जाएं।

लाभ

- यह आसन पीठ दर्द और ग्रीवा की तकलीफ से छुटकारा दिलाता है।
- यह आसन शरीर के मध्यपट के लिए लाभदायक है। यह फेंफडो की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है।

सावधानियां

- घुटनों व जोड़ो के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए।

(viii) मरिच्यासन / वक्रासन

वक्र शब्द का अर्थ घुमाव अथवा ऐंठन है। इस आसन के अभ्यास में मेरुदंड की अस्थि को घुमाते है , जिससे शरीर की आकृति वक्र हो जाती है जिसके कारण इसे वक्रासन कहते है। इसके अभ्यास से शरीर कार्य करने की क्षमता को नया जीवन मिलता है।

शारीरिक स्थिति : दंडासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम दाएं पैर को मोड़ते हुए उसके पंजे को बाएं घुटने के बगल में रखें।
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए , शरीर को दाईं तरफ घुमाएं।
- बाएं हाथ को दाएं घुटने के पास लाएं और दाएं पैर के अंगूठे को पकड़ लें अथवा हथेली को दाएं पैर के पास रखें।
- दाएं हाथ को पीछे ले जाएं और हथेली को जमीन पर रखें , जब तक कि पीठ लम्बवत न हो जाए।
- इस स्थिति में 10 – 30 सेकंड तक रहे।
- सामान्य ढंग से श्वास – प्रश्वास लेते रहें और शरीर को शिथिल रखें।

- श्वास को बाहर छोड़ते हुए अपने हाथ हटा ले और शिथिल हो जाएं।
- इस अभ्यास क्रम को दूसरी तरफ से भी दोहराएँ।

लाभ

- मेरुदंड की अस्थि में लचीलापन बढ़ाता है।
- कब्ज एवं अग्निमांध्य (डिस्पैप्सिया) को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

सावधानियां

- अधिक पीठ दर्द में और वर्टिब्रल व डिस्क डिस्ऑर्डर की स्थिति में इस अभ्यास को नही करना चाहिए। उदर की सर्जरी के बाद एवं मासिक धर्म के दिनों में भी इस आसन को मही करना चाहिए।

ग. उदर के बल लेटकर किये जाने वाले आसन

(i) मकरासन

संस्कृत में मकर शब्द का अर्थ होता है मगर या घड़ियाल। इस आसन में शरीर की स्थिति मगर की आकृति के समान हो जाती है , इसीलिए इसे मकरासन कहते है।

स्थिति : अधोमुख लेटकर शिथिल स्थिति

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम उदर के बल लेट जाएं।
- पैरों को एक – दूसरे से दूर फैलाकर , पंजो को बाहर की ओर रखें।
- दोनों हाथों को मोड़ते हुए व बाएं हाथ पर दायाँ हाथ रखें।
- तत्पश्चात ललाट को अपने हाथो पर रखें। आँखे धीरे – धीरे बंद करें। यह स्थिति मकरासन कहलाती है।
- सभी प्रकार के आसनों के पश्चात शिथिलीकरण के लिए इस आसन का अभ्यास किया जाता है।

लाभ

- कटि प्रदेश के निचले भाग के लिए लाभदायक है।
- पीठ संबंधी समस्याओं को दूर करने में उपयोगी है।
- अस्थि सम्बन्धी सभी व्याधियों को दूर करने में उपयोगी है।
- तनाव व चिंता से सम्बन्धित समस्याओं के नियंत्रण में लाभदायक है।

सावधानियां

- निम्न रक्तचाप, हृदय सम्बन्धी समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों को तथा गर्भावस्था में इस आसन को नही करना चाहिए।

(ii) भुजंगासन

भुजंग शब्द का अर्थ सांप, सर्प व नाग है। इस आसन में शरीर की आकृति सांप के फन की तरह ऊपर उठती है जिसके कारण इस आसन को भुजंगासन कहते है।

शारीरिक स्थिति : मकरासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पेट के बल लेट जाएं और अपने दोनों हाथों पर सिर टिकाते हुए शरीर को शिथिल रखें।
- अब अपने दोनों पैरों को आपस में मिलाएं।
- हाथों को खींचकर रखते हुए ललाट को जमीन पर टिका रहने दे।
- अब हाथो को शरीर के ठीक बगल में ऐसा रखें कि हथेलियों और कोहनियां जमीन पर टिके रहें।
- धीरे – धीरे श्वास अन्दर खींचते हुए ठुड्डी और नाभि क्षेत्र तक शरीर को ऊपर उठाएं।
- कुछ समय तक इस स्थिति में आराम से रहें।
- इस अभ्यास को सरल भुजंगासन कहा जाता है।
- पुनः वापस लौटते हुए ललाट को जमीन पर टिकाएं।
- हथेलियों को वक्ष के बगल में रखें और कोहनियां ऊपर कि ओर उठी हुई होनी चाहिए।
- धीरे – धीरे श्वास को भीतर खींचते हुए ठुड्डी एवं नाभि क्षेत्र तक के शरीर को ऊपर उठाएं रखें।
  इस अभ्यास को भुजनागासन कहा जाता है।
- पुनः श्वास को बाहर छोड़ते हुए ललाट को जमीन पर शिथिल होने दे और हथेलियों के ऊपर सिर तथा पैर को फैलाकर शरीर को शिथिल करें

ध्यातव्य

- पैरों को उतना ही तानकर (दृढ़) रखें कि कटि क्षेत्र के मेरुदंड में कोई भार या तनाव न हो।

लाभ

- तनाव प्रबंधन के लिए यह आसन सर्वश्रेष्ठ है।

- यह उदर के अतिरिक्त वसा को घटता है तथा कब्जियत दूर करता है।
- पीठ दर्द और श्वास नली से सम्बन्धित समस्याओं को दूर करता है।

सावधानियां

- जिन लोगो कि उदर संबंधी सर्जरी हुई है , उन्हें इस आसन को नही करना चाहिए।
- जो लोग हर्निया , अल्सर से पीड़ित हो , उन्हें इसआसन का अभ्यास नही करना चाहिए ।

(iii) शलभासन

शलभ शब्द का अर्थ टिड्डी होता है जो एक प्रकार का कीड़ा होता है।

स्थिति : मकरासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम मकरासन की स्थिति में लेट जाएं।
- ठुड्डी को पृथ्वी पर टिकाकर दोनों हाथों को शरीर के बगल में रख दें । ध्यान रहे कि हथेलियाँ ऊपर कि ओर होनी चाहिए।
- श्वास अन्दर खींचे, घुटनों को मोड़ें बिना पैरों को जमीन से जितना हो सके , ऊपर उठाएं ।
- हाथों को इस तरह बढाएं कि शरीर जमीन से आसानी से ऊपर उठ सके।
- इस स्थिति में 10 – 20 सेकंड तक रहें और सामान्य रूप से श्वास लेते रहें।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए पैरों को जमीन पर वापस ले आएं।
- कुछ समय के लिए मकरासन की स्थिति में लेटे रहें।

ध्यातव्य

- अपनी स्थिति को ठीक प्रकार से बनाने के लिए घुटनों की चक्की (नी कैप) को रोककर नितंबो को दबाकर रखना चाहिए। यह आसन भुजंगासन के बाद करने पर अधिक लाभदायक होता है।

लाभ

- साइटिका एवं पीठ के निचले हिस्से के पीड़ा – निवारण में सहायता प्रदान करता है।
- नितंबो की मांसपेशियों एवं वृक्क प्रदेश को सुगठित बनाता है।
- जांघों एवं नितंबो पर एकत्रित अतिरिक्त वसा को कम करता है; शरीर के वजन को नियंत्रित बनाये रखने में यह आसन उपयोगी है।

- उदर के अंगों को लाभ पहुंचता है, पाचन में सहायता करता है।

सावधानियां

- हृदय रोगियों को इस आसन का अभ्यास करने से बचना चाहिए।पीठ के निचले हिस्से में अधिक दर्द होने पर सावधानीपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप , पेप्टिक अल्सर एवं हर्निया रोग से पीड़ित व्यक्ति को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

घ . पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन

(i) सेतुबंधासन

सेतुबंध शब्द का अर्थ सेतु का निर्माण है । इस आसन में शरीर की आकृति एक सेतु की अवस्था में रहती है , इसलिए इसे यह नाम दिया गया है। इसे कटुस्पादासनभी कहा जाता है।

अभ्यास विधि

- दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ते हुए एड़ियों को नितंबों के पास लाएं।
- हाथो से पैर के टखनों को मजबूती से पकड़ें और घुटने एवं पैरों को एक सीध में रखें।
- श्वास अंदर खींचते हुए धीरे-धीरे अपने नितंब और धड़ को ऊपर की ओर उठाएं।
- इस अवस्था में 10-30 सेकण्ड तक रहें, इस दौरान सामान्य श्वास लेते रहना चाहिए।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए धीरे-धीरे मूल अवस्था में वापस आएं और शवासन में लेटकर शारीर को शिथिल छोड़े दें।

ध्यातव्य

- अंतिम अवस्था में कंधे और सिर जमीन से लगे होने चाहिए।
- अंतिम अवस्था में यदि जरुरत हो तो आप अपनी कमर पर हाथ रखकर अपने शारीर को सहारा डे सकते हैं।

लाभ

- अवसाद एवं चिंता से मुक्त करता हैं। कमर के निचले हिस्से की मांसपेशियों को मजबूत बनाता हैं।
- उदर के अंगों में कसावट लाता हैं। पाचन क्षमता बढ़ाता है और कब्ज से छुटकारा दिलाता हैं।

सावधानियाँ

- अल्सर और हर्निया से ग्रस्त व्यक्तियों और अग्रिम अवस्था वाली गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिए।

(ii) उत्तानपाद आसन

यहाँ उत्तान का अर्थ ऊपर की और उठा हुआ (उर्ध्व दिशा) और पाद का अर्थ पैर हैं। इस आसन में उत्तान (चित्त) लेटकर पैरों को ऊपर उठाया जाता हैं। इसी कारण इस आसन का नामकरण उत्तानपादासन हुआ।

अभ्यास विधि

- जमीन पर आराम से लेट जाएँ, पैरों की स्थिति सीधी हो और हाथों को बगल में रखें।
- श्वास लेते हुए घुटनों को बिना मोड़े धीरे-धीरे अपने दोनों पैरों को ऊपर उठाएं और 30 डिग्री का कोण बनाएँ।
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस अवस्था में कुछ देर ठहरें।
- श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे अपने दोनों पैरों को नीचे लाएं और जमीन पर रखें।
- इस आसन को एक बार और दोहराएँ।

लाभ

- यह आसन नाभि केन्द्र (नाभिमणिचक्र) में संतुलन स्थापित करता है।
- यह उदर पीड़ा, वाई (उदर-वायु), अपच और अतिसार (दस्त) को दूर करने में सहायक होता हैं।
- यह उदर की मांसपेशियों को मजबूत प्रदान करता हैं।
- यह आसान घबराहट और चिंताओं से उबरने में सहायक हैं।
- यह श्वसन क्रिया को उन्नत करता है और फेफड़े की क्षमता में वृद्धि करता हैं।

सावधानियां

- गहरे तनाव से पीड़ित मरीज बिना श्वास रोके बारी-बारी से अपने पैरों का उपयोग करते हुए इस आसन का अभ्यास करें।

(iii) अर्धहलासन

अर्ध का अर्थ " आधा " और " हल " का अर्थ है खेत जोतने वाला हल। इस आसन में शारीर की स्थिति खेतों की जुताई करने वाले भारतीय हल की अर्द्धआक्रति जैसी हो जाती हैं। इसी कारण इसका नाम हलासन पड़ा।

अभ्यास विधि

- उत्तान अवस्था में बैठ जाएँ, दोनों हाथ जांघों के बगल में रखें और हथेलियाँ जमीन पर हों।
- घुटने को बिना मोड़े अपने पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाएं और30 डिग्री पर लाकर रोक दें।

- थोड़ी देर इसी अवस्था में बने रहें, कुछ देर बाद पुन: पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाएं और 60 डिग्री पर रोक दें।
- इसके बाद थोडा रुककर पुन: पैरों को ऊपर उठाते हुए 90 डिग्री पर लाकर रोक दें, यह हलासन की उचित मुद्रा हैं।
- इस अवस्था में नितंब से कंधे की स्थिति खींची हुई रहेगी।
- इस अवस्था में तब तक रहें जब तक आप रह सकते हैं।
- अपने पैरों को 90 डिग्री की स्थिति से धीरे-धीरे वापस जमीन पर लाएं। रहे वापसी की स्थिति में सिर जमीन से ऊपर न उठें।

लाभ

- यह आसान बदहजमी और कब्जियत से छुटकारा दिलाता हैं।
- यह आसन मधुमेह, बवासीर और गले संबंधी समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक हैं ।
- यह आसन गहरे तनाव से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, परन्तु उन्हें बड़ी सावधानी पूर्वक यह आसन करना चाहिए।

सावधानियां

- पीठ के निचले हिस्से के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को दोनों पैरों की सहायता से इस आसन को नहीं करना चाहिए।
- उदर में जख्म होने, हर्निया आदि से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

(iv) पवनमुक्तासन

पवन शब्द का अर्थ वायु और मुक्त शब्द का अर्थ छोड़ना या मुक्त करना हैं। जैसा कि इस अभ्यास के नाम से ही पता चलता है, यह आसन उदर एवं आंतों से वायु या वात बाहर निकलने में उपयोगी हैं।

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लंबवत् लेटना चाहिए।
- दोनों घुटनों को मोड़ते हुए जांघों को वृक्ष के ऊपर ले आएं।
- दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में गूंथते हुए पैरों को पकड़ लें। ठुड्डी को घुटनों के नीचे ले आएं।
- श्वास बाहर छोड़ते हुए सिर को तब तक ऊपर उठाएं, जब तक की ठुड्डी घुटनों से नहीं लग जाए। कुछ समय तक इस स्थिति में रुकें।

- यह अभ्यास पवनमुक्तासन कहा जाता हैं।
- सिर को वापस जमीन पर ले आएं।
- श्वास बाहर छोड़ते समय पैरों को जमीन पर ले आएं।
- अभ्यास के अंत में शवासन में आराम करें।

ध्यातव्य

- पैरों की गतिविधि के अनुसार श्वास-प्रश्वास को एक लय में लाना चाहिए।
- घुटनों को ललाट से स्पर्श करते यह अनुभव करना चाहिए कि कटि प्रवेश में खिंचाव हो रहा हैं; आँखे बन्द रखनी चाहिए। ध्यान कटि प्रदेश पर होना चाहिए।

लाभ

- कब्जियत दूर करता हैं; वात से राहत दिलाता है और उदर के फुलाव को कम करता हैं। पाचन क्रिया में भी सहायक करता हैं।
- गहरा आंतरिक दबाव डालता है, श्रोणि और कटिक्षेत्र में मांसपेशियों, लिगामेंट्स और स्नायु की अति जटिल समस्याओं का निदान करता है और उनमें कसावट लाता हैं।
- यह पीठ की मांसपेशियों और मेरु के स्नायुओं को सुगठित बनाता हैं।

सावधानियां

उदर संबंधी व्याधि, हर्निया, साइटिका या तीव्र दर्द तथा गर्भावस्था के समय इस अभ्यास को न करें।

(v) शवासन

शव शब्द का अर्थ मृत देह हैं। इस आसन में अंतिम अवस्था एक मृत देह जैसी होती हैं।

शारीरिक इस्थिति : निष्क्रिय शिथिल स्थिति।

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाना चाहिए।
- हाथों और पैरों को आरामदायक स्थिति में फैलाकर रखें। आँखे बन्द होनी चाहिए।
- पुरे शारीर को अचेतन अवस्था में शिथिल छोड़ दें।
- नैसर्गिक श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करें।
- इस अवस्था में तब तक रहें, जब तक कि पूर्ण विश्रान्ति एवं चित्त शान्त न हो जाए।

लाभ

- सभी प्रकार के तनावों से मुक्त करता है।
- शरीर तथा मस्तिष्क दोनों को आराम प्रदान करता है।
- पूरे मं तथा शरीर तंत्र को विश्राम प्रदान करता है।

- बाहरी दुनिया के प्रति लगातार आकर्षित होने वाला मं अंदर की ओर गमन करता है। इस तरह धीरे – धीरे महसूस होता है कि मस्तिष्क स्थिर हो गया।
  अभ्यासकर्ता बाहरी वातावरण से अलग होकर शांत बना रहता है।
- तनाव एवं इसके परिणामों के प्रबंधन में यह बहुत लाभदायक होता है।

11.6 सामान्य योग प्रोटोकाल भाग – II

4 कपालभाति

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन जैसे सुखासन / पधमासन / वज्रासन आदि

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं।
- आँखे बंद करके पूरे शरीर को शिथिल कर लें।
- दोनों नासिकरंध्रों से गहरी साँस ले और वक्ष स्थल को फैलाएं।
- दोनों नथुनों से गहरी श्वास अन्दर खींचते हुए वक्ष को फुलाएं।
  उदर की मांसपेशियों को दबाव पूर्वक अंदर बाहर करते हुए श्वास छोड़े और ग्रहण करे।
- सक्रियातापूर्वक श्वास बाहर छोडना एवं निष्क्रियता पूर्वक उच्छवास करना चाहिए।
- कम से कम तीव्र श्वास को 30 चक्र पूरा करना चाहिए।
- इसके बाद गहरी श्वास अंदर लेते हुए धीरे – धीरे बाहरछोड़ें।
- इस तरह कपालभातिका एक चक्र पूरा होता है।
- इसी प्रकार प्रत्येक चक्र पूरा करने के बाद गहरी श्वास लेनी चाहिए।
- इस अभ्यास को कम से कम दो बार और दोहराना चाहिए।

श्वसन क्रिया : यह श्वसन क्रिया उदर की मांसपेशियों के सहयोग से बिना किसी अतिरिक्त दबाव के होनी चाहिए। श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया वक्ष एवं कंधा क्षेत्र में बिना किसी अनुचित दबाव अथवा गतिविधि के होनी चाहिए। पूरे अभ्यास के समय श्वास – उच्छवास सहज रूप से होने चाहिए।

अभ्यास की चक्र संख्या : प्रारम्भिक अवस्था में 3 चक्र तक अभ्यास कर सकते हैं। प्रत्येक चक्र में 20 श्वासोच्छवास संख्या होनी चाहिए। धीरे – धीरे अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

लाभ

- कपालभाति कपाल को शुद्ध करता है। कफ विकारों को समाप्त करता है।
- यह जुकाम , साइनोसाइटिस , अस्थमा एवं श्वास नली सम्बन्धी संक्रमणों में लाभदायक है।

- यह पूरे शरीर का कायाकल्प करता है और चहरे को सुकोमल और दीप्तिमान बनाये रखता है।
- यह तंत्रिका तंत्र को संतुलित कर शक्तिशाली बनाये रखता है। साथ ही साथ पाचन तंत्र को शक्तिशाली बनाता है।

सावधानियां

- हृदय सम्बन्धी व्याधियों में , चक्कर आने , उच्च रक्तचाप , नासिका से रक्त प्रवाह . मिर्गी , माइग्रेनस्टोक , हर्निया एवं गेस्ट्रिक अल्सर होने की स्थिति में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

5 प्राणायाम

(i) नाड़ी शोधन अथवा अनुलोम विलोम प्राणायाम

इस प्राणायाम की मुख्य विशेषता है कि बाएं एवं दाएं नासिकारंध्रों से क्रमवार श्वास – प्रश्वास को रोककर अथवा बिना श्वास – प्रश्वास रोके श्वसन किया जाता है।

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन।

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं।
- मेरुदंड कि अस्थि एवं सिर को सीधा रखें और आँखे बंद कर ले।
- कुछ गहरी श्वासों के साथ शरीर को शिथिल कर ले।
- ज्ञान मुद्रा में बायीं हथेली बाएं घुटने के ऊपर रखनी चाहिए। दांया हाथ नासाग्र मुद्रा में होना चाहिए।
- अनामिका एवं कनिष्ठिका अंगुली बायीं नासिका पर रखनी चाहिए। मध्यमा और तर्जनी अंगुली को मोड़कर रखें। दाएं हाथ का अंगूठा दाईं नासिका पर रखना चाहिए।
- बायीं नासिका से श्वास ग्रहण करे। इसके बाद कनिष्ठिका एवं अनामिका अँगुलियों से बाईं नासिका बंद कर ले। दाईं नासिका से अंगूठा हटा कर वहाँ से (दाईं नासिका) श्वास बाहर छोड़े।
- तत्पश्चात एक बार दाईं नासिका से श्वास ग्रहण करना चाहिए।
- श्वासोच्छवास के अंत में दाईं नासिका को बंद करें। बाईं नासिका खोले तथा इसके द्वारा श्वास बाहर छोड़ दें।
- यह पूरी प्रक्रिया नाड़ी शोधन या अनुलोम विलोम प्राणायाम का एक चक्र है।
- यह पूरी प्रक्रिया पांच बार दोहराई जानी चाहिए।

अनुपात एवं समय

- प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए श्वासोच्छवास की क्रिया की अवधि बराबर होनी चाहिए।
- धीरे – धीरे इस श्वासोच्छवास क्रिया को क्रमशः 1 : 2 कर देना चाहिए।

श्वसन

- श्वसन क्रिया मंद , समान एवं नियंत्रित होनी चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का दबाव या अवरोध नही होना चाहिए।

लाभ

- इस प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य शरीर को ऊर्जा वहन करने वाले मुख्य स्रो तों का शुद्धिकरण करना है। अतः यह अभ्यास पूरे शरीर का पोषण करता है।
- मन में निश्चलता लाता है और शांति प्रदान करता है । साथ ही एकाग्रता बढाने में भी सहायक है।
- जीवन शक्ति बढाता है और तनाव एवं चिंता के स्तर को कम करता है।
- यह कफ विकार को भी कम करता है।

(ii) शीतली प्राणायाम

शीतली का अर्थ है शीतल होना। यह साधक के चित्त को शांत करता है और मन की व्यग्रता को दूर करता है । जेसा की शीतली प्राणायाम नाम से ही स्पष्ट है , यह शरीर और मन को शीतलता प्रदान करता है । इस आसन की सृष्टि शरीर के तापमान को नियंत्रित करने के लिए ही विशेष रूप से की गयी है। इस प्राणायाम के अभ्यास से न केवल शरीर का तापमान नियंत्रित होता है , बल्कि मन भी एकदम शांत चित्त हो जाता है।

अभ्यास विधि

- पद्मासन मुद्रा अथवा किसी भी अन्य आरामदायक मुद्रा में बैठ जाएं।
- ज्ञान मुद्रा अथवा अंजलि मुद्रा की अवस्था में अपने हाथो को घुटनों पर रख ले।
- जीभ को किनारों से मोड़कर टब का आकार बना ले।
- इस टबनुमा जीभ से साँस लेते हुए जितना हो सके हवा शरीर के अंदर प्रवेश कराएं और मुंह बंद कर ले।
- जालन्धर बंध मुद्रा में जितनी देर हो सके साँस को रोककर रखे।
- जालन्धर बंद मुद्रा से वापस आएं और नासिकारंध्रो से धीरे – धीरे श्वासछोड़ें।

लाभ

- शीतली प्राणायाम रक्त को शुद्ध करता है।

- यह शरीर में शीतलता प्रदान करता है।
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों के लिए यह विशेष लाभप्रद है।
- यह भूख और प्यास का शमन करता है।
- कफ और पित्त के कारण होने वाले अपच और अन्य व्याधियो से दूर करता है।
- यह पुरानी से पुरानी बदहज़मी और तिल्ली रोग से छुटकारा दिलाता है (एसपी.2/58)।
- यह त्वचा और नेत्र के लिए भी लाभदायक है।

सावधानियां

- ठण्ड , कफ अथवा तुन्डिका - शो थ (टोंसिलाइट्-इस) के मरी जों को यह प्राणायाम न हीं करना चाहिए।
- जब तक योग प्रशिक्षक सलाह न दें , इस प्राणायाम को सर्दियों में नही करना चाहिए।

(iii) भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी शब्द भ्रमर से लिया गया है , जिसका मुख्य अर्थ है भौंरा। इस प्राणायाम के अभ्यास के समय निकलने वाला स्वर भ्रमर के भिनभिनाने के स्वर की तरह होता है । इसीलिए इस योगासन का नाम भ्रामरी प्राणायाम है।

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन।

अभ्यास विधि : I

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में आंखे बंद कर बैठ जाएं।
- नासिका सके द्वारा लंबा घर श्वास खींचे।
- नियंत्रित ढंग से श्वास को धीरे – धीरे बाहर छोड़े। श्वास छोड़ते हुए भौंरे जैसी आवाज़ निकाले। इस प्रकार भ्रामरी प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण होता है।
- इसे और दो बार दोहराएँ।

अभ्यास विधि : II

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में आंखे बंद कर बैठ जाएं।
- नासिका सके द्वारा लंबा घर श्वास खींचे।
- चित्र में दिखाए अनुसार अंगुठो से कर्णछिद्र बंद कर ले। तर्जनी अंगुली से आँखों को बंद करे और नासिकारंध्रो को मध्यमा अंगुली से बंद करे। षणमुखी मुद्रा कहते है।
- धीरे – धीरे नियंत्रित रूप सेश्वास को बाहर छोड़ते समय भौंरे जैसी आवाज़ निकाले। इस तरह भ्रामरी प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण होता है।
- इसे और दो बार दोहराएँ।

लाभ

- भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास तनाव से मुक्त करता है और चिंता , क्रोध ,एवं अतिसक्रियता को घटाता है।
- भौंरे जैसी आवाज़ का प्रतिध्वनिक प्रभाव मस्तिष्क एवं तंत्रिकातंत्र पर लाभकारी प्रभाव डालता है।
- यह महत्वपूर्ण शांतिकारक अभ्यास है; जो तनाव सम्बन्धी विकारों को दूर करने में लाभकारी होता है।
- यह एकाग्रता और ध्यान की आरम्भिक अवस्था में उपयोगी है।

सावधानियां

- नाक एवं कान में यदि किसी प्रकार का संक्रमण हो तो इस आसन को नही करना चाहिए।

6. ध्यान

ध्यान लगातार चिंतन – मनन की एक क्रिया है।

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं।

अभ्यास विधि :

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं।
- मेरुदंड को बिना किसी प्रकार का कष्ट दिए सीधा रखें।
- नियमानुसार ज्ञान मुद्रा में बैठ।
    - अंगूठे एवं तर्जनी अंगुली के सिरों को आपस में स्पर्श कराएँ।
    - अन्य तीन अँगुलियां सीधी और आरामदायक स्थिति में होनी चाहिए।
    - तीनों अंगुलियां एक – दूसरे के अगल – बगल हों और वें एक – दूसरे को स्पर्श करती हों।
    - ऊपर की ओर खुली हुई हथेली की घुटनों पर रखें।
    - हाथों और कंधो को ढीला और शिथिल कर देना चाहिए।
- आंखे बंद करके मुख को थोडा ऊपर की ओर उठाकर बैठ जाएं।
- मुख को थोडा ऊपर की दिशा में उठाकर एकाग्रचित मुद्रा में बैठ जाएं। बिना किसी पर विशेष ध्यान केंद्रित किए केवल अपनी भौंहो के बीच हल्का सा ध्यान केंद्रित करे और अपनी आती – जाती श्वासों को महसूस करे।
- पूर्व विचारों को छोड़ने का प्रयास करे। पवित्र व निर्मल विचार मन में लेन का प्रयास करें।
- इस स्थिति में ध्यान लगाकर कुछ समय तक बैठे रहें।

ध्यातव्य

- ध्यान अभ्यास की प्रारंभिक अवस्था में मन को प्रसन्नचित्त करने वाला संगीत बजाया जा सकता है।
- जितने अधिक समय तक सम्भव हो , इस स्थिति में रुकना चाहिए।

लाभ

- ध्यान योगाभ्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है।
- यह अभ्यासकर्ता को नकारात्मक भावनाओं से दूर रखता है , भय , क्रोध ,अवसाद , चिंता दूर करता है और सकारात्मक भावनाएं विकसित करने में सहायता करता है।
- मस्तिष्क को शांत और निश्चल रखता है।
- एकाग्रता , स्मृति , विचारों की स्पष्टता और मनोबल को बढ़ाता है।
- पूरे शरीर और मस्तिष्क को पर्याप्त आराम देते हुए उन्हें तरोताजा करता है।
- ध्यान आत्म अनुभूति की ओर ले जाता है।

7 संकल्प (योग सत्र का समापन इस संकल्प के साथ करना चाहिए)

हमे अपने मन को हमेशा संतुलित रखना है,
इसमें ही हमारा आत्मविकास समाया है,
मैं खुद के प्रति , कुटुंब के प्रति , काम , समाज और विश्व के प्रति , शांति , आनंद
और स्वास्थ्य के प्रचार के लिए बद्ध हूँ।

संकल्प (योग सत्र का समापन इस संकल्प के साथ करना चाहिए)

मैं संकल्प लेता हूँ कि सर्वदा अपनी सोच में संतुलन बनाये रखूंगा। ऐसी मन: स्थिति मेरे उच्चतम आत्म – विकास की असीम संभावनाएं प्रदान करती है। मैं अपने कर्तव्य निर्वाह के प्रति , कुटुंब और कार्य के प्रति तथा समाज व समूचे विश्व में शांति , स्वास्थ्य और सौहार्द के प्रसार के लिए कृत संकल्प हूँ।

8 शांति पाठ

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु , मा कश्चिद्दु:खभाग्भत्॥
ॐSarve Bhavantu Sukhinah,
Sarve Santu Niramayah
Sarve Bhadrani Pasyantu,
Maa Kascit Dukha Bhagbhavet
ॐShantih Shantih Shantih

सब सुखी हों , सब निरोग हों।

सब निरामय हों , सबका मंगल हों ,

कोई दुखी न् हों।

11.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में योग का परिचय संक्षिप्त इतिहास योग अभ्यास हेतू आवश्यक दिशा निर्देश, योग की वैज्ञानिक अवधारणा तथा सामान्य योगाभ्यास हेतू प्रोटोकाल के तहत् प्रार्थना सार्वभौमिक शिथिलीकरण के अभ्यास, बीस योगासन, कपाल भांति, तीन प्राणायाम, ध्यान, संकल्प एवं शांति पाठ का वर्णन शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्ति हेतू जनसामान्य के कल्याण अर्थात् ‘‘लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु’’ की मंगल कामना के अनुसार संक्षेप किया गया हैं।

11.8 बोधात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस कब मनाया जाता हैं ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के 2 ग्रीनिज बुक रिकार्ड कौन से हैं ?
3. योगाभ्यास के सामान्य दिशा निर्देशों का वर्णन कीजिये ?
4. ‘‘योग स्वास्थ्य प्राप्ति में सहायक हैं’’ टिप्पणी लिखिये ?
5. योग की वैदिक प्रार्थना का सन्दर्भ लिखिये ?
6. चार चालन क्रिया का वर्णन कीजिये ?
7. खड़े होकर एवं बैठकर किये जाने वाले आसनों का उल्लेख कीजिये ?
8. पैर एवं पीठ के बाल लेटकर किए जाने वाले आसनों का वर्णन कीजिये ?
9. तीन प्रमुख प्राणायामों का विस्तृत वर्णन कीजिये ?
10. कपाल भाति का वैज्ञानिक महत्त्व लिखिये ?
11. ध्यान, संकल्प एवं शांति पाठ की विवेचना कीजिये ?
12. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का आह्वान सर्व प्रथम किस देश ने किया ?
13. लम्बाई एवं स्मरण शक्ति बढानें के आसान कौन-कौन से हैं ?
14. मासिक धर्म के समय पेट दर्द दूर करने वाला आसान कौनसा हैं ?
15. ध्यान की मुद्रा का नाम क्या हैं ?
16. तनाव-गुस्सा (क्रोध) दूर करने वाला आसान कौनसा हैं ?
17.

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **Prayer :** Rgveda-10.191.2
2. **Sadilaja/Calanakriya/Yogic Suksma Vyayama :** Also referred as Caaranaa in Hathatatvakaumudi- 9.13-16, Yogic Sukshma Vyayama of Swami Dheerendra Bhramhachari
3. **Tadasana :** Also called as Taalaasana, Yogarahasya of Nathamuni, Kirana Tika, a commentary on Yoga sutras, Shri Yoga Kaustubha-25, Sachitra Caurasi Asana-34, Yoga Asanas by Swami Shivananda.
4. **Vrksasana**: Gheranda Samhita-ii.36, BrihadyogaSopana, Hathayoga Samhita-43, Yoga Marga Pradipa-11
5. **Pada-hastasana/Uttanasana :** Shri Yoga Kaustubha. Yogarahasya of Nathamuni
6. **Ardha Cakrasana:** Traditional Cakrasana has several varieties quite different from this which is practiced over the years
7. **Trikonasana:** Yogarahasya-ii.20 of Nathamuni
8. **Bhadrasana:** Hathapradipika-i.53-54.
9. **Vajrasana:** Gheranda Samhita II-12,Hathayoga- Samhita-Asana- 20, Brhada Yoga Sopana III-14, Sacitra Vyavaharika 16, Narada Purana-33-112
10. **Ardha Ustrasana:** Sri Yoga Kaustibha, Nagoji BhattaVritti on Yogasutra-ii. 46, GherandaSamhita - ii.41describes Ustrasana which is done lying in prone position
11. **Sasankasana:** Gheranda Samhita-ii.12 calls it as Vajrasana, Hathayoga Samhita, Brhada Yoga Sopana, SachitraVyavaharika Yoga-16, Narada Purana-33-112, Brihannaradiya Purana, Yogamargapradipa, Yoga Bija-90, YogaSiksopanishad-I.111-112, Hatharatnavali-iii.9
12. **Uttana Mandukasana:** Hathayoga-Samhita-Asana-42, Cre Yoga Kaustubha-58, Gheranda Samhita II-35, Brhada Yoga Sopana III-41, Sacitra Cauryayasin Asane 81
13. **Vakrasana:** Easier version of Matsyendrasana (mentioned in Hathapradipika) given by Swami Kuvalayananda in his book Asan
14. **Makarasana:** Jaipur Central Meusum, with some variation in hands position.
15. **Bhujangasana:** Gheranda Samhita .ii.42, with some variation, Kirana Tika-ii. 46 on Yoga sutra, Hatha yoga Samhita-49, Sri Yoga Kaustubha-62, Yogamargapradipa-19, YogaRahasya of Nathamuni-ii.14, Jaipur CentralMuseum-7174.

16. **Salabasana:** Gheranda Samhita-ii.39, Brihada Yoga Sopana-iii46, Hathayoga Samhita- 46,Yogamargapradipa-33.
17. **Setubandhasana/CatuSpadasana:** Yogarahasya of Nathamuni.
18. **Uttana Padasana:** Sri Yoga Kaustubha-94
19. **Ardha Halasana:** Yoga-rahasya II- 17
20. **Pavanamuktasana:** Sri Yoga Kaustubha. It is done in sitting as per Yoga Asanas-3, Sachitra cauryasin Asane-5-7, Shri Yoga Kaustubha-5, Kirana Tika-ii.46 on Yoga Sutra
21. **Savasana:** Gheranda Samhita-ii.19, Hathapradipika-i.32, Hatharatnavali-iii.20,76, Kapala Kurantaka HathabhaSya Paddhati-111, Yuktabhavadeva-vi.21, Asanani-14, Yoga Siddhanta Chandrika-ii.46, Sritatva Nidhi-70, KiranaTika on Yogasutra-ii.46, Brhada Yoga Sopana-iii.24, Hathapradipika, SriYoga Kaustubha-17.
22. **Kapalabhati:** A variation of Bhastrika Kumbhaka of Gheranda Samhita - v. 70 - 72, Kumbhaka Paddhati - 164 - 165, Hathapradipika, Hatharatnavali-22-24, Hathatatvakaumudi-x.12-14, Yuktabhavadeva-vii.110-118.
23. **NadiShodhana / AnulomaViloma Pranayama :** Hathapradipika, It has visualization and internal retention breath. Additionally, Gheranda Samhita-v.38-45 has time units for inhalation, retention and exhalation.
24. **Bhramari Pranayama :** Hathapradipika, Hatharatnavali-ii.26, Kumbhaka Paddhati- 169.
25. **Sitali Pranayama :** Siva Samhita III-81-82, Gheranda , Samhita V-69, Hathapradipika-II-57-58
26. **Dhyana:** Yoga Sutra of Patanjali III.2

इकाई 12

आपका स्वास्थ्य आपके हाथ (योग : आयुर्वेद)

12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 योग परिचय
12.4 **General Rules to Practice Yoga**
12.5 स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
12.6 यातायात के नियमों की अवहेलना
12.7 मानसिक वेगों के वष में रहना
12.8 दवाओं में स्वास्थ्य खोजना
12.9 अधारणीय वेगों का धारण करना
12.10 कैसे स्वस्थ रहें
12.11 सारांश
12.12 बोध प्रश्न
12.13 सन्दर्भ ग्रंथ

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पष्चात् आप समझ सकेगे कि -

- योग परिचय
- योग अभ्यास में नियम
- स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
- यातायात के नियमों की अवहेलना
- दवाओं में स्वास्थ्य खोजना
- मानसिक वेगों के वष में रहना –
- अधारणीय वेगों का धारण करना –
- कैसे स्वस्थ रहे : आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार

12.2 प्रस्तावना

स्वस्थ्य व्यक्ति ही सुखों का उपयोग कर सकता है, इसलिए निरोग रहना आवश्यक है। स्वस्थ व्यक्ति वह होता है जिसमें शरीर की सभी क्रियाऐं उचित प्रकार से होती है, अच्छी भूख लगे,

खाया हुआ भोजन समय पर पच जाए, मल-मूत्र आदि को ठीक तरह से नि:सरण हो, समय पर नींद आए व समय पर जाग जायें।

12.3 योग परिचय CONCEPT OF HEALTH

Definition of Health

Health is generally defined as being "a state of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease or merely the absence of disease or infirmity" according to the World Health Organization (WHO). It also suggests a fourth dimension i.e. "spiritual well being". Overall health is achieved through a combination of physical, mental, emotional, social and spiritual well-being.

Physical health is characterized by good body health (average height or weight), absebce of any diseases, and is the result of regular exercise, proper diet and nutriton, and proper rest for physical recovery.

Mental health discribes either a level of cognitive or emotional well-being or an absence of a mental disorder. WHO defines mental health as "a state of well-being in which the individual realizes his or her own abilities, can cope with the normal stresses of life, can work productively and fruitfully, and is able to make a contribution to his or her community". However despite offcial definitions, the term mental health, and the question of whether on not an individual is 'mentally well', remains a subjective assessment. Social determinants of health are conditions, in which people are born, grow, live and work including the health system.

In the modern era, stress and faulty lifestyle are the main cause of various problems. Such unhealthy lifestyle and unvarying stress contribute significantly to the pathogenesis of not only psychiatric but also many other systemic disorders. The abrupt pace of modernization and industrialization expose us to lots of challenges to face like pollution, infections, psychological stress and so on. Dealing with these, our lifestyle is getting altered by adopting to unhealthy dietary habits- preserved food, fast foods, high calorie diets along with

smoking, alcohol, drugs and lack of exercise, all offer a incessant stress rusult in the development of various psychosomatic diseases such as diabetes, hypertension, arthritis, back pain etc.

'Stress is both a Challenge and a Boon'. The momentum of technological advancement has engrossed both accelerated growth in different sectors as well as intensified the stress levels in human's life. This speed and concentration of the mental faculty has aggravated stress factor even among young students and adolescents.

ANCIENT WAY OF LIFESTYLE

Lifestyle related disorders are on the rise in modern times due to erratic sedentary lifestyle one has resorted to. High level of competition, deadlines, traveling, night shifts and many other roles that every individual has to handle has left one under high levels of stress. Its not a surprise that one ignores to follow a proper lifestyle and the trend has been passed on to next generations. Contrary to that is the lack of information about a healthy lifestyle. There are simple tips that an individual can adopt to keephimself fit. It starts right from waking up early and going to bed early. Now

12.4 General Rules to Practice Yoga

Pre-requisites while doing yoga:

- One should have faith in yoga is doing's
- Practice, after having the good sleep
- Person should be free from all sort of physical and mental tension or stress
- After clearing the bowels (Passing the urine stools)
- Before practicing one should consume near about 100ml of luke warm water
- Mild oil massage should be given to weight bearing major joints (Improves the flexibility)
- While practicing person should wear loose comfortable clothes preferably the track suit and lower
- Person should not wear the spectacles, belt, wrist watch, necklace, rings etc while practicing the Yoga
- Practice should be done over the comfortable mat/carpet/ bed sheet spread over the floor

- Always loosening exercises which warms up the body should be done prior to practicing the Yoga asana's
- During the conditions like fever, tiredness, weakness and female during the menstrual period should not practice the Yoga.
- Yoga being more practical, should not be done under the guidance of the physician (Doctor) who is expert in Yoga.
- Yoga practice cannot be made generalized because the yoga practice varies according to the person's body structure, age and diseases condition. So, before practicing Yoga consult specialist who is master in medicine as well as in yoga, and know about the indicated and contraindicated asana, pranayama etc.
- Try to do yoga in company (Friends, Colleagues, Family members etc) for consistent practice.

Basics Yoga Practising:

- Each and every steps of yoga asana's should be synchronized with the breathing pattern.

For examples, while doing forward bending asana's person should exhale (Exhale the air/take out of the air from lungs) and bend forward (Padahastasana, Paschimottasana, Pavanamuktasana, Halasana, etc)

- Similarly while bending backward one should inhale (Air should be take inn)
- Every asana should be ended with the counter poses
- Person should give a pause of 10-15 second after every set of Asana to relax himself.
- Muscles, tendons and be joints should not be kept in continues strain and should not to be exhausted.
- Never practice Yoga asana and general exercises like weight lifting, Dumbbells, etc all together
- Must to have the basic knowledge about body organs, their structure and their site in the body to practice asasna and get the effect.
- Yoga practice always should be done in the following sequential order Asana (Posture), Pranayama (Breathing techniques), Dhyama (Meditation) and Visrama (Relaxation)
- It is best and must to have the healthy diet (Satvika ahara Fruits, Vegetables, Milk, Ghee) while practicing the Yoga
- Initially, Yoga practitioners should start consuming the Ghee and Milk
- Soon after Yoga practice, person should not take bath; at least there should be a gap of 30minutes to 1 hour.
- Sip of luke warm water can be consumed in between the yoga practice if individual feels thirst.

- Yoga mat which has good cushion is recommended or any blanket/ bed sheet can be used.
- Person should have his/her own yoga mat, should not share Yoga matting's with other person.

Place of Practice:

- Preferably in open space/area where wind is calm, pleasant and cool.
- Best to choose quite place where there is minimum noise pollution.
- Best place is over the terrace, lawn, garden, park, sea shore etc which is comfortable.
- In rainy and summer season, practice can be done in indoor according to once own comfort (Proper lighting ventilation should maintained)

Time of practice:

- Beginners, better to start practicing in evening between 5.00 PM to 6.00 PM (Evening time body will be having good flexibility)
- Summer season 5 am to 6 am in morning and 6pm to 7pm in the evening (During minimum heat)
  In extreme summer person can do yoga practice under the fan, but not in AC rooms
- Winter season 7 am to 8 am in morning and 5pm to 6pm In extreme winter person can do yoga practice by wear thermals
- Rainy season – when the sky is clear

12.5 स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

- अनियमित जीवन शैली
- प्रात: सूर्योदय के बाद से उठना।
- मल के वेग का तत्काल त्याग न करना।
- उठते ही टी.वी. मोबाईल, लैपटॉप व पत्र-पत्रिका आदि पर लग जाना।
- नियमित व ढंग से दातुन/ब्रुश न करना।
- देर से स्नान करना या स्नान ही न करना।
- खान - पान संबंधी गलत आदतें -
- सुबह उठते ही चाय कॉफी पीना।
- नाष्ते में फास्ट फूड/डिब्बा बन्द या अस्वास्थ्यकर कुछ भी खा लेना।
- समय से भोजन न करना।
- सारे दिन कुछ न कुछ खाते रहना।

- जानते हुए भी स्वयं के लिए अहितकर खाना।
- ठण्डे के साथ गरम के साथ्ज्ञ ठण्डे का सेवन करना।
- दूध के साथ फलों, दालों या खटाई का सेवन करना।
- फ्रीज में रखें पदार्थों का सेवन या भोजन को बार-बार गरम करके खाना।
- भोजन के शुरू में या भोजन करते ही पानी पीना।
- चाय-कॉफी का अत्यधिक सेवन।
- रात को भोजन देर से करना।
- आलस्यपूर्ण चर्या
- व्यायाम व योगाभ्यास से नियमित रूप से न करना।
- हर छोटी दूरी के लिए वाहन का प्रयोग करना।
- नियमित रूप से खुली हवा में घुमना व शरीर की मालिश आदि न करना।
- नशे ही लत -
- शराब, सिगरेट, बीड़ी, गुटखा, अफीम, स्मेक, चरस, भांग, गांजा व अन्य ड्रग्स का सेवन।
- सोषल मीडिया (फेसबुक, व्याट्सअप, ट्विटर आदि पर नशे की लत तक जुटे रहना)
- अत्यधिक महत्वकांक्षाऐं पालना -
- कैरियर, धन, व्यापार व शिक्षा के लिए बहुत अधिक महत्वकांक्षाऐं रखना।
- सुन्दरता की चाह में सौन्दर्य प्रसाधनों का अन्धाधुंध प्रयोग ।

12.6 यातायात के नियमों की अवहेलना

- वाहन चलाते समय मोबाइल पर बातें करना।
- बिना हैलमेट, सीट बैल्ट लगाए नशे की हालत में हैडफोन लगाकर चलाना।

12.7 मानसिक वेगों के वष में रहना

- काम (अत्यधिक कामनाएँ करना) क्रोध, लोभ, मोह, मद (घमण्ड या नशा) व मल्सर (दूसरे ही उन्नति से ईश्र्या करना) से नहीं बच पाना और विभिन्न तनावों को झेलना।

12.8 दवाओं में स्वास्थ्य खोजना

- स्वस्थ्य बने रहने के नियमों पर न चलना।
- अपनी मनमर्जी से दवाओं का प्रयोग न करना।
- एक बार चिकित्सक को दिखाकर हमेषा के लिए अपने आप दवाओं का सेवन करना।
- मोटापा कम करने, वनज बढ़ाने, कद बढ़ाने, सुन्दरता बढ़ाने से लेकर जटिल रोगो तक के उपचार के लिए अखबारी विज्ञापनों वाले उत्पादों का प्रयोग।
- रात्रि को देर से सोना, अत्यधिक सैक्स की चाह में दवाओं का सेवन व नींद के लिए निद्रालु दवाओं का प्रयोग।

12.9 अधारणीय वेगों का धारण करना

- शरीर के 1 3 अधारणीय वेग होते है जिनका वेग आने पर जितनी वेग आने पर जितनी जल्दी हो सके त्याग करना चाहिए। इन अधारणीय वेगों को रोकने से अनेक रोग हो सकते हैं। ये वेग हैं - अपान वायु, मल-मूत्र, छींक, छींक, प्यास, भूख, नींद, खांसी, शारीरिक श्रम करने से उत्पन्न हुआ "वांस, उबासी, आंसू और शुक्र (वीर्य)

12.10 कैसे स्वस्थ रहें

- प्रतिदिन सूर्योदय से डेढ़ घण्टा पहले उठ जायें।
- रात्रिभर तांबे के पात्र में रखा पानी पीयें।
- मूलमूत्र के वेग को जितना जल्दी हो सकें त्याग करें।

- नीम या बबूल की हरी टहनी की मुलायम कूची या मुलायम बुरष से सुबह व रात्रि सोने से पूर्व दांतों की सफाई करें व साथ ही जीभ की भी सफाई करें।
- मुख से जल भर कर शीतल जल से आंखों को धोयें जिससे दांत मजबूत रहे व नेत्र ज्योति उत्तम रहें।
- सिर, केष, आंख, नाक में गाय का घी लगायें।
- स्थिरता, हलकापन, कष्ट सहने की शक्ति हेतु प्रतिदिन व्यायाम करें।
- व्यायाम न किये जाने की स्थिति में खुली हवा में घूमें।
- पक्ष में तीन बार शेविंग करें व नख रोमादि साफ करें।
- प्रतिदिन तिल के तेल से मालिष करें, इससे अनेक लाभ होते हैं।
- तत्काल स्फूर्ति के लिए सुरप्रोश्य यानि शरीर के तापक्रम के समान जल से स्नान करें।
- ऋतु के अनुसार स्वस्थ व सुखाकर वस्त्र पहनें।
- यम (अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) व नियम (पवित्रता, तप, संतोश, स्वाध्याय, ईष्वर प्रणिधान) का पालन करते हुए नियमित रूप से स्वास्थ्यप्रद आसनों व प्राणायाम ध्यान आदि का अभ्यास करें।
- भोजन के सभी छ: रसों (मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कडवा व कसैला) से युक्त पोश्टिक भोजन का सेवन करें।
- बाजरा, लाल चावल, गेहूं, हरा चना, फल हरि सब्जियां गाय का दूध, गाय का घी, मेवे आदि पोश्टिक है अत: इनका सेवन करे।
- प्रात: भोजन के बाद छाछ व रात्रि भोजन के बाद दूध पीए।
- भोजन खूब चबा चबा कर करें आवश्यकता होतो भोजन के बीच में थोड़ा थोड़ा जल पीएं।
- जहां तक हो सकें गर्म(ताजा) भोजन करें।
- उपर्युक्त स्थान पर हाथ धोकर पूरे ध्यान के साथ भोजन करें।
- रात को भोजन सोने से दो घण्टे पहले कर लें।
- ठण्डे पदार्थों के साथ गरम पदार्थों का सेवन न करें जैसे गरम भोजन के बाद आइसक्रीम या कोल्डडिक्स

- दूध के साथ फल, खट्टे पदार्थ दालों व मछली का सेवन न करें।
- फास्ड फूड व डिब्बा बन्द भोजन से बचे, बासी भोजन न करें।
- चाय, कॉफी व तेज मिर्च, मसालों से बचे अधिक नमक से बचें।
- शहद व घी समान मात्रा में लें। रात्रि को छाछ दही न लें।
- भोजन के आरंभ में व भोजन के 45 मिनट बाद ही पानी पियें या कोई मेहनत का कार्य करें।
- जल्दबाजी में टी.वी. देखते हुए, बातचीत करते हुए बहुत धीरे धीरे या अन्य कार्य करते हुए भोजन न करें।
- प्रतिरात्रि को अपनी प्रकृति के अनुसार 6 से 8 घण्टे सोयें।
- गर्मी के अलावा किसी भी ऋतु से दिन में ना सोयें।
- सोने में सहायक वातावरण युक्त स्थान पर सोयें।
- नींद न आने पर जहां तक हो सके अंग्रेजी निद्रालु दवाओं से बचे।
- अपनी शक्ति से अधिक काम का सेवन करें।
- उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक ऋतु में आसानी से पचने वाले पदार्थों जैसे दालें, सूप, दही, के ऊपर के पानी का सेवन करें। अदरक व काली मिर्च मिलाकर नींबू का रस लें। पत्तेदार हरी सब्जी ले। गरम भोजन करें । हल्के वस्त्र पहने। दिन में न सोये। दूशित जल सेवन से बचे। कीट पतंगों से बचे।
- मध्य सितम्बर से मध्य नवम्बर तक शहद ऋतु में प्रकुपित के कारण मिठे कसेल, कड़वे व हल्के आसनी से पचने वाले पदार्थ जैसे जौ, शहद व मिश्री का प्रयोग करें। भारी भोजन, तेलीय पदार्थ, दही व तेज मिर्च मसालों से बचे। दिन मे ंना सायें । शराब का प्रयोग न करें । सीधी व तेज हवा से बचे। उबटन करें व दही न लें।
- मध्य नवम्बर से मध्य मार्च तक क्रमष: दो - दो महीने हेमन्त व षिषिर ऋतु रहती है इनमें भोजन पचाने की शक्ति बहुत अच्छी रहती है। इसलिए इन ऋतुओं में मीठा, चरपरा व नमकीन आहार लेना चाहिए। गाय का दूध गाजर, टमाटर, अजींर, खजूर व सूखे मेवों का सेवन करना चाहिए। गूड तेल आदि का सेवन करना चाहिए। उश्ण जलपान करना चाहिए तेल से शरीर की मालिष करना चाहिए। व्यायाम व वाश्प स्नान करें। ऊनी व गर्म कपड़े पहने। धूप सेवन करना चाहिए।

- मध्य मार्च से मध्य मई से बसन्त ऋतु में कप के प्रकोप से भोजन पचाने की शक्ति कमजोर रहती है। अत: आसानी से पचने योग्य भोजन ले। जैसे घीया, जौ, मूंग, शहद आदि आसव अरिश्ट लें।
- शहद को पानी मिला कर लें। भारी, खट्टे व चिकनाई युक्त आहार न लें। नियमित व्यायाम करें। दिन में सायें व उबटन का प्रयोग करें।
- मध्य मई से मध्य जुलाई तक रूक्षता रहती है व बल की हानि करती है। इस समय मीठे, हल्के, चिकने व पेय पदार्थों का सेवन करें । मिट्टी के घड़े का शीतल जल पीयें, घी-दूध से युक्त चावल का सेवन करें। छाल लें। दिन में सोयें। धूप से बचे। सूती कपड़े पहनें। केवडा, चन्दन, गुलाम व खस जैसी सुगन्धों का प्रयोग करें। शीतल जल से स्नान करें। ढीले व हल्के रंग वाले वस्त्र पहनें। स्वस्थ्यवृत के नियमों पर चलते हुए कदाचित बीमार पड़ जाये तो पहले इन घरेलू नुस्खों को अजमायें।
- अपचन या अजीर्ण होने पर 5 ग्राम सौंठ को 1 लीटर पानी में उबाल कर थोड़ा थोड़ा पीयें। अजवायन 3 ग्राम सैंधा नमक 1 ग्राम गरम पानी से लें।
- अतिसार (दस्त लगना) पर 1-2 ग्राम भुने जीरे का चूर्ण 1 गिलास छाछ के साथ दिन में चार बार लें। बच्चों का जायफल घिसकर गरम जल से दें। 5 ग्राम पुदीने को पीसकर जल से ले। बेल के फल के दूदे का चूर्ण 3-5 ग्राम गुड़ से लें।
- अप्लपित्त (एसीडिटी) में कद्दू या पेठे का रस 5 चम्मच की मात्रा में 10 ग्राम मिश्री मिलाकर लें। ग्वार पाठे का रस चार चम्मच की मात्रा से दिन में दो बार लें।
- आंखें आने पर बकरी का दूध आंख में टपकायें। एक चम्मच त्रिफला को 1 गिलास पाली में उबाल कर पानी छानकर आंखें धोयें।
- आग से जलने पर तिल के तेल में समान मात्रा में नारियल का तेल मिलाकर लगायें। ग्वार पाठे का गूदा लगावें।
- अग्निमांद्य (भूख न लगने पर) में एक चम्मच नींबू का रस पानी से लें। 1-2 ग्राम दाल चीनी व अजवायन बराबर मात्रा में लेकर भोजन से पहले चबायें। चुटकी पर काली मिर्च को शहद से मिलाकर चाटें। 5 ग्राम अदरक को सैंध नमक के साथ लें।

- उल्टी होने या जी मिचलाने पर ताजे नींबू का रस चीनी मिलाकर 1-1 घण्टे बाद लें। दो छोटी इलायची के बीजों को शहद से मिलाकर चाटें। 1 से 2 ग्राम दालचीनी को शहद के साथ 3 बार लें।
- उदरषूल (पेट दर्द) होने पर एक चम्मच अदरक का रस एक गिलास छाछ में नींबू मिलाकर लें । एक ग्राम अजवायन चूर्ण को गुनगुने पानी में 1-3 बार लें। आधा ग्राम हींग को घी में भून कर मक्खन के साथ लें। हींग को जल में घोलकर नाभि के चारों ओर लगाने से बच्चों के पेटदर्द में लाभ होता है।
- कब्ज होने पर बथुए का साग या पत्तीदार सब्जियां लें। हरड़ का5 ग्राम चूर्ण दूध के साथ लें। 10 मुनक्का दूध में उबालक लें। रात को सोते समय 1-2 चम्मच गाय का घी एक कप गरम दूध में मिलाकर 3-5 चम्मच अरण्डी के तेल को एक गिलास दूध के साथ लें।
- कास (खांसी) होने पर तुलसी के पत्तों का रस एक दो चम्मच शहद के साथ तीन बार लें। 3 ग्राम धनियें का चूर्ण काढ़ा बनाकर थोड़ी मिश्री एवं हल्दी चूर्ण डालकर दिन मे तीन बार ले या दो लौंग चूर्ण को आधे ग्राम की मात्रा में शहद में 2-3 बार लें।
- कान में दर्द होने पर तुलसी का रस 2-3 बूंद गरम करके 2-3 बार कान में डाले। (कान बहने की स्थिति में प्रयोग न करें) अदरक रस की कुछ बूंद गरम कर डालें (कान बहने पर न डाले)
- कश्टार्तव (माहवारी दर्द के साथ) होने पर ग्वारपाठे के गूदे को 10 ग्राम के साथ सुबह शाम 10 दिन तक दें। अजवायन का चूर्ण एक - दो ग्राम गरम पानी में 2-3 बार लें। या 10-5 ग्राम काले तिलों का चूर्ण गुड़ के साथ दिन में तीन बार लें।
- बुखार में सौंठ काली मिर्च व छोटी पीपल 3 ग्राम का काढ़ा बना कर पिलायें। 5 ग्राम गिलोय को 1 गिलास पानी में उबालकर पीयें।
- सर्दी लग कर आने वाले बुखार में गिलोय या नीम का पित्त पापड़ा 5-5 ग्राम 1 गिलास पानी म उबालकर सुबह शाम लें।

- जुकाम होने पर छोटी या बड़ी इलायची शहद में लें। अदरक का रस शहद से लें। रात को सोने से पहले दूध में हल्दी मिलाकर पीये 8-10 पत्ती तुलसी, 2 लोंग, 5 ग्राम अदरक व 4 काली मिर्च को मोटा पीस का आधा गिलास पानी में उबालकर चौथाई रह जाने पर छानकर लें।
- नकसीर आने पर दूध का रस 5-5 बूंद नाक में टपकाएं व दूध का रस चम्मच की मात्रा में दूध से लें।
- दांत दर्द होने पर थोड़ा सा हींग व नमक दर्द होने वाले स्थान पर रखें। कालीमिर्च, अजवायन या लौंग मुंह में रखें।
- हिचकी चलने पर कालीमिर्च चूर्ण एक ग्राम की मात्रा में शहद लें। इलायची चूण चुटकी भर मात्रा में शहद से लें।
- खून की कमी में आंवला चूर्ण या हरड़ का चूर्ण 2 ग्राम मात्रा में गुड़ से लें।
- प्रदर (ल्यूकोरिया) में सिंघाड़ा चूर्ण 1 से 2 चम्मच सुबह शाम लें। आंवला या हरड़ा का रसौत 2 ग्राम मात्रा में गरम जल से लें।
- पेषाब में जलन व हाथ पैर की जलन में आंवला चूर्ण 5 ग्राम मिश्री के साथ लें। खीरा ककडी व खरबूजे के बीज का चूर्ण मिश्री मिलाकर लें।
- बालों की रूसी होने पर नहाने के आधा घण्टे पहले मैथी को पानी में पीस कर सिर पर मालिष करें।
- कामला (पीलिया) होने पर त्रिफला चूर्ण 1 ग्राम शहद के साथ लें। ग्वारपाठा का गूदा 10 ग्राम सुबह शाम लें।
- घाव-चोट से खून आने पर हल्दी को घी या नारियल में मिलाकर लगायें। चमेली के पत्तों का घी या नारियल तेल में उबालकर चोट पर लगायें।
- मसूड़ों से खून आने पर सरसों का तैल में फिटकरी व हल्दी का चूर्ण मिलाकर मंजन करें।
- जापे में आने वाले बूखार में अजवायन, इलायची व सौंठ का उबला पानी पीयें। तिल तेल से मालिष करें।
- खूनी दस्त होने पर दूब का रस एक - एक चम्मच हर तीन घण्टे से लें।

- वबासीर में एक ग्राम अजवायन चूर्ण व आधा ग्राम काले नमक के साथ छाछ से लें। 3 से 6 ग्राम तिली का चूर्ण समान मात्रा में मक्खन के साथ दिन में तीन बार लें।
- जोड़ों के दर्द में 5 ग्राम लहसून पानी में पीस कर शहद के साथ दिन में दो बार लें। 5 ग्राम लहसून को थोड़े तिल तेल में पकाकर जोड़ों पर लगायें।
- पेट में कीड़े होने पर 2-3 ग्राम धनियां चूर्ण या अजवायन चूर्ण गुड़ के साथ दिन में तीन बार 5 दिन तक लें।
- पित्ती होने पर 1 से 2 ग्राम अजवायन चूर्ण दिन में 2 बार गरम पानी से लें।
- खूनी बवासीर होने पर अनार का रस 2 चम्मच की मात्रा में मिश्री के साथ दिन में दो बार लें।

नरो हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विशयेश्वसक्त:।

दाता सम:सत्यपर: क्षमावान् आप्तोपसेवी भवत्यरोग:।।

शरीर के लिए हितकारी आहार और विहार का सेवन करने वाला, विशयों की समीक्षा करने वाला, इन्द्रियों के विशयों में जिसकी आसक्ति नहीं हो, दानषील, सभी प्राणियों में समदृश्टि रखने वाला, क्षमावान् एवं बुद्धजनों व ज़ानियों का आदर करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

12.11 सारांश

इस इकाई के अन्त में सारांश में कह सकते है योग परिचय, योग अभ्यास में नियम, स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक, यातायात के नियमों की अवहेलना, मानसिक वेगों के वश में रहना , अधारणीय वेगों का धारण करना ,कैसे स्वस्थ रहें इसके बारे में विस्तार से आयुर्वेद के चिकित्सा सिद्धान्तों के अनुसार स्वास्थ्यदायक विभिन्न रोगों के सामान्य उपचारों का वर्णन किया गया है। निरोधी रहने के लिए उपयुक्तानुसार नियमों का पालन करना चाहिए एवं उनकी दिनचर्या में सुधार करना चाहिए किस प्रकार का खाना किस ऋतु में खाना क्या खाया जाए आदि इस इकाई में आपको समझाया गया है। अतः कह सकते है कि पहला सुख निरोगी काया।

12.12 बोध प्रश्न

1. योग परिचय लिखिए।

2. स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक लिखए।
3. यातायात के नियमों की अवहेलना को लिखिये
4. मानसिक वेगों के वष में रहना चाहिये। इससे समझेंगे
5. अधारणीय वेगों का धारण करना बताइए?
6. कैसे स्वस्थ रहें –टिप्पणी लिखो?

12.13 सन्दर्भ ग्रंथ

- योग सुधा डॉ. काशीनाथ समगण्डी, एनआईए, जयपुर
- आयुर्वेद एवं भारतीय चिकित्सा विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर
- डॉ. नित्यानन्द शर्मा, पातंजल योग दर्षन, वमखुविवि, कोटा

इकाई – 13

सूर्य नमस्कार का परिचयात्मक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 सूर्य नमस्कार एक परिचय
13.4 सूर्य नमस्कार का इतिहास
13.5 सूर्य नमस्कार कब नहीं करें, सावधानियॉ
13.6 सूर्य नमस्कार की 12 स्थितियॉ
13.7 कुर्सी पर बैठकर सूर्य नमस्कार
13.8 सूर्य नमस्कार के लाभ
13.9 सूर्य नमस्कार समग्र चार्ट एवं बीजमंत्र
13.10 बोध प्रश्न
13.11 सारांश
13.12 संदर्भ ग्रंथ

13.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम जान सकेंगे कि

- सूर्य नमस्कार एक परिचय
- सूर्य नमस्कार का इतिहास
- सूर्य नमस्कार कब नहीं करें, सावधानियॉ
- सूर्य नमस्कार की विधियॉ
- सूर्य नमस्कार के लाभ
- सूर्य नमस्कार समग्र चार्ट एवं बीजमंत्र
- कुर्सी पर बैठकर सूर्य नमस्कार

13.2 प्रस्तावना

सूर्य नमस्कार की साधना प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सु स्वास्थ्य कि प्राप्ति हेतु करनी चाहिये, इस हेतु साधक को सूर्य नमस्कार के अभ्यास से सम्बन्धित सभी निर्देशों का भली भांति समझकर फिर क्रियान्विति करने से इसका अधिकाधिक लाभ प्राप्त होता है। सूर्य नमस्कार में आसन, प्राणायाम, ध्यान, चक्र जागरण और मन्त्रोचार की क्रियायें सम्मलित होने से यह अपने आप में एक पूर्ण साधना है। वैसे तो सूर्य नमस्कर का प्रादुर्भाव एक रहस्य है, फिर भी इसे वैदिक काल के मनीषियों व आत्मज्ञानियो द्वारा स्वास्थ्य रक्षा के लिए विकसित की गई एक पद्धति माना जाता है। वर्तमान में इसके चमत्कारिक आसन अत्यधिक लोकप्रिय हो रहे है। एक वर्ष में

12 माह होते हैं, हरेक माह में सूर्य की भिन्न-भिन्न स्थितियां बनती है जिनका प्रत्येक का राशी चक्र के 12 चिन्हो से गहरा सम्बन्ध है। सूर्य नमस्कार में भी 12 स्थितियां बनती हैं जिनमें से प्रत्येक के साथ एक मंत्र जुडा हुआ हैं जिसके उच्चारण से मन व शरीर पर शक्तिशाली प्रभाव पडता है। मन्त्रों का प्रयोग आध्यात्मिक कारणो से किया जाता है।

सूर्य नमस्कार (Sun Salutation)

(अ) अनुप्रयोग प्रथम-

(1) सुर्य नमस्कार से परिचय कराते हुए इसके 12 आसनों एवं इससे मणिपुर चक्र पर पड़ने वाले प्रभाव का उल्लेख किया गया है।

(2) सूर्य अग्नि स्रोत के चमत्कारिक रहस्यों का आभास वैदिक काल के मनीषियों को बहुत पहले ही हो गया था तभी से सूर्य ऊर्जा के जन कल्याण के उपयोग के लिए जतन प्रारंभ हो गये थे।

(3) सूर्य नमस्कार कब करें, कब नहीं करें इस बाबत कुछ सुझाव एवं मार्गदर्शन।

(4) सूर्य नमस्कार की विभिन्न विधियों का वर्णन विस्तार से किया गया है साथ ही प्रत्येक स्थिति में ध्यान कहा रहेगा, कोनसा मंत्र बोला जायेगा तथा उससे क्या लाभ होगा यह भी स्पष्ट किया गया है।

(5) सूर्य नमस्कार के लाभो की गिनती का प्रयास सूर्य को दीपक दिखने के समकक्ष है फिर भी विधार्थियो की सुविधा के लिए उन्हे क्रमबद्ध किया गया है।

(6) सूर्य नमस्कार के 12 मन्त्रों के वैकल्पिक मंत्र बीज मंत्र है, जो मात्र आव्हान ध्वनियां है इनका उपयोग सूर्य नमस्कार को तेज गति से करते समय किया जाता है।

13.3 सूर्य नमस्कार एक परिचय

सूर्य नमस्कार का शाब्दिक अर्थ है सूर्य को नमन् जीवनदायिनी ऊर्जा महापुंज को नमस्कार। सूर्य नमस्कार सूर्य के प्रति सम्मान प्रकट करने की एक प्राचीन विधि है। सूर्य नमस्कार में आसन, प्राणायाम, ध्यान, चक्र जागरण और मन्त्रोचार की क्रियायें सम्मलित होने से यह अपने आप में एक पूर्ण साधना है। वैसे तो सूर्य नमस्कर का प्रादुर्भाव एक रहस्य है, फिर भी इसे वैदिक काल के मनीषियों व आत्मज्ञानियो द्वारा स्वास्थ्य रक्षा के लिए विकसित की गई एक पद्धति माना जाता है। वर्तमान में इसके चमत्कारिक आसन अत्यधिक लोकप्रिय हो रहे है। एक वर्ष में 12 माह होते हैं, हरेक माह में सूर्य की भिन्न-भिन्न स्थितियां बनती है जिनका प्रत्येक का राशी चक्र के 12 चिन्हो से गहरा सम्बन्ध है। सूर्य नमस्कार में भी 12 स्थितियां बनती हैं जिनमें से प्रत्येक के साथ एक मंत्र जुडा हुआ हैं जिसके उच्चारण से मन व शरीर पर शक्तिशाली प्रभाव पडता है। मन्त्रों का प्रयोग आध्यात्मिक कारणो से किया जाता है। सूर्य नमस्कार आसनों का समूह है, इसलिए आसन सम्बन्धित सभी नियम इसमें भी लागू होते है साथ ही इसमें उपासना का अंश भी जुडा है जिससे

मानसिक संतोष एवं स्थिरता प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक धर्म में अलग-अलग मंत्र होते है और सभी अपने-अपने धर्म के अनुसार मन्त्रोंचार करने के लिए स्वतंत्र हैं। हिन्दु धर्म में सर्वाधिक प्रचलित मंत्र 'ओम' है, इसाई धर्म में 'आमेन' तथा इस्लाम धर्म में 'आमीन'।

"यथाभिमत ध्याना द्वा"

अर्थात् जिसका जो अभिमत है उसका ध्यान करें।

इसमें 12 स्थितियाँ मिल कर सूर्य नमस्कार का आधाचक्र बनाती है दो आवृतियों के करने पर कुल 24 स्थितियां बनती है तब एक पूर्ण चक्र बनता है। आदर्श रूप में सूर्यनमस्कार अन्य आसनों से पूर्व करना चाहिए तथा सूर्यनमस्कार के बाद शवासन करना चाहिए जिससे हृदय की धड़कन और श्वास सामान्य स्थिति में आ जाती है। इसमें आयु का कोई बन्धन नहीं है।

सूर्य नमस्कार लाभ मंत्र :-

'आदितस्य नमस्कारान् ये कुर्वन्ति दिने दिने'।
आयु प्रज्ञाबलंवीर्य तेजस तेषां च जायते''
अकालमृत्यु हरणम सर्वव्याधिविनाशनम्।
सूर्यपादोदकं तीर्थ जठरे धारयाम्यहम्।।''

अर्थात् प्रतिदिन सुर्य नमस्कार करने से आयु, बुद्धि, बल ,वीर्य एवं तेज(ओज) बढ़ता है। अकाल मृत्यु नहीं होती है सभी व्याधियो (रोगो) का नाश होता है।

सूर्य नमस्कार कई महिनो संतुलित आहार लेने से होने वाले लाभ से ज्यादा फायदेमंद है इससे "मणिपुर चक्र" जो बादाम के आकार का होता है बढ़कर हथैली के आकार जितना हो जाता है इससे हमारी अर्न्तदृष्टि (सिक्स्थ सेन्स) विकसित होती है, हमारे भाव एकत्र होते है। मणिपुर चक्र हमारा दूसरा मस्तिष्क भी कहलाता है इसके आकार में छोटे हो जाने व सिकुड़ जाने पर नकारात्मकता भाव बढ़ता है अत: मनुष्य सुस्त व अवसादमय हो जाता है इसके विपरीत मणिपुंर चक्र के विकास से मानसिक स्थिरता बढ़ती है तथा रचनात्मकता एवं क्रियाशीलता बढ़ती है। सूर्य नमस्कार में शरीर आसनों से, मन मणिपुरचक्र से , आत्मा मन्त्रोंच्चार से तथा चक्र ध्यान से सबल होते हैं। मुनष्य की सामान्य वृद्वि गुरूत्वाकर्षण के विपरीत होती है, इसलिए गुरूत्वाकर्षण के विपरीत हुई हलचलों में मनुष्य हल्केपन का अनुभव करता है। अब तो नासा ने भी अपने संवेदनशील उपरकरणों से सूर्य ध्वनि को रिकॉर्ड किया है जिसमें ओम् का उच्चारण (नाद) सुनाई देता है।

13.4 सूर्य नमस्कार का इतिहास

सूर्य आज भी एक रहस्य है। यह हमारे सूक्ष्म शरीर को अपनी चैतन्य शक्ति से जीवंतता प्रदान करता है। प्राचीनकाल में ही हमारे ऋषि मुनियो ने इसके रहस्य को समझ लिया था और इसके उपयोग की कला को आमजन के कल्याण के लिये प्रतिपादित किया था। सूर्य देव को आर्घ्य अर्पित

का प्रचलन आदिकाल से चला आ रहा है क्योंकि यह जीवनदायनी ऊर्जा का स्त्रोत है इसलिये सूर्य नमस्कार किया जाता है। प्राचीनकाल से ही सूर्य नमस्कार की गणना योगासन तथा व्यायाम दोनो में की गई है।

आइयें वेदों में सूर्य नमस्कार की उत्पति के दांवो को खोजते है। वेद संहिता (12वीं से 10वीं ई.पू.) विभिन्न स्तुति मंत्र और अवतरणों का संकलन है। इसके विभिन्न भागों में सूर्य की प्रशंसा है। सूर्य को अग्नि स्त्रौत या अग्नि अनुष्ठान के चमत्कारिक माध्यम से स्वास्थ्य व समृद्धि का प्रतीक माना है। कालान्तरण में वैदिक कर्मकाण्ड तेजी से समावेशित होते गये। विभिन्न प्रकार के पारम्परिक अभिवादन (प्रणाम) सूर्य आराधना में रचे गये। इन अन्त: अग्नि से प्रेरित सूर्य आराधना को आधुनिक सूर्य अभिवादन (नमस्कार) की उत्पति के रूप में देखा जा सकता है।

ऋग्वेद -

ऋग्वेद में सूर्य के प्रकाश के संयोग को रोग निवारक कहा गया है। सूर्य को देव, मित्र और प्राणीमात्र का शुभचिन्तक बताया गया है।

यजुर्वेद -

यजुर्वेद में उल्लेख है कि ''सूर्यो वै आत्मा जगतस्तस्थुश्च'' अर्थात् सूर्य सारे संसार की आत्मा है। सूर्य ही प्रत्यक्ष आरोग्यदाता देव है। दीर्घायु एवं स्वास्थ्य के लिये सूर्य की पूजा की जाती है।

सामवेद -

सामवेद में भी सूर्य रश्मियो को हर्ष और आनन्द देने वाली एवं उपासकों को अपनी ओर द्रवित करने वाला बताया गया है।

अर्थवेद -

अथर्ववेद में उल्लेख है कि प्रात:काल की आदित्य किरणों से अनेक व्याधियों का नाश होता है।

सूर्योपनिषद में बताया गया है कि जो सूर्य को ब्रह्म मानकर उपासना करता है वह दीर्घजीवी, बुद्धिमान और शक्तिशाली होता है। सूर्य समय चक्र को गति प्रदान करता है।

अक्षयोपनिषद में भी अनगिनत किरणों वाले सूर्य का रूप धारण करने वाले ईश्वर के रूप में चित्रित किया गया है।

अगस्त मुनि ने श्रीराम को रावण से युद्व करने से पूर्व ''आदित्य हृदयम'' का पाठ पढाया था जो भी सूर्य नमस्कार का ही एक रूप है। इसी प्रकार रामायण सीरियल में भी भगवान राम और लक्ष्मण को गुरू वशिष्ठ द्वारा आश्रम में सूर्य नमस्कार के 12 आसनों का अभ्यास कराते हुये दिखाना इतिहास सम्वत है (एपिसोड दिनांक 05.02.08)।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र सांब का कुष्ठरोग सूर्य उपासना से दूर हुआ था इसलिये सांब ने सांबपुराण की रचना की, जिसमें सूर्य की महिमा एवं उपासना का वर्णन है।

भारतवर्ष में अनेक सूर्य मन्दिर बने हुये है। कुछ का निर्माण तो 8वीं सदी में ही हो गया था जो प्राचीनकाल में सूर्य उपासना का प्रमाण हैं। ज्योतिष में भी सूर्य सिद्वान्त एक प्राचीन विधि है जो समय की गणना, ग्रहों की गति एवं ग्रहण से सम्बध्द है। मिस्त्र के पिरामिड भी सूर्य के प्रतीक है तो अजेक (Aztec), इन्का (Inca) तथा मयान (Mayan) सभ्यताओं में भी सौर देवों की उपासना के मन्दिर विद्वमान थे। मयान कलेण्डर में भी सूर्य के बारे में विश्वसनीय जानकारियां थी। चीन पुरातन दर्शन यांग (Yang) तथा यिन (Yin) प्रकति के द्विविध सम्बन्धों (सूर्य-चन्द्रमा या इडा पिंगला) का प्रतिनिधित्व करते है। यूरोपीय देश विशेषकर इंग्लेण्ड व फ्रांस में जनवरी माह में सूर्य की रोशनी बहुत कम मिलती है। इसके कारण लोगो में थकान औेर डिप्रेशन की समस्या पेदा होती है जिससे मेलाटोनिन हार्मोन की मात्रा गडबडा जाती है औेर बॉडी क्लॉक बिगड जाता है। इससे बचने के लिये लाईट थेरेपी लेनी पडती है । इस आर्टीफिशियल लाईट को ओजोन एंव सूर्य की रोशनी में मिलने वाले सभी तत्वो को शामिल करके तैयार किया जाता है।

भारतवर्ष के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत सूर्य में स्थित जिनालयों को नमस्कार किया करते थे। दक्षिण भारत के आचार्यो ने इसे आत्मसात किया तथा जीवन्त रखा। जब वो तीर्थ स्थानों पर जाते थे तो नित्यकर्म में सूर्य नमस्कार करते थे। जनता ने उन्हे देखा और अनुसरण किया जिससे इसका प्रचार हुआ।

शिवाजी महाराज को उनके गुरू समर्थ रामदास ने सूर्य नमस्कार की विधि बताई। समर्थ रामदासजी स्वयं एक हजार सूर्य नमस्कार प्रतिदिन करते थे। सूर्य नमस्कार के अभ्यास से शिवाजी का शरीर एवं चरित्र इतिहास में अद्वितीय हो गया। शिवाजी ने अपने सैनिको को भी यह अभ्यास कराया जिससे उनकी क्षमताओं में जबरदस्त वुद्वि हुई। पातंजलयोगप्रदीप में भी स्वामी ओमानन्द तीर्थ नें सूर्यभेदी व्यायाम के 15 आसनों का उल्लेख किया है।

दण्डवत प्रक्रिया में भी भक्त समर्पण, एकाग्रता तथा भक्तिभाव से प्रार्थना मुद्रा बनाता है फिर झुकता है, फिर दण्डवत लेटता है, फिर खडा होता है, इससे भी आंशिक रूप में सूर्य नमस्कार के समरूप अवस्था बनती है।

13.5 सूर्य नमस्कार कब नही करें, आवश्यक सुझाव व मार्ग दर्शन

(क) सूर्य नमस्कार कब नही करें**:-**

1- जिनका ऑपरेशन हुए तीन माह नहीं हो गये हो।
2- हर्निया के रोगी।

3- मेरूदण्ड सम्बन्धित विकार हो तो चिकित्सकीय परामर्श से ही अभ्यास करें।
4- स्लिप डिस्क से ग्रस्त लोग आगे झुकने के आसन नहीं करें।
5- जिनके शरीर मे बहुत अधिक मात्रा में विषाक्त तत्व जमा होते है उन्हे सूर्य नमस्कार से ज्वर आ जाता है ऐसी स्थिती में सूर्य नमस्कार बन्द कर अन्य आसन करें कुछ दिन बाद इसे पुन: प्रारम्भ कर सकते है।
6- महिलाएं गर्भधारण के चौथे माह से इस अभ्यास को नहीं करें।
7- प्रारम्भ में कुछ लोगो को सूर्य नमस्कार से दस्त लग जाते है तथ बुखार भी आ जाता है ऐसा शरीर में जमा मल के कारण होता हैं, उन्हे कोई दवा नहीं लेनी चाहिए मात्र 24 से 48 घण्टे में सब कुछ स्वत: ही ठीक हो जाता है, अत: इस अवधि में विश्राम कर सकते हैं।
8- जिन्हे आंतो में टी.बी. हो वे भी नहीं करें।
9- मासिक धर्म की अवधि में ।
10-हृदयघात और उच्च रक्तचाप से पिडित।
11-8 वर्ष से कम उम्र के बच्चो के लिए ज्यादा लाभदायक नहीं है।
12-अधिक वय वाले लोग अधिक खिंचाव वाले आसन नहीं करें।
13-नास्ता या भोजन करने के बाद नही करें।

(ख) **आवश्यक सुझाव व मार्ग दर्शन**

1- सूर्य नमस्कार प्रात: शोच निवृति उपरान्त स्नान करके खाली पेट करना चाहिए। स्वच्छ वातावरण हो, खुला स्थान, नदी या तालाब का किनारा, बगीचा या घर की छत पर किया जा सकता है। यदि कमरे में भी किया जावें तो वह हवादार हो। यह सायंकाल भी किया जा सकता है, लेकिन खाना खाने से पूर्व ताकि जठराग्नि प्रज्ज्वलित हो सके।
2- प्रसन्नता के साथ बिना तनाव के किया जाना चाहिए। इस अभ्यास में किसी की नकल या प्रतियोगिता की आवश्यकता नही है। जिसका शरीर जितना सक्षम है, उतना प्रयास करें। महर्षि पतंजली ने आसन सिद्वी के क्रम में एक उत्कृष्ठ उपाय बाताया है-
‘‘ अकरणात करणम श्रेय:”
अर्थात् न करने से कुछ करना ठीक है। बिना थकान के जितना किया जा सके उतना ही करें।
3- प्रारम्भ में जिनको कठिनाई महसूस हो, तो सूर्य नमस्कार दो भागों में किया जा सकता है- पहला भाग- स्थिति 1, 2, 3, 10, 11 तथा 12, द्वितीय भाग में स्थिति 4, 5, 6, 7, 8 एवं 9 का अभ्यास दुरूस्त होने पर सम्पूर्ण अभ्यास एक साथ किया जा सकता है। यदि फिर भी कठिनाई आती है तो मात्र 10 स्थितियों का ही आधा चक्र किया जा सकता है। इसमें स्थिति 6 एवं 7 के आसन छोडे जा सकते है।
4- यह एक शक्तिशाली अभ्यास है। अति करने पर बुखार आ सकता है, शरीर दर्द, फुंसिया, जुकाम व पतले दस्त हो सकते है, ऐसा होने पर विश्राम करें सब स्वत: ही ठीक हो जाता है।

इसी प्रकार ज्वर, चक्कर आना, कोई फेक्चर होने की स्थिति में भी यह अभ्यास नही करना चाहिए।

5- यदि चार चक्र (24-24 स्थितियों के) अभ्यास किया जाता है तो दो अर्द्ध चक्र धीमी गति से प्रत्येक आसन पर कुछ निश्चत सैकण्ड तक रूक कर करें तथा दो अर्द्ध चक्र तेज गति से लयबद्व तरीके से करें (जैसे प्रति आसन 2 सैकण्ड)।

6- मांसपेशियो में जिन लोगो के खिंचाव ज्यादा हो वे खाने में नमक की मात्रा कम कर दे तथा पवनमुक्तासन करें। स्लिप डिस्क के रोगी डॉ0 से सलाह ले एवं आगे झुकने के आसन नही करें।

7- सूर्य नमस्कार के अभ्यास के बाद शवासन करना चाहिए क्योंकि शवासन से चित्त व शरीर शांत होता है-

'' उत्तानम् शववद भूमौ शयनम् तच्छवासनम,
शवासनम श्रान्तिहर चित्तविश्रान्तिकारकम "

इससे शरीर का शिथिलीकरण होता है। सूर्य नमस्कार से ऊर्जा की मात्रा व ह्दय की धड़कन बढ जाती है तो अनुकम्पी स्नायुमंडल (Sympathetic nervous System) उत्तेजित हो जाता है। शवासन से परानुकम्पी स्नायुमण्डल (Parasympathetic nervous System) सक्रीय होने से शरीर सामान्य अवस्था में आ जाता है। इस प्रकार दोनो अभ्यास संयुक्त रूप से करने से स्व-संचालित स्नायू मंडल (Autonomic Nervous System) उद्वीप्त होता है, जिससे शरीर में तेज और ओज बढ़ता है।

8- सूर्य नमस्कार चक्रों पर ध्यान केन्द्रित कर मन्त्रोंच्चार के साथ किया जाता है तो इसके लाभ सौ गुणा बढ जाते है। इनका मानसिक उच्चारण उत्तम है, सस्वर भी किया जा सकता है। यदि एकाग्रता के साथ किसी मंत्र को मन ही मन दोहराते है तो तन-मन में एक लय उत्पन्न होती है, चेतना, विचार एवं ध्वनी एकरूप होती है।

9- अभ्यास से सूर्य नमस्कार आपके शरीर में एक आकृति (shape) बनाता है। जब आप सफर में होते है(बस, ट्रेन, कार या प्लेन) तो आंख बंद करके मानसिक रूप से भी इस अभ्यास को कर सकते है इसमें ध्यान प्रधान तत्व होगा।

10-सूर्य नमस्कार या अन्य आसन करते समय पसीना सिर से टपकना चाहिए न कि बाकी शरीर से क्योंकि शरीर से तो पसीना मौसम की स्थिति की वजह से निकलता है। सिर से टपकता पसीना ऊर्जा की सही दिशा को दर्शाता है।

11-सूर्य नमस्कार से पूर्व कक्ष के तापमान से कम तापमान (3 से 4 डिग्री) के जल से स्नान करना उत्तम रहता है। इससे कोशिकाए संकुचित होकर आवेशित होगी और अन्त: कोशिकीय स्थान का विस्तार होगा। यदि गर्म जल से स्नान करते है तो कोशिका छिद्र खुल जायेंगे और जल को अवशोषित कर लेंगे जो उचित नहीं है।

12- सूर्य नमस्कार की उर्जा से शरीर उष्ण हो जाता है ऐसे में ठंडे पानी से इसे नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए ना ही ठंडा पानी पीना चाहिए जरूरत अनुसार शवासन करें। बार-बार टायलेट जाने से बेहतर है पसीना बहाकर वेस्ट वाटर को बाहर निकाला जावे क्योंकि शुद्धिकरण का यह उत्तम तरीका है।

13-चन्द्रोदय के बाद सूर्य नमस्कार चन्द्रनमस्कार बन जाता है इसमें एक आसन और जुड जाता है।

14-सूर्य नमस्कार को शिघ्रता से किया जाता है तो यह पिंगला नाडी पर सर्वाधिक असर करता है । परन्तु मन्त्रोंचार के साथ चक्रों पर सजगता रखते हुए यह मंदगति से किया जावे तो यह इडा एवं पिंगला नाडियों पर समान प्रभाव डालता है। मंदगति में पिंगला को प्रमुखता नहीं दी जाती इसीलिए दोनो गतियों में सूर्य नमस्कार किया जाना श्रेष्ठ है।

13.6 सूर्य नमस्कार की 12 स्थितियॉ

सूर्य नमस्कार की प्रत्येक स्थिति ठीक कैसे हो, इस पर ध्यान देना अति आवश्यक है। उस सही स्थिति को प्राप्त करने के लिए कौन से प्रयत्न किये जाने चाहिए इसका ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक स्थिति में किन-किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है इसे समझने के लिए क्रमवार 12 स्थितियों को देखते है -

स्थिति 1

प्रार्थनामुद्रा/प्राणामासन/नमस्कारासन

खडी अवस्था में दोनो पैरों को एक साथ रखते हुए शरीर का भार दोनों पैरो पर समान रूप से रखे, दोनो हाथ नमस्कार की मुद्रा में सीने के सामने रखे। एडियों एवं पैरो के अंगूठो में 2 इंच की समान दूरी हो। पैरा की अंगुलियॉ ऊपर उठाये जिससे अंगुलियों की पीछे की गद्दियॉ तथा एडिया पूरी तरह जमीन पर रहे, फिर दोनों पैरो की कनिष्ठकाए जमीन पर रखे, बाद में अन्य अंगुलियों को जमीन पर रखे। दोनों तलुओ की कमानियां ऊपर उठी हुई रहेगी। घुटनों की कटोरिया ऊपर तनी हुई। नितम्बों को

संकुचित करें। दृष्टि सामने, मन शांत, जीभ तनावमुक्त हो, पेट अन्दर, सीना उठा हुआ हो। गहरी और दीर्घ श्वास लें और बाहर छोडे।

एकाग्राता:- अनाहत चक्र पर (Cardiac Plexus)

मंत्र:- ऊँ मित्राय नम: - अर्थात् सबके मित्र को प्रणाम।

सूर्य असीम ऊर्जा का स्त्रोत है सबका मित्र है। समस्त जीव जन्तु, पेड-पोधे और ग्रहो का अस्तित्व इसी से है ।

लाभ- शरीर का शिथिलीकरण होता है। एकाग्रता अनाहत चक्र पर होने से अन्तर्मुखता बढ़ती है। व्यायाम की तैयारी के रूप में एकाग्र व शांत अवस्था लाता है। रक्त संचार सामान्य करता है।

स्थिति 2.

हस्त उत्तानासन/उध्र्वासन

खडी अवस्था में शरीर को यथा शक्ति पीछे की और झुकाए। कमर पर बिना जोर डाले ऊपर के हिस्से को पीछे मोडना है। दोनो पैर 2 इंच की दूरी पर हो, पीठ धनुषाकार, भुजाऐं सीधी सिर के ऊपर हो, इनमें अन्दर से तनाव देना है जिससे कोहनी में मोड नही हो, हथेलिया बाहर की और खुली हुई हो, श्वास अन्दर हो। पैर व पंजो की गद्दियो को जमीन पर दबाये ताकि घूटने नही मुडे।

एकाग्रता- विशुद्धि चक्र पर (Carotid plexus)

मंत्र- ऊँ रवये नम: - अर्थात् प्रकाशवान को प्रणाम।

जो स्वयं प्रकाशवान है उसकी और शरीर को ताना जाता है ताकि दिव्य आशीष प्राप्त हो। संसार में चहल-पहल लाने वाले सूर्य देव आपको नमस्कार

लाभ- मेरूदण्ड में खिचांव होता है, पाचन सुधरता है, थायरायड व विशुद्धि चक्र पर प्रभाव पडता है, मेटाबोलिज्म बढ़ता है और मोटापा कम होता है। प्राण प्रवाह ऊपर की और होता है।

भुजाएं, कंधे व गर्दन का व्यायाम होता है। आमाशय की अतिरिक्त चर्बी हटती है। फुफ्फुस पुष्ट होते है।

स्थिति 3.

पादहस्तासन/उत्तानासन/हस्तपादासन

गहरी श्वास भरे तथा श्वास को बाहर निकालते हुए उरूसंधी से आगे की तरफ झुके और दोनो हथेलियों को दोनो पंजो के बगल में जमीन पर रखे, सभी 20 अंगुलियां एक सीध में हो। घुटने से नाक स्पर्श करने का प्रयास हो किन्तु घुटने सीधे रहे। क्षमता से परे जोर नहीं लगावें। पूरी श्वास बाहर निकलने पर अन्तिम स्थिती में आमाशय को संकुचित करें। पीठ का गड्डा एवं वक्रता बनी रहे, कूबड न निकाले।

एकाग्रता- स्वाधिष्ठान चक्र पर (Hypogastric plexus)

मंत्र- ऊँ सूर्याय नम:- अर्थात् क्रियाओं के प्रेरक को प्रणाम।

सूर्य सर्वोच्च चेतना का प्रतीक है तथा चेतना के सभी सात स्तरो को नियंत्रित करता है। वेदो में वर्णित सूर्य देवता का आवास आकाश है और उसका प्रतिनिधित्व करने वाली अग्नि का आवास भूमि पर है। अत: संसार को जीवन देने वाले सूर्यदेव आपको नमस्कार।

लाभ - उदर अवयवो की मालिस होती है- यकृत, गुर्दे, पित्ताशय, अधिवृक्क ग्रंथि, अग्नाशय, अण्डाशय और गर्भाशय (liver, kidney,gallbadder, adrenal gland, pancreas,overy and utarus याद रखने का फार्मुला =Lkg-apo-u) आदि पाचन शक्ति बढ़ती है, मासिक धर्म की अनियमितता दूर होती है। अपस्फीत शिरा (varicos veins) तनाव मुक्त होती है। हृदय एवं मस्तिष्क में रक्त प्रवाह बढ़ता है। प्राण शरीर के नीचले हिस्से में प्रवाहित होता है उसे अपान कहते है। कब्ज मिटती है तथा रीड लचीली होती है। उदर की चर्बी कम होती है।

स्थिति 4.

अश्वसंचालनासन/एक पाद प्रसारणासन

बायें पैर को यथा सम्भव पीछे फैलायें इसी के साथ दाहिने घुटने को मोडे लेकिन पंजा अपने स्थान पर यथावत रखे। बांये पैर का अंगुठा, अंगुलियां एवं घुटना भुमि से स्पर्श करेंगे। दोनो हाथ भूमि पर रखे, सिर यथा सम्भव पीछे की और ले जावें। शरीर धनुषकार बनावें । श्वास अन्दर। शरीर का वजन दोनो हाथो पर, बायें पैर के पंजे, बायें घुटने व दाहिने पैर की अंगुलियों पर रहेगा।

मंत्र- ऊँ भानवे नम: अर्थात् प्रदीप्त करने वाले को प्रणाम, हे प्रकाश पुंज, आपको नमस्कार। सूर्य गुरू का प्रतीक है जो हमारे अंधकार को दूर करता है। प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार को निशा अन्त (प्रात:) मे दूर भगाता है।

एकाग्रता - आज्ञाचक्र पर (Medula plexus)

लाभ-श्रोणी प्रदेश(Pelvis region), उदर पेशियो में खिंचाव एवं पीठ की पेशियां शिथिल होती है क्योंकि मेरूदण्ड पीछे मुडता है। श्रोणी प्रदेश से प्राण ऊपर उठ कर भुमध्य तक पहुंचता है। साइनस ठीक होता है। उदर प्रवेश में हल्के तनाव के कारण पाचन तंत्र दुरूस्त होता है।

स्थिति 5.

पर्वतासन/अधोमुखश्वानासन/भुधरासन

दाहिने पैर को पीछे लाकर बायं पंजे के पास रखे, एडियॉ जमीन पर दबाये, शरीर पीछे ले जाये, सिर भुजाओ के मध्य लाकर ठोडी को सीने से लगा कर नाभी को देखने का प्रयास करें। नितम्बो को ऊपर उठाये, हाथ सीधे रखे। एडिया भूमि से स्पर्श करें। श्वास बाहर।

एकाग्रता - विशुद्धि चक्र पर (Carotid plexus)

मंत्र -ऊँ खगाये नम: अर्थात् आकशगामी को प्रणाम। आकाश में गति करने वाले देव, आपको नमस्कार। प्राचीन काल से आज तक समय के ज्ञान के लिये सूर्य की गति को ही आधार माना जाता है। समय के ज्ञान प्रदाता शक्ति पुंज को नमन।

लाभ - अभ्यास 4 के विपरीत रीड को उल्टी दिशा में मोडने से भुजाओं, पैरो के स्नायु तथा मांसपेशियां सबल होती है। थायराईड ग्रन्थी पर दबाव पडता है। रेचक के साथ प्राण प्रवाह नीचे की

और होता है। मेरूदण्ड में शुद्ध रक्त का संचार होता है। सिर सामने की तरफ झुका होने के कारण रक्त संचार बढ़ता है जिससे चेहरे पर ताजगी, आंखो की रोशनी का बढना तथा बालों का झडना रूकता है।

स्थिति 6.

अष्टांग नमस्कार

श्वास को बाहर रोक कर (बर्हिकुंभक) शरीर के आठो अंग भूमि से स्पर्श करें दोनो पैरो की अंगुलिया, दोनो घुटने, दोनो हथेलियां, सीना तथा ठुड्डी। नितम्ब और पेट जमीन से ऊपर उठे रहे।
एकाग्रता -मणिपुर चक्र पर(Epigastric plexus अधिकार स्नायू जाल)

मंत्र- ऊॅ पुष्णे नम: अर्थात् हे संसार के पोषक, आपको प्रणाम।

अष्टांग प्रणाम में शरीर के आठो केन्द्रो को जमीन से स्पर्श कर उस भाग्य विधाता को प्रणाम करते है जो समस्त शक्तियों का स्त्रोत है जो ऊर्जा, प्रकश और जीवन देकर हमारा पालन करता है।

लाभ- बर्हिकुंभक की स्थिती में प्राण प्रवाह मणिपुर चक्र की तरफ होने से प्राण व अपान संयोग होता है। पैरो एवं भुजाओं की पेशिया मजबूत होती है सीना विकसित होता है। मेरूदण्ड में रक्त प्रवाह बढ़ता है। छाती और फेफडों को शक्ति मिलती है।

स्थिति 7.

भुजंगासन

हाथो को सीधा रखते हुए शरीर को कमर से ऊपर उठायें, दोनो जांघे एवं पंजे जमीन पर स्पर्श करें। सिर को यथाशक्ति पीछे ले जावे। मेरूदण्ड धनुषाकार हो, श्वास अन्दर हो।
एकाग्रता- स्वाधिष्ठान चक्र पर (Hypogastric plexus)

मंत्र- ऊॅ हरिण्यगर्भाय नम: अर्थात् हे ज्योतिर्मय, आपको नमस्कार।

लाभ- कब्ज व पेट के सभी रोगो के लिए उपयोगी है। फेफडो व पेट पर दबाव पड़ने से गुर्दे, यकृत, बदहजमी एवं दमा जैसी बिमारियों से मुक्ति मिलती है। प्राण प्रवाह ऊपर की और होता है। पहले की दो स्थितियों मे प्राण को नीचे रोका था। यह मेरूदण्ड का सर्वश्रेष्ठ आसन है। पाचन संस्थान को क्रियाशील बनाता है। दमा, बोंकाइटिस, सरवाईकल स्पेन्डोलाईटिस एवं स्लिप डिस्क रोगियो के लिए लाभप्रद है।

स्थिति 8.

पर्वतासन

यह स्थिति 5 की पुनरावृति है। अन्तिम स्थिति में पैर व भुजाए सीधी रखे। नितम्ब ऊपर उठे हुए, एडिया भूमि को स्पर्श करें, पैरो के पंजे आपस में मिले हुये हो तथा श्वास बाहर छोडे। दृष्टि नाभि की तरफ रखे।

मंत्र:- ऊँ मरीचये नम: अर्थात् सूर्य रश्मियो को प्रणाम। हे किरणो के स्वामी, आपको प्रणाम।

मरीच ब्रह्मपुत्र है लेकिन इसका अर्थ मृग मरीचिका भी होता है। शास्वत सत्य की खोज में जिन्दगी भर मृग मरीचिका कि तरह भटकने से श्रेष्ठ है सद्ज्ञान की प्रार्थना। पर्वतासन में सही तथा गलत की समझ के लिए स्तुति करते है।

स्थिति 9.

अश्वसंचालनासन

यह स्थिति 4 की आंशिक पुनरावृति है। स्थिति 4 में बायां पैर पीछे जाता है जबकि इसमें दाहिना पैर पीछे रहता है।

मंत्र - ऊँ आदित्याय नम: अर्थात् अदिति सुत को प्रणाम। हे संसार के रक्षक, आपको नमस्कार।

अनन्त विश्वजननी, देवजननी को प्रणाम। अदिति उस महा शक्ति का ही एक नाम है।

स्थिति 10

पादहस्तासन

यह स्थिति 3 की आवृति है।

मंत्र- ऊॅं सवित्रे नम: अर्थात् सूर्य उद्यीपन शक्ति, हे विश्व को उत्पन्न करने वाले, आपको नमस्कार सवित्रे उगते सूर्य का प्रतिनिधि है। यह मनुष्य को जागृत करने वाला देव है। सूर्य को जीवनदायनी शक्ति एवं प्रकश प्राप्ति हेतु सवित्र को प्रणाम किया जाता है।

स्थिति 11

हस्त उत्तानासन

यह स्थिति 2 की आवृति है।

मंत्र- ऊॅं अकार्य नम: अर्थात् प्रशंसनीय को प्रणाम। हे पवित्रता को देने वाले, आपको प्रणाम।

सूर्य विश्व शक्तियों का प्रमुख स्त्रोत है अर्क ऊर्जा को कहते है। इस ऊर्जा स्त्रोत के प्रति श्रद्धा प्रकट करते है।

स्थिति 12

प्रार्थना मुद्रा या प्राणामासन या नमस्कारासन

यह प्रथम स्थिति की आवृति है। प्रथम स्थिति सूर्योदय की थी तो यह अन्तिम स्थिति सूर्यास्त की प्रतीक है।

मंत्र- ॐ भास्कराय नम: अर्थात् आत्मज्ञान प्रेरक को प्रणाम। हे प्रकाश करने वाले, आपको प्रणाम।

हम प्रार्थना करते है कि सूर्य हमारे चरम लक्ष्य- जीवन मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करें। सूर्य के प्रति अपनी श्रद्धा सर्मपित करते है।

यह सूर्य नमस्कार की आधी आवृत्ति है। पूरी आवृत्ति करने के लिए हमने आसन क्रमांक 4 और 9 में जिस पैर को पीछे किया था दोहराने (पूरी आवृत्ति करने) पर दूसरे पैर को पीछे करेंगे। जैसे हमने पहले बांये पैर को पीछे किया वैसे ही अब दाहिने पैर को पीछे करेंगे।

सूर्य नमस्कार की एक अन्य विधि -

सूर्य नमस्कार की हमारे देश में कई विधियॉ प्रचलित है। इसकी एक अन्य विधि का श्री मंगलेश यादव (शासकीय योग प्रशिक्षण केन्द्र के योग प्रशिक्षक) ने पद्यानुवाद किया है, जो इस प्रकार है-

समवस्था पूर्वाभिमुख मीलित नयन विशेष,
सूर्यदेव को नमत है अकिंचन 'मंगलेश'।
मित्र, रवि, सूर, भानु, खग, पूष्ण हिरण्यगर्भाय,
मारिच, आदित्य, सवित्र, अर्क बन्दौ भास्कराय।
एक में हाथ और सिर पीछे, दो में सिर घुटनन लग जाय,
तीन में हो बायां पग पीछे, चार में क्रमश: उपर जाय।
पांच में पवर्त आसन करके छ: में देओ दण्ड लगाय,
सात में बायां पग हो आगे, आठ में क्रमश: उपर जाय।
नौ में पुन: बने पर्वत सा, दस में देओ दण्ड लगाय,
ग्यारह में उछलें फिर दो सा, बारह में एक-सा हो जाय।

सूर्य भेदी व्यायाम

निम्न 15 आसन शरीर के समस्त अंगो के संचालन व सुन्दर स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

1- नमस्कार आसन - सीधे खड़े होकर पावं, घुटने, हिप्स, पीठ, गला और सिर समसूत्र में रख प्रणाम करना।

2- उध्र्व नमस्कार आसन- दोनो हाथो को उपर ले जाकर उर्ध्व दिशा में नमस्कार, इसमें पेट आगे व हाथो को यथा संभव पीछे की और झुकाना होता है।

3- हस्त पादासन- हाथो को नीचे दोनो पंजो के बगल में रखे, घुटने तने हुए एवं पेट अन्दर हो।

4- एकपाद प्रसरणासन- हाथ यथास्थान पर रखते हुए एक पावं को यथा संभव पीछे ले जाकर फैलाना।

5- द्विपाद प्रसरणासन- दुसरे पांव को पीछे ले जाकर फैलाना। दोनो पावों व हाथो का जोडा बनाना।

6- भूधरासन- पांव यथा सम्भव पीछे घुटने सीधे और तलवें जमीन पर छुते हुए हो। कोहनी के साथ हाथ सीधे, ठोडी कण्ठकूप से लगी हो, पेट अन्दर आकर्षित हो।

7- अष्टांग प्रणिपातासन- दोनो पंजो, दोनो घुटने, दोनो हाथ, छाती और मर्स्तिष्क भूमि पर स्पर्श करते हुए हो। पेट हवा में तथा अन्दर की और हो।

8- सर्पासन- सीना आगे हो, सिर आसमान की तरफ होकर यथा संभव पीछे हो, हाथ-पावं भूमि से स्पर्श करते हुए हो।

9- भूधरासन- - पॉव यथा सम्भव पीछे घुटने सीधे और तलवें जमीन पर छुते हुए हो। कोहनी के साथ हाथ सीधे, ठोडी कण्ठकूप से लगी हो, पेट अन्दर आकर्षित हो।

10-द्विपाद प्रसरणासन- दुसरे पांव को पीछे ले जाकर फैलाना। दोनो पावों व हाथो का जोडा बनाना।

11-एकपाद प्रसरणासन- हाथ यथा स्थान पर रखते हुए एक पावं को यथा संभव पीछे फैलाना।

12-हस्त पादासन- हाथो को नीचे दोनो पंजो के बगल में रखे, घुटने तने हुए एवं पेट अन्दर हो।

13-उपदेशासन- हस्त पादासन में हाथ और पैरो को अपने स्थान मे रखते हुए, सीधे बैठ जावे।

14-नमस्कार आसन - सीधे खड़े होकर पावं, घुटने, हिप्स, पीठ, गला और सिर समसूत्र में रखते हुए प्रणाम करना।

15-उध्र्व नमस्कार आसन- दोनो हाथो को उपर ले जाकर उध्र्व दिशा में नमस्कार, इसमें पेट आगे व हाथो को यथा संभव पीछे की और झुकाना होता है।

स्वामी ओमानन्द तीर्थ ने ‘‘ पातंजलयोगप्रदीप’’ में वर्षो पूर्व इसका वर्णन किया था।

13.7 कुर्सी पर बैठकर सूर्य नमस्कार (seated surya namaskar using chair)

यह परम्परागत सूर्य नमस्कार से थोडा भिन्न है। जो लोग वयोवृद्ध है जो नीचे जमीन पर नहीं बैठ सकते जिनको कोई शारीरिक मजबुरी है, आगे नहीं झुक सकते या अन्य कारणो के चलते खड़े रहने में असमर्र्थ है और इन्ही कारणो से सूर्य नमस्कार नहीं कर सकते उन साधको के लिए कुर्सी पर बैठकर सूर्य नमस्कार करने की विधि है। कुर्सी पर बैठकर सूर्य नमस्कार करने से भी शारीरिक व मानसिक लाभ मिलते है। शरीर दुरूस्त रहता है, रक्त संचरण बढ़ता है, हड्डीयो के लिए अच्छा व्यायाम है, मांसपेशियों में खिंचाव होता है, शरीर लचक बढ़ती है, क्योंकि मेरूदण्ड का आगे व पीछे संचलन होता है। शरीर जब आगे की तरफ झुकता है तब श्वास बाहर की तरफ व जब पीछे की तरफ झुकता है तब श्वास अन्दर की तरफ लेना चाहिए। प्रतिदिन कम से कम दो आवृति नियमित रूप से खाली पेट करनी चाहिए, इससे शारीरिक स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आयेगा। व्हीलचेयर का प्रयोग करने वाले तथा कमजोर शरीर वाले भी इसे कर सकते है।

कुर्सी पर बैठकर सूर्य नमस्कार करने की 12 स्थितियां है:-

प्रथम स्थिति-

कुर्सी पर बैठकर कमर को सीधा रखे, दानो तलवे जमीन पर समानान्तर रखे, दोनो हाथ प्रणाम की मुद्रा मे हो।

द्वितीय स्थिति-

हस्तउत्तानासन

कुर्सी पर बैठकर दोनो हाथ ऊपर उठा कर यथाशक्ति पीछे की और ले जाये हथेलियां आसमान की तरफ खुली हुई हो। श्वास अन्दर।

तृतीय स्थिति-

पादहस्तासन

आगे की तरफ झुकते हुए दोनो हथेलियों को दोनो पंजो के बराबर जमीन पर रखे। मुडे हुए घुटनो से नाक स्पर्श करने का प्रयास किया जावे। श्वास बाहर।

चतुर्थ स्थिति-

अर्द्ध पवन मुक्तासन (प्रथम स्थिति)

दाहिने पावं को मोडकर उठाये तथा घुटने को सीने के पास लाकर दोनो हाथो की अंगुलियो को आपस में फसाकर कस कर पकडे और सिर को थोडा पीछे की तरफ झुकाए, बायां पावं भूमि पर रहेगा। श्वास अन्दर।

पंचम स्थिति-

दाहिने पावं व हाथो की पकड यथावत रहेगी केवल सिर आगे झुकाते हुए ललाट को दाहिनी घुटने से स्पर्श कराना है। श्वास बाहर।

अर्द्ध पवन मुक्तासन (द्वितीय स्थिति)

षष्टम स्थिति-

मेरूदण्ड सीधा, दोनो हाथ बगल में, पावं सीधे, घुटने तने हुए तथा घुटनो से नीचे का हिस्सा हवा में सीधा रहेगा। श्वास अन्दर।

दण्डासन

सप्तम स्थिति- स्थिति द्वितीय के अनुसार

1- अष्टम स्थिति- स्थिति तृतीय के अनुसार

2- नवम् स्थिति- बायें पाव को मोडकर ऊपर उठाना है। (शेष स्थिति चतुर्थ अनुसार)

3- दशम् स्थिति- बॉये पाव के साथ स्थिति पंचम अनुसार

4- एकादश स्थिति- पूर्व स्थिति द्वितिय के अनुसार

5- द्वादश स्थिति- प्रथम स्थिति अनुसार

लाभ:-

कुर्सी नमस्कार में सूर्य नमस्कार के सभी लाभ मिलते है फिर भी प्रत्यारोपित घुटना, मोटापा, उच्च रक्त चाप, मधुमेंह एवं पीठ दर्द के रोगियो के लिए ज्यादा लाभदायक है।

13.8 सूर्य नमस्कार के लाभ

1. सूर्य नमस्कार के अभ्यास से सम्पुर्ण स्वास्थ्य के साथ उल्लासपुर्ण जीवन जिया जा सकता है।
2. प्राणायाम के साथ अभ्यास करने से शारीरिक व मानसिक उर्जा संतुलित होती है।
3. किशोरवय अपनी संवेदनाओ और भावनाओ को संतुलित करने में सक्षम होता है।
4. शैक्षणिक एवं प्रतियोगिताओं परिक्षाओ में उत्तम साबित करने के अवसर आसान होते हैं। अध्ययन में रूचि जाग्रत होती है एवं स्मरण शक्ति बढाता है।
5. योवनावस्था में पर्दापण की उच्छंखल अवस्था को सहजता से समायोजित व रेगुलेट करने की क्षमता प्रदान करता हैं। हार्मोन्स के शारीरिक विकास एवं भावनाओ पर पड़ने वाले प्रभाव को संतुलित करता है।
6. हार्मोन्स के असंतुलन को ठीक करता हैं (विशेषकर पिट्यूटरी व पिनियल ग्रन्थी के हार्मोन्स)।
7. आठ वर्ष का बालक इस अभ्यास को प्रारंभ करें तो उसकी शरीरगत ऊर्जा का वह जीवनभर सदुपयोग करेंगा।

8. शरीर में प्राण संचलन अवरोधो को हटाकर उसका आवागमन सहज करता है।
9. चयापचय (मेटाबोलिज्म) की दर को बढाता है तथा नियंत्रित करता हैं।
10. चक्रों का उद्दीपन करता है। शरीर को चक्रों के प्रति सजग करता है।
11. मन्त्रोचार के साथ करने से आध्यात्मिक जागृति की राह आसान होती है।
12. यह शरीरगत अमृत को उदरस्थ सूर्य ताप में जलने से रोकता है।
13. पाचनतत्रं दुरूस्त करता है (पेन्क्रियाज, आमाशय, लीवर और आंतो की कार्य क्षमता बढाता है)।
14. फेफडो में अधिक मात्रा में आक्सीजन पहुचाता है, जिससे टी.बी. व अस्थमा से बचाव होता है।
15. स्पिलीन एवं गुर्दो की कार्य क्षमता बढाता है तथा विषैले तत्वो (toxines) को शरीर से बाहर करता हैं।
16. जो नाइट शिफ्ट में काम करते है वो सो कर उठने के बाद सूर्य नमस्कार करें, इससे होने वाले खिंचाव उनके तनाव को दूर करेंगा।
17. चर्म रोग दूर होते है एवं त्वचा के दाग धब्बे दूर होते है।
18. समस्त ग्रन्थियो की उच्चतम कार्य क्षमता अच्छे स्वास्थ्य की परिभाषा है, सूर्य नमस्कार थायरायड पेरा थायरायड एवं थाईमस ग्रन्थियो की मालिस कर उन्हे सक्षम बनाता है।
19. सक्रिय रक्त संचरण स्वास्थ्य का प्रथम नियम है, सूर्य नमस्कार इसे आदर्श रूप में नियंत्रित करता है।
20. नर्वस सिस्टम मजबूत करता है (भूलने का स्वभाव एवं चिन्ताओं से मुक्ति, मस्तिष्क सम्बन्धित व्याधियो से उभरने में मददगार है)।
21. हृदय पर बिना किसी दबाव के उसकी कार्य क्षमता मे वृद्धि कर रक्त संचार बढाता है व नियंत्रित करता है।
22. रक्तचाप नियंत्रित करता है।
23. ऊर्जा को व्यवस्थित एवं पुर्नव्यवस्थित करता है। ऊर्जा प्रवाह संतुलित करता है।
24. ऊर्जा स्थानान्तरण (इडा, पिगला आदि में) की गति सामान्य रखता है जिससे मानसिक विकार नहीं आते है।
25. अंगुलियो, कलाई, भुजा एवं कंधो का व्यायाम होता है तथा इनमें मजबूती आती है।
26. यह इलेक्ट्रोमेगनेट किरणो से शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभावो से बचाने की क्षमता पैदा करता है।
27. यह शारीरिक क्षमताओं में वृद्धि करता हैं आसन, प्राणायाम और ध्यान के लिए जिस शारीरिक सोष्टव व दमखम की जरूरत होती है वो सूर्य नमस्कार से संभव है।
28. सूर्य नमस्कार के डायनेमिक सिक्वेन्स-तन मन की एकाग्रता (one pointedness of mind) बनाये रखने में सक्षम है जो ध्यान के लिए आवश्यक है। अत: यह डायनेमिक मेडीटेशन भी है।
29. इसमें स्वयं के द्वारा स्वयं को चक्र जागरण का प्रशिक्षण देकर शरीस्थ ऊर्जा आयामो का विस्तार किया जा सकता है।

30. इसके अभ्यास से शरीर में कुछ अतुलनीय अनुभव होते है जैसे- बावल्स (आंत्र)और स्टोमक का सही कार्य करना, वात पित्त और कफ का सही बेलेन्स बना रहना एवं ब्लड सर्कूलेशन ठीक रहना, चित्त शान्त रहना आदि।
31. सूर्य नमस्कार के एक राउण्ड में 13 से 14 कैलोरी बर्न होती है। 30 मिनट के अभ्यास से 417 कैलोरी बर्न होती है जो किसी भी व्यायाम व खेल से नही होती है।
32. रीड की हड्डी का सर्वोत्तम व्यायाम है, इसमें रीढ का अधिकतम मूवमेन्ट होता है।
33. गर्भावस्था में आने के तीन माह तक इस अभ्यास को किया जा सकता है इससे प्रसव पीडा सहन करने की क्षमता बढ़ती है तथा वह सहज व कम पीडादायक होती है। गर्भावस्था के प्रथम तीन माह में विकृत स्वाद (Perverted Taste) की अवस्था से निजात मिलती है।
34. महिलाओं की मेनापोज (रजोनिवृति) की तकलीफो से छुटकारा दिलाता है।
35. मासिक धर्म सम्बंधित समस्त विकार दूर होते है। उस दरमियान होने वाले पेट दर्द व थकान व कमर दर्द से पूर्ण मुक्ति मिलती है ।
36. नवजात शिशु की माता के दूध की मात्रा व गुणवत्ता में वृद्धि होती है ।
37. बालों में न्यूट्रीशन को बढाता है तथा बालों का झडना व सफेद होना कम करता है ।
38. शरीर के विभिन्न अंगों से अनावश्यक चर्बी को हटाता है , जैसे गर्दन ,ठोडी, बाजू, कमर, पेट ,नितम्ब , जंघा आदि स्थानों से ।
39. यौवन का बचाव कर चेहरे का तेज बढाता है ।
40. बल , बुद्धि, उम्र और सोम (वीर्य) की वृद्धि करता है ।
41. वातावरण से वाईटल एनर्जी प्राप्त कर ओज की वृद्धि करता है।
42. शरीर के आन्तरिक अवयव जैसे लीवर, किडनी, पेन्क्रियाज, आमाशय, ऐड्रिनल्स, गाल ब्लेडर एवं यूट्रस पर दबाव पडता है, मालिश होती है जिससे वें क्रियाशील होते है।
43. कमर, जंघा, घुटने, टखने, पंजा व तलवो का व्यायाम होता है।
44. जब भी थकान या सुस्ती महसूस हो, सूर्य नमस्कर करने से तत्काल एनर्जी मिलती है, यह वार्म अप का भी उत्तम अभ्यास है।
45. प्रात: सूर्योदय के समय सूर्य नमस्कार करने से शरीर को आवश्यक अल्ट्रावाइलेटरेज (किरणो) का लाभ प्राप्त होता है। प्रात:काल में इनकी तीव्रता अधिक रहती है जिन्हे शरीर अवशोषित कर लेता है तथा सन बर्न भी नही होता है।
46. इसमे फेफडो का पूर्ण उपयोग होता है इनकी समस्त कोशिकायें फैलती है तो रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। परिणाम स्वरूप श्वसन सम्बन्धित सभी विकार दूर हो जाते है।
47. यह अभ्यास हृदय पर बिना अतिरिक्त दबाव के उसे स्वस्थ और एक्टिव बनाता है, मलिन रक्त शुद्ध होता है एवं धॅमनिया खुलती है। शरीर के निचले हिस्से का रक्त हृदय में पहुंचाने का कार्य पर्वतासन एवं पादहस्तासन द्वारा आसान हो जाता है।

48. यह असंतुलित थायरायड (Thyroid gland) को संतुलित करता है जिससे मेटाबोलिज्म की दर नियंत्रित रहती है। थायराईड ग्लेण्ड की शिथिलता से लो ब्लडप्रेशर तथा अतिक्रियाशीलता से उच्च रक्त चाप बढ़ता है। सूर्य नमस्कार से गले में खिचांव होता है, विशुद्धी चक्र उद्दीप्त होता है अत: थाइराईड ग्लैण्ड संतुलित रहती है।
49. फेफडो के उध्र्व भाग को भी सक्रिय कर अन्दर भरी हुई दुषित वायु को बाहर निकालता है। हस्त उत्तानासन एवं पादहस्तासन में चेस्टवाल (भित्ति) फैलती है तो अधिक श्वास प्रवेश करती है जो रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा को बढाती है। इससे शरीर की 37.2 खरब कोशिकाओ को लाभ मिलता है।
50. पाचन क्रिया दुरूस्त होकर जठराग्नि उद्दीप्त होती है, त्वाचा में निखार आता है, त्वचा के नीचे जमा विषाक्त पदार्थ बाहर निकलते है जिससे चर्म रोगो से मुक्ति मिलती है।
51. सूर्य नमस्कार में शरीर के आन्तरिक अंग सिकुड़ते है, दबते है जिससे पेन्क्रियाज(अग्नाशय) अधिक क्रियाशील होता है। इन्सुलिन की मात्रा संतुलित होती है। फलत: मधुमेह रोग से मुक्ति मिलती है।
52. शरीर के सभी अंगो के मध्य पूर्ण समन्वय व सामंजस्य स्थापित होता है। अकेला सूर्य नमस्कार 184 आसनों के बराबर लाभ पहुंचाता है।
53. अधिकतर लोग श्वास लेने का सही तरीका जानते ही नही है इसीलिए सूर्य नमस्कार मे श्वास प्रश्वास क्रम को शामिल किया गया है। मनुष्य को जैसी लयपुर्ण व गहरी श्वास लेनी चाहिए वैसी इस अभ्यास के दौरान तो अभ्यासी कुछ देर लेगा तभी फेफडो की स्थिर दुषित वायु बाहर निकलेगी और शुद्ध ऑक्सीजन उसके स्थान पर आयेगी।
54. जिस प्रकार से पेट में दूसरा मस्तिष्क होता है उसी प्रकार पैरों की पिंडलियों मे सेकण्ड हार्ट होता है जो नीचे के अशुद्ध रक्त को हृदय तक पहुचाने में मदद करता है पिंडली की नसो में अवरोध आने से अपस्पीत शिरा (vericose vein) हो जाती है जो हृदय के लिए खतरा होती है। इस अभ्यास में पर्वतासन व पादहस्तासन की स्थितियो में पिंडली में खिचाव होता है जिससे उक्त अपस्पीत शिरा (पिंडलियों की फूली हुई नसें)से बचाव होता है।
55. समग्र रूप में देखा जाये तो सूर्य नमस्कार से शारीरिक दुर्बलता, कमजोरी, खून की कमी, मधुमेह यकृत की शिथिलता, एक्जिमा, सफेद दाग, चर्म रोग, सोरायसिस, मिरगी, गुर्दे की तकलीफे, पाचन संस्थान की व्याधियां, कम भूख लगना, कील मुहांसे, फोडे, फुन्सियां, सिर दर्द, फेफडो की बिमारयों, दमा, सर्दी, जुकाम, अन्त:स्रावी ग्रन्थियो के असंतुलन, चिंता, अवसाद, मानसिक रोग, बच्चो मे अति उद्दण्डता, महिलाओं के अनियमित मासिक चक्र, मेनापोज सम्बन्धित तकलीफे ठीक होती है।
56. इससे मणिपुर चक्र विकसित होता है, यही से अन्त: प्रज्ञा विकसित होती है।
57. यह सहनशक्ति बढाता है अंगो को लचीला बनाता है और वजन कम करता है।
58. शरीर को कान्तिमय बनाता है। चेहरे एवं गले की झुर्रियो को आने से रोकता है।

59. शिरानाल अवरूद्ध है तो अश्वसंचालन आसन से तुरन्त आराम मिलता है।
60. इससे गुरूत्व केन्द्र पर खिंचाव एवं संकुचन होने से उसका अधिकतम उद्दीपन होता है।
61. शरीर की परिपक्वता को अनियंत्रित होने से रोकता है।
62. समय से पूर्व आने वाली योवनावस्था एवं उसके दुष्प्रभावों को रोकता है।
63. उर्जा के अपव्यय को रोककर उसे रचनात्मकता की और धकेलता है।
64. इसमें प्राणों के प्रवाह पर इच्छित नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं।
65. यह प्राण शक्ति प्रदाता है। इसके अभ्यास से ऊर्जा ऊध्र्वमुखी होती है।
66. सूर्य की रोशनी कम मिलने से होने वाली बीमारी "सीजनल एफेक्टिव डिसआर्डर (सैड)" से लडने की क्षमता प्रदान करता है।

सूर्य नमस्कार से होने वाले लाभों पर एक संक्षिप्त पद्य -

'' सूरज नमन से मिटत आधि और व्याधि,
शेर सी फूर्ती, शरीर में आय।
वीर शिवाजी की तरफ बनोगे चरित्रवान,
कुण्ठा व कलुषता, तुरत भग जाय।
पीठ लोचदर, मुखमण्डल हो कांतिवान,
'मंगल' की भावना भुजाओं से आय।
सूरज की किरणें मिटाती हैं अनेकों रोग,
तन की सुघरता स्वत: बढ़ जाय। ''

सूर्य नमस्कार से सबसे अधिक केलोरी बर्न होती है। इस सम्बन्ध में विभिन्न खेलों के साथ केलोरी बर्न का तुलनात्मक चार्ट आर्ट ऑफ लिविंग ने तैयार किया है जो 30 मिनट के व्यायाम/खेल में बर्न हुई केलोरी को दर्शाता है-

1- वेट लिफ्टिंग - 199 केलोरी
2- टेनिस - 232 केलोरी
3- बॉस्केटबॉल - 265 केलोरी
4- बीच वॉलीबॉल - 265 केलोरी
5- फुटबॉल - 298 केलोरी
6- साईकिलिंग - 331 केलोरी
7- चट्टान पर चढ़ना (रॉक क्लाईबिंग) - 364 केलोरी
8- दौड़ - 414 केलोरी
9- सूर्य नमस्कार -4 17 केलोरी

13.9 सूर्य नमस्कार समग्र चार्ट एवं बीजमंत्र

(क) समग्र चार्ट

सूर्य नमस्कार मे आसनों के नाम, एकाग्रता, मंत्र उसके लाभ, श्वास की स्थिति व बीज मंत्र को निम्न चार्ट के माध्यम से समझा जा सकता है।

क्र0स0	स्थिति	एकाग्राता	मंत्र	लाभ	बीज मंत्र	श्वास
1	प्रार्थना मुद्रा	अनाहत चक्र पर	ओम मित्राय नमः	एकाग्रता बढायेगा	ॐ ह्राम्	बाहर
2	हस्त उत्तानासन	विशुद्धि चक्र पर	ओम रवये नमः	पाचन ठीक होगा	ॐ ह्रीम्	अन्दर
3	पाद हस्ताशन	स्वाधिष्ठान चक्र पर	ओम सूर्याय नमः	पेट कम होगा	ॐ ह्रूम्	बाहर
4	अश्व संचालनासन	आज्ञा चक्र पर	ओम भानवे नमः	पैर मजबूत होंगे	ॐ ह्रैम्	अन्दर
5	पर्वतासन	विशुद्धि चक्र पर	ओम खगाय नमः	मेरूदण्ड, भुजाएं,कंधे,दुरूस्त	ॐ ह्रौम्	बाहर
6	अष्टांग नमस्कार	मणिपुर चक्र पर	ओम पूष्णे नमः	सीने का विकास	ॐ ह्रः	बहिर्कुम्भक
7	भुजंगासन	स्वाधिष्ठान चक्र पर	ओम हरिण्यगर्भाय नमः	कब्ज खत्म एवं पीठ का रक्त संचरण ठीक	ॐ ह्राम्	अन्दर
8	पर्वतासन	विशुद्धि चक्र पर	ओम मरीचये नमः	मेरूदण्ड, भुजाएं,कंधे,दुरूस्त	ॐ ह्रीम्	बाहर
9	अश्वसंचालनासन	आज्ञा चक्र पर	ओम आदित्याय नमः	न्यूरोलोजिकन बेलेंस	ॐ ह्रूम्	अन्दर
10	पाद हस्तासन	स्वाधिष्ठान चक्र पर	ओम सवित्रे नमः	मेरूदण्ड लचीला	ॐ ह्रैम्	बाहर
11	हस्त उत्तानासन	विशुद्धि चक्र पर	ओम अकार्य नमः	फेफडे मजबूत	ॐ ह्रौम्	अन्दर
12	प्रार्थना मुद्रा	अनाहत चक्र पर	ओम भास्कराय नमः	आज्ञाचक्र संतुलन	ॐ ह्रः	बाहर

(ख) बीजमंत्र

बीज मन्त्रों का उपयोग सूर्य के 12 नामो के बदले में किया जा सकता है। यदि सूर्य नमस्कर तेजी से किया जाता है तो उच्चारण मे मात्र बीज मन्त्रों को कहते जाना पर्याप्त है ये मात्र आव्हान ध्वनियां है जिनका शाब्दिक अर्थ नहीं है फिर भी ये मस्तिष्क और शरीर पर असरकारक और शक्तिशाली तरंगे उत्पन्न करते है। यह 12 मन्त्रों के विकल्प है

बीज मंत्र कुल 6 है जो एक चक्र के दौरान 4 बार एक क्रम में दोहराये जाते है

1- ऊँ ह्राम्   7. ऊँ ह्राम्
2- ऊँ ह्रीम्   8. ऊँ ह्रीम्
3- ऊँ ह्रूम्   9. ऊँ ह्रूम्
4- ऊँ ह्रैम्   10. ऊँ ह्रैम्
5- ऊँ ह्रौम्   11. ऊँ ह्रौम्
6- ऊँ ह्र: 12. ऊँ ह्र:

सूर्य नमस्कार करते हुये ही इससे सम्बन्धित मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। चाहे वो प्रार्थना मंत्र हो, सुभाषित हो या आसन के साथ बोले जाने वाले मंत्र हो।

सुभाषित '' ध्येय सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती। नारायण: सरसिजासनसन्निविष्ट:।।

केयूरवान् मकर-कुण्डलवान् किरीटी। हारी हिरण्यमय वपुर्धत शंख-चक्र: ।। ''

अर्थ - सौर मण्डल के मध्य में कमल के आसन पर विराजमान (सूर्य) नारायण जी बाजूबंद, मकर की आकृति के कुण्डल, मुकुट, शंख, चक्र धारण किये हुए तथा स्वर्ण आभायुक्त शरीर वाले हैं, वे सदैव ध्यान रखने योग्य है।

13.10 सारांश

सूर्य नमस्कार का शाब्दिक अर्थ है सूर्य को नमन् जीवनदायिनी ऊर्जा महापुंज को नमस्कार। सूर्य नमस्कार सूर्य के प्रति सम्मान प्रकट करने की एक प्राचीन विधि है। सूर्य नमस्कार में आसन, प्राणायाम, ध्यान, चक्र जागरण और मन्त्रोचार की क्रियायें सम्मलित होने से यह अपने आप में एक पूर्ण साधना है। वैसे तो सूर्य नमस्कर का प्रादुर्भाव एक रहस्य है, फिर भी इसे वैदिक काल के मनीषियों व आत्मज्ञानियो द्वारा स्वास्थ्य रक्षा के लिए विकसित की गई एक पद्धति माना जाता है। वर्तमान में इसके चमत्कारिक आसन अत्यधिक लोकप्रिय हो रहे है।

सूर्य नमस्कार में आसन, प्राणायाम, ध्यान, चक्र जागरण और मन्त्रोचार की क्रियायें सम्मलित होने से यह अपने आप में एक पूर्ण साधना है।

13.10 बोध प्रश्न

1. मुख्य रूप से सूर्य नमस्कार में कितने आसन बनते है, प्रत्येक आसन से शरीर को क्या क्या लाभ मिलते है?
2. सूर्य नमस्कार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमी पर प्रकाश डाले।
3. सूर्य नमस्कार करते समय क्या-क्या सावधानियां बरतनी चाहिए ?
4. सूर्य नमस्कार से बालको एवं महिलाओं को क्या विशेष लाभ मिलता है ?
5. सूर्य नमस्कार से बालको एवं महिलाओं को क्या विशेष लाभ मिलता है ?
6. (क) सूर्य नमस्कार के 12 आसनों के नाम तथा उनके साथ बोले जाने वाले मन्त्रों को लिखे।
   (ख) खड़े रहने में असमर्थ व्यक्ति सूर्य नमस्कार कर सकता है या नहीं, यदि हां तो कोनसे आसन कैसे-कैसे करेंगा ?

13.11 संदर्भ ग्रंथ

1- सूर्य नमस्कार-स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

2- आसन प्राणायाम मुद्रा बंध- स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

3- पातंजल योग दर्शन एवं सूर्य नमस्कार का स्वास्थ्य पर प्रभाव- वैध नित्यानन्द शर्मा

4- पातंजल योग प्रदीप- स्वामी ओमानन्द तीर्थ

5- सम्पुर्ण योग विधा- राजीव जैन त्रिलोक

6- सदगुरू प्रवचन

इकाई 14

चन्द्र नमस्कार का परिचयात्मक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 चन्द्र नमस्कार

14.4 चन्द्र नमस्कार की स्थितियॉ

14.5 चन्द्र नमस्कार सावधानियां

14.6 चन्द्र नमस्कार के लाभ

14.7 बोध प्रश्न

14.8 सारांश

14.9 संदर्भ ग्रंथ

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगे कि–

- चन्द्र नमस्कार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगे|
- चन्द्र नमस्कार की स्थितियॉ के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगे|
- चन्द्र नमस्कार सावधानियां जान सकेगे|
- चन्द्र नमस्कार के लाभ जान सकेगे|

14.2 प्रस्तावना

योग साधना के अंतर्गत चन्द्र नमस्कार एक प्राचीनतम वैज्ञानिक साधना पद्धति है। चन्द्र नमस्कार आत्मविश्वास के साथ करते हुए हम आत्मिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त कर सकते है। चन्द्र नमस्कार के द्वारा मानसिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्षता प्राप्त करते हुए आन्दन की अनुभूति प्राप्त होती है।

वैद्यक शास्त्र की दृष्टि से चन्द्रमा द्वारा शीतल किरणें पृथ्वी पर रूक्षता एवं उष्मता एवं दौर्बलता का निवारण करते हुए शरीर में जाठराग्नि को प्रबल करते हुए शक्ति संवर्धन में प्राकृतिक रूप से सहायक है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार विसर्ग काल की तीन ऋतुएं वर्षा, शरद, एवं हेमत ऋतु में चन्द्रमा का बल क्रमश: बढ़ता है। योग शास्त्र की दृष्टि से ‘ठ’कार चन्द्रमा का प्रतीक है। इड़ा नाड़ी एवं बांया नासिका स्वर शीतलता एवं शक्तिवर्धक माना गया है। चन्द्र नमस्कार - चन्द्र शक्ति शीतलता का

प्रतीक है तथा सूर्य प्रकाश का ही प्रतिबिम्ब है। यह चन्द्रोदय पर किया जाता है, इसमे भी 12,14,16,18 एवं इससे भी ज्यादा स्थितियां बनती है।

14.3 चन्द्र नमस्कार

सूर्य नमस्कार की तरह चन्द्र नमस्कार भी महत्वपूर्ण है। चन्द्र नमस्कार भी सूर्य नमस्कार का प्रतिबिम्ब होता है। उसी के प्रकाश को तथा प्रभावो को प्रतिबिम्बित करता है। यह हमें शीतल रूप में ऊर्जा देता है। चन्द्र नमस्कार से हमे शीतलता, ऊर्जा, कल्पनाशीलता, शान्ति और कांति प्राप्त होती है। मोटापा कम होता है। इसमें भी 12 स्थितियॉ बनती है। कहीं-कहीं इसकी 14, 16 एवं 18 क्रियाए भी बताई गई है। चन्द्र शक्ति इ़डा नाडी से सम्बन्धित है जो शीतलता एवं सृजनात्मकता प्रदान करती है। इ़डा नाडी अन्तर्मुखी, ऋणात्मक तथा स्त्री गुणवाली होती है जो चेतना का वहन करती है। चन्द्र मंत्र देवी की महिमा का गुणगान करते है। यह सांध्यकाल में किया जाता है।

दिशा - चन्द्रमा की दिशानुसार आसन करें।

लाभ -

1- शरीर संतुलित व एकाग्र रहता है।
2- फैट कम होता है।
3- शरीर को शीतलता मिलती है।
4- मोटापा कम होता है।
5- शरीर सुडौल, सुन्दर व बलिष्ठ होता है। कब्ज व अजीर्ण दूर होते है। शरीर कान्तिवान बनता है। आलस्य मिटते है। मानसिक शान्ति प्राप्त होती है तथा शरीर निरोगी होता है।

14.4 चन्द्र नमस्कार की स्थितियॉ

चन्द्र नमस्कार में यहां हम 12 स्थितियों का वर्णन करेंगे। हर स्थिति के साथ एक मंत्र का भी जाप किया जाता है। चन्द्र नमस्कार में श्रृंखलाबद्व तरीके से मन्त्रोंजाप के साथ किया जाता है तो इसके आसनों से होने वाले लाभ में वृद्वि हो जाती है।

1- पहली अवस्था - चन्द्रमा की तरफ मुख करके खड़े होना चाहिए। दोनो हाथों को उपर उठाते हुये ताडासन की अवस्था में यथाशक्ति पीछे की तरफ झूके। दोनों हथेलियॉ आसमान की तरफ हो।
मंत्र- ओम् चन्द्राय नम:

2- दुसरी अवस्था - उरूसंधी से उपर के शरीर को सामने की तरफ झूकाए, दोनों हथेलियॉ दोनो पंजो के बराबर में रखे। श्वांस बाहर, घूटने सीधे हो तथा सिर को घूटनो से स्पर्श करें।
मंत्र- ओम् सोमाय नम:

3- तीसरी अवस्था - बांये पैर को पीछे सीधा लम्बवत रखे, दाहिने घूटने को मोडते हुये दाहिने पैर पर शरीर का पूरा भार डाल दे। दोनों हथेलियॉ दांहिने पंजे के बगल में रखे।
मंत्र- ओम् इन्द्रवे नम:

4- चौथी अवस्था - जहां दोनो पांव के पंजे है उन्हे उसी स्थान पर जमाये रखे तथा इस प्रकार खड़े हो कि बांये पैर का घुटना जमीन को स्पर्श करें तथा दांहिना घुटना समकोण बना ले। दोनो हाथ आसमान की तरफ कमर से उपर का भाग पीछे की तरफ झूकाये।
मंत्र- ओम् विशाकराय नम:

5- पांचवीं अवस्था - तीसरी स्थिति की तरह दाहिने पैर की जगह बांये पैर पर पूरा वजन देते हुये दाहिने पैर को पीछे की तरफ ले जाये, बांये पैर की एडी एवं दोनो हाथ बांये पैर के पंजे दोनो तरफ स्थिर करें।

मंत्र- ओम् कलाभृताय नम:

6- छठीं अवस्था- चौथी अवस्था की तरह बांये पैर पर वजन देते हुये इस प्रकार खड़े हो कि दाहिने पैर का घुटना जमीन को स्पर्श करें। दोनो हाथ उपर की तरफ हो।

मंत्र- ओम् सुधाधराय नम:

7- सातवीं अवस्था - दोनो हाथों को नीचे जमीन पर स्थिर करें, बांये पैर को पीछे ले जाकर दाहिने पैर के पास ले जाये तथा एक दण्ड लगाकर भुजंगासन की स्थिति बनाये नजर सामने रखे।

मंत्र- ओम् निशापतये नम:

8- आठवीं अवस्था - शशांक आसन जैसी अवस्था बनाते हुये पंजो के बल बैठे फिर सामने झुकते हुये दोनो घुटने जमीन पर रखे, सिर को नीचे झुकाकर ललाट को भूमि से स्पर्श करें। दोनो हाथ सामने लम्बवत हथेलियॉ जमीन पर स्थिर रखे।

मंत्र- ओम् शिव शेखराय नम:

9- नवीं अवस्था - पांव के पंजो व घुटनो की स्थिति पूर्ववत रहेगी। कमर के उपर के हिस्से को उठाते हुये यथाशक्ति पीछे की तरफ झुकाये, दोनो हाथ आकाश की तरफ सीधे हथेलियॉ भी आसमान की तरफ शरीर का भार एडियो पर रखे।

मंत्र- ओम् अमृतदीधितये नम:

10-दसवीं अवस्था - पंजो के बल बैठे हुये दोनो हाथों को सामने की तरफ डेढ फीट के अन्तराल पर भूमि पर रखे, उसी स्थिति में एक दण्ड लगाये, पंजो व हाथों के बल बैठते हुये घुटनों को भूमि से थोडा उपर उठाये।

मंत्र- ओम् तमोध्नाय नम:

11-ग्यारहवीं अवस्था - दोनों हाथों को भूमि पर उसी अवस्था में रखते हुये दोनो पैरो को उछालकर दोनो हाथों के मध्य लावें और पंजो पर भार देकर बैठे, अब हथेलियॉ की जगह केवल उंगलियॉ ही भूमि का स्पर्श करेंगी। शरीर का भार एडियॉ पर रहेगा।

मंत्र- ओम् राजराजाय नम:

12-बारहवीं अवस्था- उसी स्थान पर प्रणामावस्था में सीधे खड़े हो जाये।

मंत्र- ओम् शशांक देवाय नम:

उपरोक्त अवस्थाओं के अलावा भी चन्द्र नमस्कार की कई विधियां प्रचलित है। जिसमें से एक लोकप्रिय विधि को निम्न चित्रो की सहायता से दर्शाया जा रहा है।

14.5 चन्द्र नमस्कार सावधानियां

चन्द्र नमस्कार निम्न परिस्थितियों में वर्जित है-

1- जब पेट भरा हुआ हो।
2- कड़क मेरूदण्ड वाले और उदर रोग से पीड़ित चन्द्र नमस्कार नहीं करें।
3- जिनका ऑपरेशन हुए तीन माह नहीं हो गये हो।
4- हर्निया के रोगी।
5- मेरूदण्ड सम्बन्धित विकार हो तो चिकित्सकीय परामर्श से ही अभ्यास करें।
6- जिन्हे आंतो में टी.बी. हो वे भी नहीं करें।
7- स्लिप डिस्क से ग्रस्त लोग आगे झुकने के आसन नहीं करें।
8- 8 वर्ष से कम उम्र के बच्चो के लिए ज्यादा लाभदायक नहीं है।

9- अधिक वय वाले लोग अधिक खिंचाव वाले आसन नहीं करें।

10-शरीर बुखार से पीडित हो।

11-मेरूदण्ड, पसलियों एवं घुटनों में तकलीफ हो।

12-महिलाए मासिक धर्म की अवधि में एवं गर्भधारण के तीन माह बाद।

13-हृदय रोग एवं रक्तचाप से ग्रसित हो।

14-मानसिक रोगी हो।

14.6 चन्द्र नमस्कार के लाभ

1- चन्द्र नमस्कार हमे शीतलता, शान्ति और धैर्य प्रदान करता है।

2- शरीर मे स्निग्धता प्राप्त होती है।

3- शरीर में रूक्षता एवं कमजोरी दूर होती है।

4- इससे शरीर संतुलित एंव एकाग्र रहता है।

5- अनावश्यक चर्बी (फैट) कम होता है तथा मोटापा घटता है।

6- शरीर कांतिवान सुन्दर व सुडौल बनता है।

7- शरीर निरोगी एवं बलिष्ठ होता है। आलस्य मिटते है।

8- विजातीय तत्वो को शरीर से बाहर करने का उत्तम व्यायाम है।

9- शरीर में रक्त संचरण बढता है।

10-इसमें हाथो, कलाई, गर्दन, कमर, पैर, पेट पर जोर पडने से वे स्वस्थ रहते है।

11-पाचन तंत्र मजबूत होता है।

12-जिनको गर्मी ज्यादा सताती है उनके लिए यह अति उत्तम है।

13-विचलित मन एवं क्रोध को शान्त करता है।

14-यह अग्न्याशय, आमाशय, आन्त्र, उदर, फेंफडों और हृदय को स्वस्थ रखता है।

15-यह भी शरीर का सम्पूर्ण व्यायाम और आरोग्य देता है।

16-यह चन्द्रमा की उर्जा और उससे होने वाले परिलाभों को आत्मसात करता है।

14.7 **बोध प्रश्न**

1- चन्द्र नमस्कार की स्थितियो का वर्णन करे ?

2- चन्द्र नमस्कार से आप क्या समझते है ?

3- चन्द्र नमस्कार करने से क्या लाभ होते है ?

4- चन्द्र नमस्कार और सूर्य नमस्कार में क्या अन्तर है ?

5- चन्द्र नमस्कार करते समय क्या-क्या सावधानियां बरतनी चाहिए ?

14.8 सारांश

वैद्यक शास्त्र की दृष्टि से चन्द्रमा द्वारा शीतल किरणें पृथ्वी पर रूक्षता एवं उष्मता एवं दौर्बलता का निवारण करते हुए शरीर में जाठराग्नि को प्रबल करते हुए शक्ति संवर्धन में प्राकृतिक रूप से सहायक है। सूर्य नमस्कार की तरह चन्द्र नमस्कार भी महत्वपूर्ण है। चन्द्र नमस्कार भी सूर्य नमस्कार का प्रतिबिम्ब होता है। उसी के प्रकाश को तथा प्रभावो को प्रतिबिम्बित करता है। यह हमें शीतल रूप में ऊर्जा देता है। चन्द्र नमस्कार से हमे शीतलता, ऊर्जा, कल्पनाशीलता, शान्ति और कांति प्राप्त होती है। मोटापा कम होता है। चन्द्र नमस्कार आत्मविश्वास के साथ करते हुए हम आत्मिक एवं शारीरिक लाभ प्राप्त कर सकते है। चन्द्र नमस्कार के द्वारा मानसिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्षता प्राप्त करते हुए आन्दन की अनुभूति प्राप्त होती है। चन्द्र नमस्कार में श्रृंखलाबद्व तरीके से मन्त्रोंजाप के साथ किया जाता है तो इसके आसनों से होने वाले लाभ में वृद्वि हो जाती है।

14.9 संदर्भ ग्रंथ

1- पातंजल योग प्रदीप- स्वामी ओमानन्द तीर्थ

2- सम्पुर्ण योग विधा- राजीव जैन त्रिलोक

योगासन Yogasanas

शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक व्यक्तित्व विकास में आसनों का विशेष महत्व है। ये रक्तचाप, मधुमेह, कब्ज, जोड़ों का दर्द, स्पोंडिलोसिस, अनिद्रा, दमा, मानसिक व्याधि आदि रोगों को नियंत्रित करने में सहायक हैं।

१. आसन सुबह या शाम खुली हवा में खाली पेट करना चाहिए।
२. अधिक व्यायाम या शारीरिक थकावट के बाद तुरन्त योगाभ्यास न करें।
३. किसी की मदद से या जबरदस्ती योगाभ्यास न करें।
४. चिकित्सा हेतु योगाभ्यास करने के लिये योग चिकित्सक से परामर्श करें।

Asanas are effective in physical, mental, spiritual upliftment and improve over all personality of a practitioner. These are helpful in management of Blood pressure, Diabetes, Joints pain, Spondylosis, Insomnia, Asthma and disorders related to state of mind.

1. Yoga should be practiced in empty stomach and at an open space.
2. Avoid Yoga, while feeling tired or just after heavy exercise or heavy physical work.
3. Don't exert. Practice comfortably.
4. For therapeutic use take advice of a Yoga therapist.

केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्
CENTRAL COUNCIL FOR RESEARCH IN YOGA & NATUROPATHY
आयुष मंत्रालय, भारत सरकार
Ministry of AYUSH, Government of India
61-65, संस्थागत क्षेत्र, जनकपुरी, नई दिल्ली - 110 058
61-65, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi - 110058
E-mail : ccryn.goi@gmail.com Website : www.ccryn.org